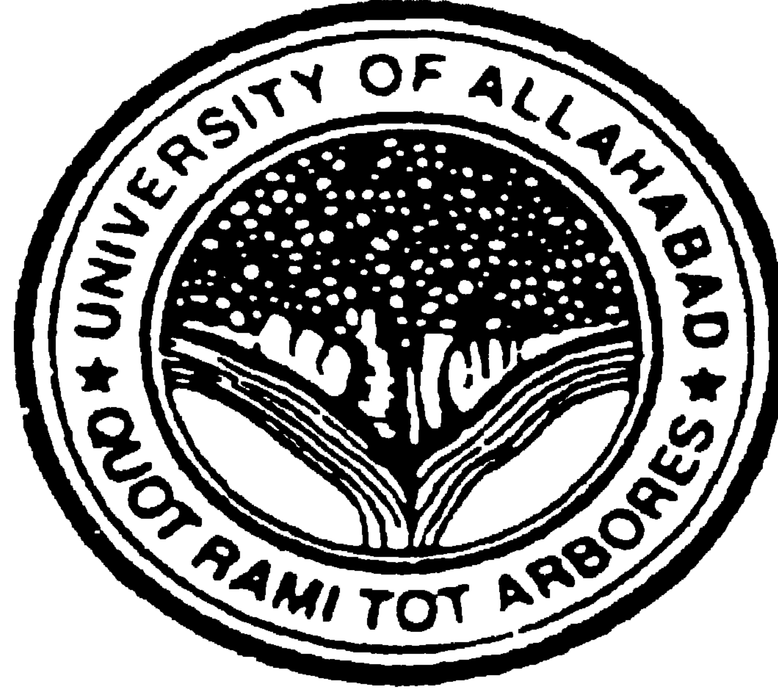
कथासरित्सागर : एक सामाजिक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डी. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध



पर्यवेक्षक
डॉ रंजना बाजपेई
रीडर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग

शोधार्थी
त्रिभुवन सिंह

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2001

पुरोवाक्

पश्चिमोत्तर भारत पर आठवी सदी से अरबो के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। उन्होने अपना आर्थिक एव राजनीतिक साम्राज्य बनाना प्रारम्भ कर दिया था। दसवी सदी मे तुर्को के भी आक्रमण प्रारम्भ हो चुके थे। आक्रमणो की आवृत्ति बढ गई। यद्यपि इनका प्रारम्भिक उद्देश्य धन–सम्पदा की लूट घसोट करना था, परन्तु परिणामस्वरूप मे भारतीय समाज के परम्परागत ढॉचे पर पडने वाले प्रभाव से सामाजिक सरचना मे नए परिवर्तन घटित होने लगे। अत· भारतीय राजनीतिक तथा सामाजिक इतिहास की दृष्टि से ग्यारहवी सदी महत्वपूर्ण सदी है। इस विचार ने मुझे इस काल खण्ड के भारतीय समाज के अध्ययन की ओर प्रेरित किया।

एक इतिहास के शोधार्थी के नाते हमारे समक्ष अध्ययन स्रोतो के चयन की चुनौती थी। मुख्यत स्रोत के रूप मे अभिलेख, यात्रियो के सस्मरण एव तत्कालीन रचनाकारो के साहित्य आदि हमारे अध्ययन में सहयोगी हो सकते थे। क्योकि अभिलेख का सम्बन्ध प्रायः राजनीतिक सत्ता या शासको से होता है तथा विदेशी यात्रियो के वर्णनो मे एक विशिष्ट दृष्टिकोण होने से समाज का सम्पूर्ण आयाम उदघाटित नही हो पाता है। वैसे इतिहास लेखन की परम्परा में स्रोत के रूप में साहित्य को दोयम दर्जे को मानते हुए उसे उतनी प्रमाणिकता के साथ स्वीकार नहीं किया जाता है। साहित्य यदि समाज का दर्पण है तो वह किसी न किसी रूप मे अपने समाज को अवश्य प्रतिबिम्बित करता है। इस कालखण्ड के अधिकाश साहित्यिक ग्रथ परम्परागत धार्मिक सिद्धान्तो, आदर्शो, नीतियो एव विचारों को उल्लिखित करते है। जबकि समाज के नियमो, परम्पराओ, सामाजिक आचरणों के आड़ मे समाज मे अप्रत्यक्ष में घटित होने वाली घटनाओ की अभिव्यक्ति का पूर्ण अभाव परिलक्षित होता है। कथा साहित्य अपने काल्पनिक चरित्रो एव घटनाओं के बावजूद प्रत्यक्ष–परोक्ष रूप से सामाजिक स्थिति का आख्यान प्रस्तुत करता है। यदि कथा कौतुकी की काल्पनिक एव उहात्मक उक्तियो से बचा जाए तो

कोई भी कथा साहित्य अपने समय के समाज पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाल सकता है। अतएव मैने इस समय के महत्वपूर्ण कथा साहित्य पर दृष्टिपात प्रारम्भ किया। जिसमे आलोच्यकाल की सोमदेव भट्ट प्रणीत 'कथासरित्सागर' सबसे विशाल, पूर्ण एव प्रमुख रचना है। अत. आलोच्यकाल के सामाजिक स्थिति के अध्ययन के लिए हमने कथासरित्सागर को आधार बनाने का निर्णय लिया।

इसके कथा विषयो पर समय–समय पर विद्वानो ने स्वतत्र रूप से अनुसन्धान पत्रिकाओ मे अपने विचार व्यक्त किए है। जिसमे एफ. विलफोर्ड ने 'विक्रमादित्य एण्ड शालिवाहन देयर रिस्पेक्टिव एराज विल ऐन एकाउण्ट ऑफ बाला रॉयज आर बलहर एम्परर्स' शीर्ष लेख, एच.एल. विल्सन ने 1819 मे संस्कृत कोष की भूमिका में, जर्मनी के विद्वान एच.ब्राकहेस ने लीपजिग से क्रमशः 1934, 35, 39, 43 तथा 60 ई. मे महत्वपूर्ण अनुसंधान सामग्री तथा एफ लाकोत ने 1908 ई. मे 'एसई एसयू गुणाढ्य एट ला बृहत्कथा' नामक पाण्डित्यपूर्ण ग्रथ रचना की। इसमे बृहत्कथा तथा उसकी उत्तरवर्ती वाचनाओ पर प्रकाश डाला गया। इसी दौरान जे एस.स्पेयर ने 'स्टडीज एबाउट दी कथासरित्सागर' नामक उपयोगी ग्रथ का प्रणयन किया। इसके अतिरिक्त कथासरित्सागर के सांस्कृतिक अध्ययन का सर्वप्रथम प्रयास डॉ. ए. चट्टोपाध्याय ने किया। इसके उपरान्त कथासरित्सागर में प्रतिबिम्बित सांस्कृतिक पक्षों को लेकर कुछ विश्वविद्यालयो मे शोधकार्य किए गए। परन्तु उपर्युक्त प्रयासों मे सामाजिक पक्ष का सागोपांग निरूपण अपर्याप्त है। मैने 'कथासरित्सागर' से प्राप्त सामाजिक सूत्रो की गवेषणा को अन्य रचनाओ एवं अन्य स्रोतों से प्राप्त विवरण के आलोक मे रखने की कोशिश की है। ये निष्कर्ष कितने वस्तुनिष्ठ एव प्रामाणिक है तथा मैं अपने उद्देश्य मे कितना सफल रहा हूँ यह निर्णय मै अपने गुरूजनो एव आप पर छोडता हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में कथासाहित्य की परम्परा को विवेचित करते हुए कथासरित्सागर का क्या स्थान है, यह बतलाने का प्रयास किया है। द्वितीय अध्याय मे सामाजिक सगठनों– वर्णव्यवस्था, जातियो का

बहुगुणन, आश्रम व्यवस्था, पुरूषार्थ, विवाह एवं दासप्रथा को इसके अन्तर्गत वर्णित किया है। तृतीय अध्याय मे स्त्रियों की दशा का उल्लेख किया है जिसमे स्त्रियो के सकारात्मक एव नकारात्मक दोनों स्वरूपो के वर्णन का प्रयास है। चतुर्थ अध्याय मे शिक्षा का विवेचन है जिसमें इस काल मे शिक्षा मे आए परिवर्तनों को रेखांकित किया है। पॉचवे अध्याय में लोगो द्वारा प्रयुक्त किये जाने वाले आहार, पेय आदि के विवेचन के साथ—साथ जनमानस द्वारा पहने जाने वाले वस्त्राभूषणो तथा मनोरजन की विविध प्रविधियों के वर्णन को समाहित किया है।

सर्वप्रथम शोध निर्देशक परम आदरणीया डॉ. रंजना बाजपेई से यदि मुझे अपने शोध कार्य का प्रस्थानबिन्दु और समय—समय पर पर्याप्त मार्गदर्शन न मिला होता तो निश्चित रूप से मेरे लिए यह कार्य दुरूह होता एक लम्बे समय तक सानिध्य मे रहकर आवश्यकता से अधिक समय लेने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिसके लिए मैं उनका चिरऋणी रहूँगा। सम्पूज्य गुरू डॉ. रामप्रसाद त्रिपाठी का विशेष कृतज्ञ हूॅ जिनकी वैदुष्यपूर्ण सुझावों एव आशीर्वचन से मेरा अध्ययन पथ आलोकित हुआ। सम्मान्य प्रो. एस.एन. राय एवं प्रो. ब्रजनाथ सिंह यादव के आशीर्वचन एवं स्नेह को विस्मृत नहीं कर सकता जिन्होने मुझे निरन्तर उत्साहित किया।

अपने गुरूजनो प्रो. उदय नारायण राय, प्रो. शिवेश चन्द्र भट्टाचार्य, प्रो. विद्याधर मिश्र, प्रो. ओमप्रकाश, डॉ. गीता सिंह, डॉ. जयनारायण पाण्डेय, डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार राय, डॉ. जगन्नाथ पाल के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूॅ जिसके आर्शीवचन से मै यह कार्य पूर्ण करने में सक्षम हो सका। डॉ. बिमल चन्द्र शुक्ल, रीडर, (यूइंग क्रिश्चयन कालेज) मै श्रद्धावनत होकर विशेष आभारी हूॅ जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से परामर्श एवं उत्साहवर्धन किया। ग्राम्यविकास को समर्पित, प्रेरणापुज डॉ. टी. करूणाकरण, कुलपति, महात्मागाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट सतना मध्यप्रदेश के स्नेहाशीष को पाकर मैं स्वय को गौरवान्वित अनुभव करता हूॅ जिसकी स्नेह छाया मे मै इस कार्य को पूर्ण किया।

इसके अतिरिक्त मेरे मित्र डॉ. योगेन्द्र प्रताप सिह, प्रवक्ता हिन्दी एव श्री सजय कुमार सिंह ने उत्साहवर्धन एव प्रोत्साहन ही नही किया बल्कि इस श्रमसाध्य एवं सान्तराय शोधयात्रा मे सदैव साथ रहकर मित्र के पावन कर्त्तव्यो का निर्वाह किया। इनके प्रतिदान के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना योगदान के महत्व को कम करना होगा। डॉ. राजेश कुमार त्रिपाठी, प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, महात्मागाधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट को मै कैसे भूल सकता हूँ इनसे समय–समय पर शोध सम्बन्धी सुझाव प्राप्त होते रहे। इनके प्रति हृदय से आभारी हूँ।

(त्रिभुवन सिंह)

अनुक्रम

कथा साहित्य परम्परा और कथासरित्सागर

कथा साहित्य का विश्व की समस्त भाषाओ मे गौरवपूर्ण स्थान है। कथासाहित्य की ऐसी विधा है जो कि शिक्षितो के साथ—साथ अशिक्षितो का भी चित्तरजन एव शिक्षा प्रदान करती है। कथाएँ अपने अन्दर शिक्षा, सभ्यता एवं सस्कृति का भण्डार छिपाए होती है। इनके माध्यम से भी ज्ञान परम्परागत तरीके से एक पीढी से दूसरे पीढी को हस्तान्तरित होता है। यह लोगो को शिक्षित करने का सुगम माध्यम है। इसी कारण इसे कला एवं साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

भारतीय सदर्भ मे कथा का आरम्भ सृष्टि की उत्पत्ति से जोडा गया है, वैदिक साहित्य में कथाओ का निदर्शन हमे देखने को मिलता है। प्रारम्भ मे इन कथाओं का क्या उद्देश्य रहा होगा ? इसके उत्तर मे बताया जा सकता है कि जो अनुभूतियॉ प्रारम्भिक आर्यो ने की उनको कथानक से जोड दिया हो और हो सकता है कि उनकों याद करना उनका उद्देश्य रहा है। "जबकि इसका उद्देश्य केवल कथा ही था।"[1] यह कल्पित कथा क्रमश· वेदो से विकसित होते हुए महाकाव्यों मे विकासमान रूप मे देखने को मिलती है। पौराणिक साहित्य गद्य तथा पद्य दोनो मे लिखे गए। पद्य मे सस्कृति का वर्णनात्मक साहित्य परवर्ती काल मे आया। भारतीय सस्कृत साहित्य में ऐसे कथाग्रथो का पूर्णतः अभाव है जिसमे कथाए पूर्णरूप से गद्य मे लिखी गयी है।[2]

सस्कृत मे 'आख्यायिका' का अग्रेजी रूपान्तरण 'एनेकडोट' है सस्कृत साहित्य मे 'आख्यायिका' वह साहित्य—विधा है जिसे लघु कथा कहा जा सकता है जबकि अग्रेजी मे 'टेल' कथा कहलाती है। इसका मुख्य उद्देश्य लोगो का मनोरजन करना है। कथाए मुख्यत वार्तालाप शैली मे लिखी जाती है। संस्कृत के काव्य में इन दो विभेदों का उल्लेख मिलता है।[3]

प्राचीन काल मे कथा साहित्य का शीर्ष शिरोमणि ग्रथ गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' को माना जाता है। इसकी रचना व्यापारिक दृष्टि से उत्कृष्ट काल, सातवाहन काल मे सामान्यतः मानी जाती है। आन्ध्र सातवाहन काल मे स्थल, जल मार्गो पर अनेक सार्थवाह, पोताधिपति, एव सायत्रिक व्यापारी दिन–रात चहल–पहल रखते थे। टकटक करते तारो से भरी हुई लम्बी रातो मे उनके मनोविनोद के लिए अनेक कहानियो की रचना स्वाभाविक थी।[4] इसमे देश–देशान्तर गमन से प्राप्त ज्ञान एव अनुभवो को रचना के रूप मे साकार किया गया। सार्थवाहो, नाविको तथा अन्य व्यापारियो के विविध अनुभवो को विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न गुणाढ्य ने अपनी रचना 'वृहत्कथा' मे कथा साहित्य के सॉचे मे ढाल कर प्रस्तुत किया। इस 'बृहत्कथा' की भाषा प्राकृत की पैशाची बोली मे थी।[5] यह पैशाची भाषा की शिरोमणि कृति मानी जा सकती है।[6] इससे पता चलता है कि सस्कृत भाषा की तरह पैशाची भाषा का भी समृद्ध साहित्य रहा होगा। शोध कर्त्ताओ के मध्य पैशाची भाषा एक विशाद युक्त विषय के रूप मे है।[61] एक अज्ञातनामा लेखक ने ग्यारह प्रकार की प्रस्तुत भाषाओ का उल्लेख किया है जिसमे पैशाची प्राकृत की एक प्राचीन बोली है।[62] सस्कृत के कई विद्वानो ने पैशाची भाषा के बारे मे विवरण दिया है जिसमे रुद्रद् के काव्यालकार की टीका मे इसे पैशाची कहा गया है।[63] हेमचन्द्र ने भी अपने ग्रथ काव्यानुशासन मे पैशाची के नियमो का वर्णन किया है।[64] मार्कण्डेय ने 'प्राकृ सर्वस्व' मे पैशाची के तीन उप–बोलियो कैकेय, शौरसेन और पाचाल का उल्लेख किया है।[65] प्राचीन व्याकरणो के अनुसार पाण्ड्य, केकय, वाह्लीक, सह्य, नेपाल, कुन्तल, गान्धार को पिशाच–प्रदेश के नाम से भी जाना जाता था। इसी प्रदेश मे यह भाषा बोली जाने के कारण इसका नाम 'पैशाची' पड गया। भारतीय लोग पिशाच का अर्थ भूत से लगाते है। सम्भवत इसी कारण इसे भूत भाषा[66] के रूप भी उल्लेख मिलता है। इस भाषा का प्रयोग निम्नवर्ग के लोग करते थे। भोजदेव ने बताया है कि उच्च जाति के लोगो को विशुद्ध पैशाची भाषा बोलने की मनाही थी।[67] उत्तराखण्ड के बौद्ध धर्मावलम्बियों का विवरण मिलता है कि बुद्ध के निर्वाण के 116 वर्ष उपरान्त चार स्थविर आपस मे मिले जो कि सस्कृत,

प्राकृत, अपभ्रश एव पैशाची भाषाएँ बोलते थे।[6 8] यह भाषा निम्न लोगो के द्वारा बोली जाने वाली लोकभाषा थी। जो कि विशेष लक्षणो से युक्त आत्मनिर्भर एव स्वतत्रप्रादेशिक भाषा थी। पैशाची भाषा का क्षेत्र विन्ध्यक्षेत्र तथा उत्तरी पश्चिमी सीमाओ मे था।[7] वासिलज्यू ने अपनी बौद्ध धर्म सम्बन्धी रचना मे वैभाषिको और स्थविरो को भी पैशाची भाषा की जानकारी से युक्त विवेचित किया है।[8] वर्तमान समय मे 'बृहत्कथा' अनुपलब्ध है। परन्तु इसका विवरण परवर्ती रचनाकारो की रचनाओ मे मिलता है। कथा सरित्सागर मे रचनाकार सोमदेव ने वृहत्कथा के सार का सग्रह किया है।[9] इससे स्पष्ट होता है कि सोमदेव के समय तक 'बृहत्कथा' किसी न किसी रूप मे विद्यमान थी। इसके उपरान्त यह दुर्लभ रचना कैसे नष्ट हुई, इसका पता नही चलता है। फिर भी इस सम्भावना से इकार नही किया जा सकता है कि इसके बाद देश मे तुर्क आक्रमणकारियो का आगमन हुआ जिन्होने केवल साम्राज्य की ही नही स्थापना की अपितु यहाँ की सस्कृति को तोडने, नष्ट करने का कार्य भी किया। देश के बडे—बडे पुस्तकालय नष्ट किए गए। इसी दौर मे सम्भवत यह महान कृति नष्ट हुई होगी।

गुणाढ्य और उनकी कृति बृहत्कथा के बारे मे कई विद्वानो ने उल्लेख किया है। इस कृति के बारे मे बाण ने लिखा है कि —

समु'द्दीपित कन्दर्पा कृतगौरी प्रसाधना।

हरलीलेव लोकस्य विस्मयाय बृहत्कथा।।

महाकवि बाण के उपरोक्त उल्लेख ''कृतगौरी प्रसाधना'' से पता चलता है कि बृहत्कथा का आरम्भिक रूप शिव—गौरी सम्वाद के रूप मे था अर्थात् पर्वती ने शिव जी से कथा सुनाने की प्रार्थना किया तदुउपरान्त शिव जी ने पार्वतीजी को कथा सुनाया।[10] इसी का उल्लेख सोमेदव ने कथासरित्सागर के प्रथम तरग मे किया है। इसी प्रकार प्राकृतभाषा का ग्रथ 'कुवलयमाला' कहा जो कि उद्योतनसूरि की रचना है इसके आरम्भ मे 'बृहत्कथा' को 'बड्डकथा' कहा गया है। उद्योतन सूरि ने इसकी प्रशसा करते हुए लिखा है कि —

सयलकलागमणिलया सिक्खावियकइयणस्स मुहयदा।

कमलासणो गुणड्ढो सरस्सई जस्स बड्डकथा।।

बृहत्कथा साक्षात् सरस्वती है तथा गुणाढय स्वय ब्रह्मा है यह बृहत्कथा सभी गुणो की खान है। कविजन इसे पढकर शिक्षित बनते है।[11] इससे स्पष्ट होता है कि आठवी शती ई मे ही बृहत्कथा का समाज मे महत्वपूर्ण एव गौरव पूर्ण स्थान था। इसके अतिरिक्त धनपाल ने भी बृहत्कथा का उल्लेख किया है तथा इसकी उपमा उस समुद्र से दी है जिसकी एक–एक बूँद से अन्यानेक कथाओ की रचना हुई है।[12] इसी तरह आचार्य हेमचन्द्र ने अपने ग्रथ काव्यानुशासन की स्वोपक्षवृत्ति मे कथाओ के भेद बताते हुए बृहत्कथा का उल्लेख किया है।

इस लुप्त ग्रथ के इन छिट–पुट उल्लेखो तथा उद्धरणो के अलावा इसकी वाचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। बृहत्कथा की अभी तक जो वाचनाएँ प्राप्त हुई है उसमें दो परम्पराएँ मिलती हैं जिसमे एक नेपाली दूसरी काश्मीरी है। नेपाली रूपान्तर मे बुद्धस्वामी का 'बृहत्कथा श्लोक सग्रह' है जो कि अधूरी ही प्राप्त हुई है।[13] कश्मीरी रूपान्तरणो मे क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथा मजरी' तथा सोमदेव भट्ट की कथा सरित्सागर है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य वाचनाएँ भी प्राप्त होती है जिसमे बृहत्कथा का एक जैन प्राकृत संस्करण है जो कि जैन परम्परा मे है। इसकी रचना सघदासगणि ने वसुदेव हिण्डी के नाम से किया है। मूल बृहत्कथा का नायक वत्सराज उदयन का पुत्र नरवाहन दत्त है। नरवाहन दत्त देशान्तरो का भ्रमण करता है उसके यात्रा का पर्यवसान एक विवाह से होता है।[14] किन्तु सघदास ने अन्धकवृष्णि वश के प्रसिद्ध पुरुष वासुदेव को अपना नायक बनाया है। 'हिण्डी' शब्द का अर्थ परिभ्रमण या पर्यटन होता है। इसमे बृहत्कथा को आधार अवश्य बनाया लेकिन उसके स्वरूप तथा उद्देश्य को परिवर्तित कर दिया। बृहत्कथा जहाँ लौकिक कामकथा ग्रंथ है। वही 'वसुदेवहिण्डी' को 'धर्मकथा' का रूप प्रदान किया है। परन्तु बृहत्कथा के जैन धर्म प्रभाव वाले कथानको को यथा स्थान – 'वसुदेव हिण्डी' मे शामिल किया है।[15] वसुदेवहिण्डी महाराष्ट्री प्राकृत भाषा की गद्य शैली मे लिखा गया जिसमे 29 लम्बक तथा

11000 श्लोक प्राप्त होते है।[16] इस ग्रथ की परवर्ती रचना धर्मदासगणि की है। इसमे 71 लम्बक और 17000 श्लोक है। इसे मध्यमखण्ड के नाम से जाना जाता है। इसकी भूमिका में धर्मदासगणि ने स्पष्ट शब्दो मे उल्लेख किया है कि– 'कृष्ण के पिता वसुदेव ने 100 वर्ष तक परिभ्रमण करते हुए अनेक राजाओ तथा विद्याधरो की पुत्रियो से विवाह किया। सघदासगणि ने वसुदेव के 29 विवाहो का ही वर्णन किया है जबकि 71 विवाहो का वर्णन कथा के विस्तार के भय को देखते हुए छोड दिया। उसे मध्यम या"बीच के लम्बको के साथ कथासूत्र मिलाते हुए मै कह रहा हूँ।''[17] इससे यह अवश्य पता चलता है कि वसुदेवहिण्डी या बृहत्कथा मे विवाहो की कहानियो का विस्तार इसी प्रकार था। यह बृहत्कथा का रूपान्तरण प्रतीत होता है।

वसुदेवहिण्डी के उपरान्त नेपाली वाचना मे बुद्धस्वामी द्वारा रचित 'बृहत्कथा श्लोक' का नाम लिया जाता है। यद्यपि इस रचना मे बुद्धस्वामी ने गुप्त कालीन सस्कृति को कथा के सॉचे मे ढालने का प्रयास किया है[18] किन्तु यह बृहत्कथा की सच्ची वाचना मानी जाती है। इस सदर्भ मे फ्रेच विद्वान लाकोत के उद्धरण का उल्लेख करना समीचीन होगा – बृहत्कथा अपने दो काश्मीर रूपान्तरणो 'कथासरित्सागर' और 'बृहत्कथा मजरी' में अत्यन्त भ्रष्ट एव व्यवस्थित रूप से मिलती है। इन ग्रथो मे अनेक स्थलो पर मूलग्रथ के सक्षिप्त सार का उद्धार किया गया है। इसके मूल के कई अश छोड दिए गए है और नए अश प्रक्षिप्त हो गए हैं। इस तरह मूलग्रथ की वस्तु और आयोजना मे बेढगे फेरबदल हो गए है। जिससे इन काश्मीरी कृतियो मे कई प्रकार की असगतियॉ आ गई है और जोड़े हुए अंशो के मूल ग्रथ का पर्याप्त स्वरूप भ्रष्ट हो गया है। इस स्थिति मे बुद्धस्वामी के बृहत्कथा श्लोक की वस्तु योजना द्वारा बृहत्कथा का सच्चा स्वरूप प्राप्त होता है परन्तु यह चित्र पूरा नही है क्योकि इस ग्रथ का चतुर्थाश ही उपलब्ध है।[19] नेपाली वाचना मे गोमुख एक प्रमुख पात्र हे किन्तु काश्मीरी वाचना मे एक सामान्य पात्र के रूप मे चित्रित है।[20] बृहत्कथा श्लोक में कलिग सेना नामक वेश्या की पुत्री मदनमन्चुका नरवाहन दत्त के लिए उपयुक्त वधू नही है परन्तु काश्मीरी वाचनाओ मे इसे औचित्य प्रदान किया

गया है।[21] इस विवरण से यह अवश्य पता चलता है कि गुप्तकालीन वैवाहिक वर्जनाए इस समय तक आते–आते विश्रृखलित हो गयी थी। 'बृहत्कथा श्लोक' मे यूनानी कलाकारो की प्रशंसा, कापालिको के जवीन का विस्तृत वर्णन, जैन मुनियो का वर्णन, धार्मिक उत्सवो आदि का विवेचन मिलता है। यूनानी कलाकारो का वर्णन तथा कथाकार गान्धार कला का स्पष्ट वर्णन करता है। जबकि उस समय यह कला लुप्त हो गई थी। इससे यह बृहत्कथा के मूल का वर्णन प्रतीत होता है।[22] इसके अतिरिक्त 'बृहत्कथा श्लोक सग्रह' बृहत्कथा की काश्मीरी रूपान्तरण से मेल नही खाती है। इसमे कथानक के साथ–साथ मूल कथा के आधार मे भी अन्तर दृष्टिगोचर होता है। जिससे कभी–कभी यह लगने लगता है कि काश्मीरी रूपान्तरण स्वतत्र कृतियां हो।[23] परन्तु 'बृहत्कथा श्लोक सग्रह' के आधा–अधूरा मिलने से बृहत्कथा का अपेक्षाकृत वास्तविक रूपान्तरण प्रतीत होने पर भी हमे काश्मीरी रूपान्तरणो पर अधिक निर्भर रहना पडता है।

बृहत्कथा की काश्मीरी वाचनाओ में एक क्षेमेन्द्र द्वारा रचित 'बृहत्कथा मजरी' है। विन्टरनित्ज ने इसे क्षेमेन्द्र की पहली कृति माना है।[24] क्षेमेन्द्र ने अपनी लेखनी से श्रृंगार एवं धार्मिक पक्षो, का अधिक विस्तृत वर्णन किया है जबकि लेखक का प्रमुख उद्देश्य बृहत्कथा का सक्षेपीकरण था।[25] परन्तु काश्मीरी वाचना के रचनाकारो के सामने बहृत्कथा का अस्थिपंजर अवशेष मात्र बचा था, जिसको मासल बनाने तथा रक्त सचार करना इनका उत्तरदायित्व था। रक्तसचार करते समय इस बात को भी ध्यान मे रखना था कि लोगो के मनोरजन भी करना है। इसके साथ ही साथ 'बृहत्कथा' स्वय एक कथा साहित्य ग्रथ है या जिसमे गुणाढय का भी उद्देश्य लोगो का मनोरजन करना रहा होगा। इस उद्देश्य का जहॉ तक प्रश्न है उसमे काश्मीरी वाचनाए अवश्य ही सफल हुई है। यह बहुत सम्भव है कि इसमे कथाकारो ने अपने अनुभवो, परिवेश आदि को समाहित करते हुए कुछ बहक अवश्य गए होंगे परन्तु गुणाढ्य के मूलग्रथ की वस्तुसघटना और उसकी प्राणवता का संरक्षण किस सीमा तक किया है इस बारे मे कह सकना कठिन होगा।[26] क्षेमेन्द्र ने भी कथासरित्सागर की भॉति अपने ग्रथ को 18 लम्बको मे विभक्त किया है। जिसमें –

1. कथापीठम्, 2 कथामुख, 3 लाणनक, 4. नरवाहनदत्त जन्म, 5 चतुर्दारिका, 6 सूर्यप्रभ, 7 मदन मजुका, 8 बेला, 9 शशाकवती, 10 विषमशील, 11. मदिरावती, 12 पद्मावती, 13 पचलम्बत, 14 रत्नप्रभा, 15 अलकारवती, 16 शक्तियशोलम्बक, 17, महाभिषेक, 18 सूरतमजरी है।

बृहत्कथा की काश्मीरी वाचना मे सोमदेव भट्ट प्रणीत 'कथासरित्सागर' सबसे अधिक प्रसिद्ध तथा परवर्ती रचना मानी जाती है। सोमदेव भट्ट के पिता का नाम पण्डित राम[27] था। इन्होने त्रिगर्त्त (कुल्लूकॉगडा) नरेश की पुत्री, काश्मीर के महाराज अनन्त की रानी सूर्यमती, जालन्धर की राजकुमारी तथा कलश की मॉ थी, के मनोविनोदार्थ कथासरित्सागर नामक विशाल ग्रथ की रचना की थी।[28] यह कहानी साहित्य का शिरोमणि ग्रथ है।[29] कथासरित्सागर के आरम्भ मे ही सोमदेव भट्ट ने स्पष्ट शब्दो मे बात कही है कि – "मूल बृहत्कथा मे जो कुछ जैसा था, उसी तरह उसका इस ग्रंथ मे संग्रह किया गया है। मूलग्रथ मे और इसमें तनिक भी अन्तर नही है, हॉ विस्तृत कथाओ को सक्षिप्त मात्र किया गया है और भाषा भेद है। मैने यथासम्भव मूलग्रथ की औचित्य परम्परा की रक्षा की है और कुछ नवीन काव्यांशों की योजना करते हुए भी मूल कथा के रस का विधात नही होने दिया है। इस ग्रथ का निर्माण–प्रयत्न, पाण्डित्य–प्रसिद्धि के लोभ से नही किया गया है, किन्तु अनेक लम्बी कथाओ के जाल को स्मरण रखने की सुविधा से किया गया है।"[30]

कथासरित्सागर के रचनाकाल का जहॉ तक प्रश्न है यह क्षेमेन्द्र के 'बृहत्कथामजरी' के आस–पास की रचना मानी जाती है। क्योकि क्षेमेन्द्र काश्मीर के राजाअनन्त, जिनका समय 1029 से 1064 ई. था, के सभा के सभासद थे, इनका दूसरा नाम व्यासदास था।[31] वहीं दूसरी ओर साहित्यिक स्रोतो[32] से स्पष्ट है कि सूर्यमती ने 1081 के आस–पास सतीप्रथा का अनुसरण करते हुए सहर्ष मृत्यु का आलिगन किया। इससे स्पष्ट होता है कि कथासरित्सागर की रचना इसके पूर्व हुई होगी। जो कि 'बृहत्कथामजरी' के रचना काल के आस–पास ठहरती है। इसके साथ अब दूसरा प्रश्न यह भी उठता है कि सोमदेव भट्ट को कथासरित्सागर के रचना की प्रेरणा या किससे प्राप्त हुई ?

इस सदर्भ मे उल्लेखनीय है कि क्षेमेन्द्र जैसा कवि विद्वान उस समय भी राज दरबार मे उपस्थित था। वही दूसरी ओर कल्हण की 'राजतरगिणी' द्वारा एक नई साहित्यिक–ऐतिहासिक धारा फूट चुकी थी। क्षेमेन्द्र जिस शासक अनन्त के राज दरबार मे थे उसी की ही महारानी के लिए सोमदेव भट्ट ने कथासरित्सागर की रचना की। क्षेमेन्द्र ने 'बृहत्कथा मजरी' अर्थात् बृहत्कथा रूप वृक्ष की कली का प्रणयन किया तो सोमदेव ने 'कथासरित्सागर' अर्थात् 'कथारूप सरिताओ का सागर[33] नामक विशाल ग्रथ की रचना किया। ऐसी स्थिति मे सोमदेव का 'कथासरित्सागर' क्षेमेन्द्र के प्रतिस्पर्धा मे रचित प्रतीत होता है। क्योकि दोनो का एक ही राजदरबार से सम्बन्ध था तथा सोमदेव ने बृहत्कथा मजरी के लेखक की तरह बृहत्कथा को ही आधार बनाकर उससे विशाल ग्रथ की रचना किया। यह अवश्य हो सकता है कि सोमदेव ने राजतरगिणी से प्रेरणा अपने ग्रथ मे तरग व्यवस्था को उप कथाओ को सजोने के लिए किया हो।

कथासरित्सागर के गठन का जहाँ तक प्रश्न है, इस ग्रथ मे 21,388 श्लोक[34] या पद्य है। लेखक ने उसे 124 तरगो[35] मे विभक्त कया है। तरंग विभाजन बृहत्कथा एवं अन्य वाचनाओ मे नहीं पाया जाता है। इसका दूसरा विभाग 'लम्बक' है जिसकी संख्या 18 है[36] अर्थात् सम्पूर्ण ग्रथ विशाल 18 खण्डों मे विभक्त है।

लाकोत के मतानुसार कथासरित्सागर में प्रयुक्त 'लम्बक' शब्द में 'ब' मूल ग्रथ का नही प्रतीत होता है। यहाँ पर मूलग्रंथानुसार 'भ' होना चाहिए। यहॉ लम्बक का अर्थ प्रकरण हो सकता है जिसमें नरवाहन दत्त एक पत्नी प्राप्त करता है।[37] वहीं बुधस्वामी के 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह' मे सर्गो के अत मे 'लम्ब' के बदले 'लाभ'[38] शब्द आता है। ऐसी स्थिति मे लम्भक अर्थात 'प्राप्त होना' मूलग्रंथ मे रहा होगा। सोमदेव ने मगल चरण के बाद कथासरित्सागर के आरम्भ में लम्बकों की विषयसूची प्रदान की है। जिसमे प्रथम लम्बक कथापीठ दूसरे का नाम कथामुख, तीसरा लावानक (लावाणक)[39], चतुर्थ नरवाहनदत्त, पंचम चतुर्दारिका, छठा–मदन मंचुका,[40] सातवॉ रत्नप्रभा, आठवॉ सूर्य प्रभा[41], नवॉं

अलकारवती, दसवॉ शक्तियशा, ग्यारहवॉ बेला[42], बारहवॉ शशाकवती, तेरहवॉ नदिरवती, चौदहवॉ महाभिषेकवती पन्द्रहवॉ पच[43], सोलहवॉ सुरतमजरी, सत्रहवॉ पद्मावती तथा अठरहवॉ विषमशील[44] नामक लम्बक है।

कथासरित्सागर की वर्तमान सघटना और लम्बको के क्रम की तात्विक आलोचना करते हुए कीथ ने लिखा है कि – "कथासरित्सागर के मूल ग्रथ के कथाक्रम मे परिवर्तन किया गया है इसका अभिप्राय कथा के रस की रक्षा करना है। यह बात ग्रथ के क्रम की वस्तुस्थिति के बिल्कुल अनुकूल है। पहले पॉच लम्बको में कोई परिवर्तन नही किया गया है शेष लम्बको मे सोमदेव के अपने काव्यप्रभाव की रक्षा करने का अभिप्राय रहा होगा। स्पष्टतया इसी कारण सोमदेव को पंच और महाभिषेक नामक लम्ब को मध्य की खाई को दूर करने के लिए विवश किया। उनके पंच नामक लम्बक का अत राजकुमार के इस निर्णय से होता है कि उसे भावी सम्राट के राज्याभिषेक के लिए आवश्यक रत्नो को प्रेरित करना है, आगे के लम्बक मे यह प्रस्ताव आगे बढता है, परन्तु रत्नाप्रभा, अलकारवती, शक्तियशस नामक तीन लम्बको को यथास्थान रख सके। पंच नामक लम्बक के पहले आने वाले विषय का क्रम कलापूर्ण ढंग से रखा गया है क्योकि उसमें मुख्यतया प्रासगिक उपकथाओं से सम्बन्ध रखने वाले लम्बकों को बीच–बीच में रखने का प्रयत्न किया गया है जैसा कि पॉचवे लम्बक चतुर्दारिका के बाद, जिसका सम्बन्ध प्रासंगिक कथाओ से है, उसमे मदनमचुंका छठा लम्बक महत्वपूर्ण है। इसके बाद रत्नाप्रभा सातवाँ लम्बक है, नवें लम्बक अलकारवती से पहले आने वाला आठवॉ लम्बक सूर्यप्रभा मूलरूप से केवल उपकथाओ से सबध रखता है। आकस्मिक कथाओं से संबंध रखने वाले दशवें लम्बक शक्तियशा सहज रूप से अलकारवती के बाद आता है। तत्पश्चात् ग्यारहवॉ बेला, बारहवॉ शशाकवती, तेरहवॉ मदिरावती तथा पूर्णत महत्वयुक्त पच तथा महाभिषेकवती आते है। इसके बाद परिशिष्ट रूप मे सुरतमजरी, पद्मावती और विषमशील दिए हुए हैं। एक लम्बक के विषय मे आवश्यक परिवर्तन आवश्यक था। क्षेमेन्द्र के ग्रंथ बृहत्कथामजरी तथा सम्भवत मूल ग्रंथ में भी बेला का सम्बन्ध केवल प्रासगिक उपकथाओ से ही नहीं था

उसके अत मे मदनमचुका के तिराहित होने का आवश्यक अंश सम्मिलित था। उसी के आधार पर हम अगले लम्बको मे सूचित राजा के शोक को समझ सकते है। परन्तु, इस प्रकार का वर्णन रत्नप्रभा, अलकारवती, और शक्तियशा, इन लम्बको के सम्बन्ध मे सोमदेव की योजना से मेल नही खाता था, इसीकारण उक्त आवश्यक अश को हटा देना पडा, तो भी सोमदेव के लिए अपने क्रम मे पच से पहले के लम्बको में मदनमचुका के पहले से ही तिरोहित हो जाने के यत्र–तत्र चिन्हो को हटा देना सम्भव नहीं था।[45]

कथासरित्सागर संस्कृत वाङ्मय का महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसके परिशीलन से यह पता चलता है कि यह केवल ऐतिहासिक ग्रथ ही नही अपितु साहित्यिक महत्व का भी ग्रंथ है।[46] इस ग्रथ मे सोमदेव ने प्रारम्भ से लेकर अन्ततक सरल, प्रवाहमयी तथा सुबोधमयी भाषा का प्रयोग किया है। इसके रसोपान के लिए पाठक को मानसिक परिश्रम नहीं करना पडता है। सोमदेव ने अपने ग्रथ मे भारवि की अर्थगौरवमयी युक्त भाषा की व्यूह रचना नही किया न ही बाण की तरह शब्दो का महारण्य ही तैयार किया जिससे पाठक को उलझना पडे बल्कि इन्होने समतल तथा सपाट मार्ग का निर्माण किया जिसपर पाठक आसानी से चल सकता हो। पाठक को ग्रंथ मे आगे बढाने पर यथा स्थान अलकरण भी देखने को मिलता है। अलंकारो के प्रयोग मे सोमदेव ने सूझ–बूझ का परिचय दिया। इसका वही तक प्रयोग किया जहाँ तक इस ग्रंथ के काव्यशिल्प में आभूषण बन सकते थे। जहॉ तक कथासरित्सागर मे छन्दो की आयोजना का प्रश्न है इसमे उन्होंने एक कुशल कवि की भॉति प्रयोग किया है, इससे इनके ग्रंथ को गति ही मिली न कि यति।[47] कथा सरित्सागर का छन्दों की दृष्टि से अनुशीलन करने से स्पष्ट होता है कि सोमदेव ने संस्कृत के अनेक कठिन छन्दो का प्रयोग सफलता के साथ किया है।[48] सोमदेव के ग्रथ मे अनुष्टुभ शिखरिणी, शार्दूल विक्रीडित छन्दों की छटा देखने को मिलती है। सोमदेव ने भाषा–शैली दोनो की कमियो से अपने ग्रंथ को दूर रखने की चेष्टा की है। यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सोमदेव निस्संदेह भारतीय कवियों की प्रथम श्रेणी के कवि है।[50]

लेखन—शैली की दृष्टि से भी सोमदेव कथासरित्सागर मे सफल रहे। इनकी एक विशेषता यह भी हे कि नई—नई कहानियों पहली कहानियो के अन्तर्गर्भ मे छिपी हुई है और वे आश्चर्यजनक रूप से एक के बाद एक निकलती जाती है। इसके बावजूद उन कहानियो मे क्रमबद्धता हमेशा बनी रहती है उसमे विछिन्नता का भाव दृष्टिगोचर नहीं होता है।[51] यही सोमदेव के कवि चातुर्य की सबसे बडी विशेषता मानी जा सकती है। यद्यपि कथासरित्सागर बृहत्कथा का ही सस्करण है परन्तु इसमें अनेक कहानियॉ ऐसी भी प्राप्त होती है जो कि अन्य ग्रथो में सुलभ है परन्तु उनका आकर्षक एव प्रवाहपूर्ण वर्णन सोमदेव ने किया है।[52]

कथा सरित्सागर के अध्ययन से यह पता चलता है कि इसमें सृष्टि की रचना से लेकर सुन्दर काव्यमयी कहानियो तक का निदर्शन मिलता है। एक ओर पाटलिपुत्र के निर्माण, पाणिनि, गुणाढ्य, नन्द, महाभारत रामायण, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, नलदमयन्ती कथा, स्वप्नवासवदत्तम्, कादम्बरी कथा मुखम्, पंचतंत्र, मालतीमाधव, पचतत्र की कहानियो, बेताल पचीसी की कहानियो के अलावा विदेशो में प्रचलित अरेबियन नाइट्स बेकसियोड़ीकेमर की कहानियो से मेल खाती कहानियों की रचना इसमे मिलती है। तो दूसरी तरफ जंगली पशुओं, चूहे, पशु, पक्षियो, सत्चरित्र स्त्रियो, परपुरूष गामिनी स्त्रियों कुट्टनी, वेश्याओ की प्रेम कहानियां, विष कन्याओं, नर्तकियों, राजकुमार—राजकुमारियो, साधु—सन्यासियों, ठग, मूर्ख आदि की कथाए इस महान ग्रंथ में भरी पडी है। सोमदेव के पशुपात्र भी मानवी भाषा बोलते नजर आते है। इसके अतिरिक्त सोमदेव के ग्रंथ के पश्चिमोत्तर भारत के तुर्को से आक्रान्त होने का प्रतिबिम्बन भी मिलता है। इस समय तक उत्तर भारत महमूद गजनवी के आक्रमणो से आक्रान्त हो चुका था। तुर्कों का आवागमन उत्तर भारत मे यदा कदा होता रहा है। सिन्धु क्षेत्र में अरबों के सत्ता की स्थापना ही चुकी थी। कथासत्सिागर से भी पता चलता है कि उत्तर भारत मलेच्छों से भरी हुई तथा असुरक्षित था, वहीं दक्षिण भारत सुरक्षित था।[53] परन्तु इस विशाल ग्रंथ की मूल कथा नरवाहन दत्त की है जो कि एक—एक करके पत्नियॉ प्राप्त करता है इस कार्य के पीछे

इसके चारो ओर कहानियो का जाल बिछा हुआ है। इसके साथ–साथ नरवाहन दत्त के पिता उदयन तथा उसकी दोनो पत्नियो वासवदत्ता एव पद्मावती उसके बुद्धिमान, नीतिवान तथा स्वामिभक्त मत्री यौगन्धरायण की कथाए है। यह कथा बौद्ध कथाओ से ली गई है[54] लेकिन इसका वर्णन मूल बौद्ध कथाओ से भिन्न है।[55] कथासरित्सागर की प्रशंसा मे पेजर द्वारा प्रशसा मे लिखे गए विवरण को उद्धृत करना उचित होगा – ''जब हम इस ग्रथ को देखते हैं, तब इसमे आई हुई हर प्रकार की कथाओ को देखकर मन भर जाता है। ईसवी सन् से सैकडों वर्ष पहले की जीव जन्तुओ की कथाए इसमे है, द्युलोक ओर पृथ्वी के निर्माण सम्बन्धी ऋग्वैदिक कथाए भी है। किसी प्रकार रक्तपान करने वाले बेतालो की कहानियॉ, सुन्दर काव्यमयी प्रेम कहानियो और देवता, मनुष्य एव असुरो के युद्धो की कहानियॉ भी इसमे सग्रहीत है। यह न भूलना चाहिए कि भारत वर्ष कथासाहित्य की सच्ची भूमि है जो इस विषय मे ईरान औरअरब से बढ़–चढ कर है। भारत के इतिहास की कथा भी तो उस प्रकार की एक कहानी है। इसका अतिशयोक्ति पूर्ण रूप इन आख्यानो से कम रोचक नही है।''

''इन कहानियों का संग्रह करने वाला लेखक सोमदेव विलक्षण प्रतिभा का पुरुष था। कवियो में उसकी प्रतिभा कालिदास से दूसरे स्थान पर आती है। स्पष्ट, रोचक और मन को खींच लेने वाले ढग से कहानी कहने की उसमे वैसी ही अद्भुत शक्ति थी जैसी कहानियो के विषयो की व्यापकता और विभिन्नता है।'' इसके आगे पेंजर कहते है कि ''कथासरित्सागर अलिफलैला की कहानियो से प्राचीनतर ग्रथ है। अलिफलैला की अनेक कहानियो के बीज इसमें है। उनके द्वारा न केवल ईरानी और तुर्की लेखको की, बल्कि बाकैशियो, चौसर एव ला फॉन्टेन एव अन्य लेखकों द्वारा पश्चिमी संसार को भी अनेक कल्पनाए प्राप्त हुई है। सोमदेव ने सोचा कि जैसे हिमालय से आई हुई अनेक धाराएँ आगे–पीछे बहती हुई समुद्र मे ही पहुँच जाती है वैसे छोटी बडी सभी कहानियॉ उनके इस महान ग्रथ मे इकट्ठी हो जाए ओर यह सच्चे रूप मे कहानी रूपी नदियो का सागर बन जाए।''[56]

कथा सरित्सागर मे ऐतिहासिक कथानको, व्यक्तियो एव घटनाओ, महाभारत,[57] रामायण[58] के अंश, सस्कृत साहित्य के ग्रथो—अभिज्ञान शाकुन्तलम,[59] मालतीमाधव,[60] मुद्राराक्षस,[61] नलदमयन्ती कथा,[62] दशकुमरचरित,[63] वासवदत्त,[64] कादम्बरी, कथामुखम[65] आदि से मिलती जुलती कहानियॉ मिलती है। इसके अतिरिक्त पचतत्र[66] एव बेताल पंचविश[67] के आख्यान भी समाहित है। कथासरित्सागर की कथाएँ अथवा उद्धरण बहारे दानेस, ग्रीम्स के फेरीटेल्स, अरेवियन नाइट्स, बकेसियो डीकेमर मे भी प्राप्त होते है। ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि दूसरे देशो मे जो कहानियो के उद्धरण या उल्लेख मिलते है सोमदेव से उन कथाकारो ने प्रेरणा ग्रहण किया या कि सोमदेव ने। इस सन्दर्भ मे कहना उचित होगा कि भारत भूमि कथा की भूमि रही है। भारत से एशिया—यूरोप के अनेक देशो मे भारतीयो का आवगमन किसी न किसी रूप से होता रहा है और ये कहानियॉ भारतीयो द्वारा अरब, आदि देशें मे पहुँची होगी। इसके प्रमाण मे कहा जा सकता है कि अंक आदि जिस प्रकार से इन देशो को पहुँचे उसी तरह ये कथाए भी अरब—समाज मे पहुँची होगी। इसलिए कहना उचित होगा कि कथासरित्सागर की इन कथाओं का वहॉ के कथा साहित्य पर प्रभाव पडा।

इनके अलावा कथासरित्सागर में राजाओ और नगरो, राजतंत्र एव षड्यत्र, जादू—टोने, छल—कपट, हत्या और युद्ध, अद्भुत कन्याओ और उनके साहसी प्रेमियों, जादू—टोने, रक्तपायी बेताल, पिशाच, यक्ष—यक्षणियो, प्रेत, भिखमंगे, साधु, पियक्कड, जुआडी, वेश्या, कुट्टनी, धूर्त ठग, मूर्ख वणिक, नर्तकी, विष कन्याओ, सत्चरित्र एव पर पुरुषगामिनी स्त्रियों, सामुद्रिक यात्राओ, पशु—पक्षियो, जीव—जन्तुओ आदि की कहानियॉ भरी पड़ी है। सोमदेव के कथासरित्सागर के अध्ययन से यह पता चलता है कि एक कथा के गर्भ से अनेक कथाओ का अविर्भाव होता है जो कि एक के बाद एक क्रमशः' प्रकट होती रहती है। इन कथाओं में कही भी अस्पष्टता का भाव नही उत्पन्न होता है। यही लेखक की निपुणता है कि वह पाठक को बिना थकाएं ही सारा मनोरंजक ढग से ज्ञान करा देता हैं। यही सोमदेव की प्रसिद्धि एवं अमरत्व की

आधारशिला है।[69] भारत की प्राचीन कथाओ का यह महानग्रथ (कॉर्पस ऑफ स्टोरीज) है।[70] कथासरित्सागर मे कई कथाएँ कई बार यहाँ तक कि एक, दो या तीन बार भी ग्रथ मे आ गई है। फिर भी पाठक की रुचि मे कोई कमी नही आती है। कथासरित्सागर का मूल नायक नरवाहन दत्त डोन जुआन[71] के समान एक के बाद एक क्रमश युवतियो के ह्रदय को जीतता जाता है, अनेक कष्टो को सहन करता हुआ अत मे या तो उससे उसकी प्रेयसी का पुनर्मिलन हो जाता है या किसी नई प्रेयसी की प्राप्ति होती है। पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार इन कथाओ मे मोहित करने वाली शक्ति नही रह जाती है।[72] कहानी रहस्यात्मक न रहकर उसका सब कुछ फल पहले से निश्चित रहता है। भारतीयो में अपने कर्मयोग के प्रति अटूट श्रद्धा ही नही बल्कि विश्वास भी है इसीलिए उनके लिए कोई घटना नई नही है, इसी से वे न तो किसी घटना के होने पर चौकते ही है और न ही आश्चर्य की दृष्टि से उसे देखते है। सब कुछ पूर्वनिर्धारित है।[73] इस दृष्टि से पाश्चात्य कवि राबर्ट ब्राउनिंग[74] ने इस भारतीय धारणा को अपनाया था।

सोमदेव के विशाल ग्रथ कथासरित्सागर के सामान्य तौर पर अध्ययन करने से पता चलता है कि लेखक ने सामाजिक परिवेश का वर्णन करते हुए शिक्षा देने अथवा किसी बात को पुष्टि करने के लिए रामायण, महाभारत, तथा विभिन्न ग्रंथों के विषय—वस्तु को अथवा अंशों को प्रवाहमयी कथा के रूप मे प्रस्तुत किया है।

कथा सरित्सागर मे कथा शिव की स्तुति के उपरान्त प्ररम्भ होती है। इस ग्रंथ मे भगवान शिव ने कथा पार्वती को सुनाया। इससे स्पष्ट होता है कि कथा अतिप्राचीन काल से निरन्तर प्रवाहित हो रही है। कथा सरित्सागर मे सृष्टि रचना का वर्णन आता है, जिसमें उल्लिखित है कि भगवान शिव के एक बूँद खून से एक पुरूष उत्पन्न हुआ, उस पुरुष को देखकर शिव ने प्रकृति का निर्माण किया। इस प्रकार इन दोनो ने अन्यान्य प्रजापतियों को उत्पन्न किया उन प्रजापतियो ने अन्यान्य प्रजाओ को उत्पन्न किया।[75] इसी प्रकार का विवरण ऋग्वेद में मिलता है जिसमे सृष्टि की उत्पत्ति विशाल पुरुष से बतलायी गई है।[76]

कथासरित्सागर मे रामायण की सक्षिप्त कथा भी आती है जो कि बहुत पहले से समाज में चली आ रही थी। जिसमें उल्लेख है कि अयोध्या मे राजा दशरथ के चार–पुत्र, राम, भरत, लक्ष्मण एव शत्रुघ्न का जन्म जिसमे राम को विष्णु का अशावतार बताया गया है, दशरथ द्वारा भरत को राजसिहासन देकर राम, लक्ष्मण एव सीता को वनवास प्रदान किया। राम के वनवास के दौरान रावण ने सीता का हरण किया। राम द्वारा बलि का वध एव सुग्रीव से मित्रता तथा हनुमान आदि की सहायता से समुद्र पर पुल बॉधकर रावण को मारा और लका का राज्य विभीषण को देकर सीता को प्राप्त किया। तत्पश्चात् राम ने अयोध्या का शासन सम्हाला।

एक दिन उसने निरीक्षण के दौरान देखा कि एक पुरुष अपनी स्त्री को घर से बाहर इस लिए निकाल रहा था कि वह दूसरे के घर जाकर रही। इसी समय राम ने स्त्री द्वारा यह कहते हुए सुना कि "राक्षस के घर गई सीता को रामचन्द्र ने नही छोडा। यह मेरा पति उससे बडा है जो अपने बान्धव के यहॉ गई मुझको घर से निकाल रहा है।" इससे राम ने अत्यन्त खेद एवं लज्जा का अनुभव करते हुए सीता को वन में छोड दिया। गर्भ धारण के कारण खिन्न सीता वाल्मीकि मुनि के आश्रम में पहुँची जहॉ ऋषियो ने उसकी परीक्षा कर उसे महापतिव्रता घोषित किया। वाल्मीकि आश्रम मे लव कुश के जन्म एवं विभिन्न विद्याओं मे निपुण होने का उल्लेख है। राम द्वारा नरमेध यज्ञ का आयोजन जिसमे अच्छे लक्षण वाले पुरुष को ढूढते हुए लक्ष्मण द्वारा लव को सम्मोहित करके अयोध्या ले जाने का वर्णन है। वाल्मीकि ऋषि द्वारा अपने दिव्य दृष्टि से इसकी जानकारी कुश को देना। कुश द्वारा राम एवं लक्ष्मण को युद्ध में पराजित करना। राम द्वारा परिचय पूछने पर उसने बताया कि हम लव और कुश दोनो राम के पुत्र है, ऐसी मेरी माता जानकी कहती हैं इस प्रकार राम का अपने पुत्रों से मिलन हुआ। राम के द्वारा सीता को वाल्मीकि आश्रम से बुलाकर दोनो पुत्रों को राज्य का भार देकर राम सुखपूर्वक रहने लगे।[77] इस रामायण की कथा मे वाल्मीकि की रामायण से कुछ भिन्नता है। इसके अतिरिक्त सोमदेव ने इस कथा में सीता त्याग एवं समाज द्वारा स्त्रियो के प्रति

व्यवहार को अधिक विस्तार प्रदान किया है। इसी तरह सोमदेव ने महाभारत के कथानक को अपने ग्रंथ मे कई स्थलो पर उदाहरण—कथा के रूप मे स्थान प्रदान किया है। एक स्थल, सोमदेव ने मृगया का व्यसनी राजा पाण्डु वन गया। जहॉ पाण्डु ने किन्दम नामक ऋषि जो मृग का रूपधारण करके अपने पत्नी के साथ आनन्द कर रहे थे, को मृग समझ कर बाण चलाकर मार डाला। तत्पश्चात् उस मुनि ने पाण्डु को शाप दिया कि, हे राजन तुमने बिना विचारे मुझे मार डाला अतः पत्नी के साथ समागम करने पर तुम्हारी भी मृत्यु होगी। तत्पश्चात् ससारिक भोगो से विरक्त राजा पाण्डु अपनी पत्नी माद्री के साथ भोग करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ।[78]

सोमदेव ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् से मिलती—जुलती कथा का भी वर्णन किया है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में जहॉ शकुन्तला को शाप प्राप्त होता है वही इसमें राजा को तिलोत्तमा नामक अप्सरा द्वारा शाप प्राप्त हुआ।[79] कथा सरित्सागर मे वत्सराज उदयन के मगध नरेश की पुत्री पद्मावती से विवाह कराके मगधराज को मित्र बनाने के लिए उदयन के महामत्री योगन्धरायण द्वारा स्वप्न वासवदत्ता को जल भरने की अफवाह आदि तदुउपरान्त पद्मावती से उदयन का विवाह, पुन स्वप्न वासवदत्ता एवं उदयन का मिलन[80] इस कथानक को लेकर महाकवि भास ने इसके पूर्व स्वप्नवासवदत्तम् की रचना किया। इसकी कथा को सोमदेव ने अपने ग्रंथ कथासरित्सागर मे उल्लेख किया। इसी उदयन का पुत्र नरवाहनदत्त कथासरित्सागर की कथाओं का केन्द्र बिन्दु है। जिसके आस—पास अन्य कथाओं का संजाल बिछा हुआ है। प्रथम शती ई पू के आस—पास भास ने सस्कृत मे 'स्वप्नवासवदत्तम्' नामक नाटक की रचना किया। इस नाटक की कथावस्तु भी कथासरित्सागर मे प्राप्त कथा से मेल खाती है। ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठता है कि सोमदेव ने इस प्रकरण को भास कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' से ग्रहण किया या बृहत्कथा में यह कथा विद्यमान थी। जिसका उसने अनुकरण किया इस समय बृहत्कथा के बारे मे संदेह है कि उसकी सम्पूर्णरचना प्राप्त थी या नहीं ? जबकि भास का स्वप्न वासवदत्तम् आज भी पूर्ण रूपेण प्राप्त है। ऐसी स्थिति में प्रतीत होता है कि सोमदेव ने

यद्यपि इसकी मूल प्रेरणा बृहत्कथा से प्राप्त किया जबकि इसके घटनाक्रम को भास की उपलब्ध कृति का अवश्य ही आश्रय लिया होगा। इसके अलावा बाणभट्ट द्वारा रचित 'कादम्बरी'[81] की कथावस्तु भी प्राप्त होती है। सोमदेव ने यद्यपि कादम्बरी की मूल कथावस्तु को ग्रहण किया फिर भी पात्रो के नाम मे परिवर्तन मिलता है। 'कादम्बरी' मे जहॉ राजा 'शुद्रक' के राजदरबार मे चण्डाल की राजकन्या शुक को लाती है वही इस कथा मे राजा सुमना के राजदरबार मे निषाद राज्य कन्या शुक को पिजरे मे लेकर उपस्थित होती है। कथासरित्सागर मे पंचतत्र की बहुत सी कहानी प्राप्त होती है। कथासरित्सागर मे पचतत्र की उल्लू, नेवला, बिल्ली और चूहे,[82] कौआ, कछुआ, मृग और चूहे[83] की कथा जो कि पचतत्र के मित्र–लाभ प्रकरण में है, अतिरिक्त पत्रतत्र की कौओ, और उल्लूओ की कथा,[84] ब्राह्मण और नेवले[85] आदि की कथाऍ कथासरित्सागर में विद्यमान है। इसके अलावा कथासरित्सागर के समकालीन ग्रंथ क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामंजरी' में भी पंचतत्र की कहानियॉ प्राप्त होती है। क्षेमेन्द्र ने इन कथाओं को पत्रतत्र के अनुसार एकसाथ कर दिया है। इनकी कथाओ मे कही पर अत्यधिक संक्षेप और कही अस्पष्टता के कारण कहानियो का सारा आकर्षण और रोचकता नष्ट हो जाती है। परन्तु कथासरित्सागर मे ये कथाएं यत्र–तत्र बिखरी पडी है जो कि जगह–जगह पर पचतंत्र की पशु–पक्षियों, जन्तुओ की कहानियों से सोमदेव सरल भाव से शिक्षा प्रदान करते है लेखक का सम्भवतः यही अभीष्ट भी था। इन कथाओं में लगभग आधी कहानिया 450 ई के पूर्व बने एक ऐसे संग्रह में विद्यमान थी जिसका उपयोग आर्यसेन संघ नाम के एक भिक्षु ने अपने ग्रंथ मे किया था। जिसका चीनी भाषान्तर उसके शिष्य गुणवृद्धि ने 492 ई. मे किया था।[86]

कथासरित्सागर मे 'वेतालपंचविशंति' नामक कहानियो का एक बढिया गुच्छा प्राप्त होता है।[87] वेतालपंचविंशति की कहानियॉ क्षेमेन्द्र के बृहत्कथामंजरी में भी प्राप्त होती है। बृहत्कथामंजरी मे यह कहानियॉ सक्षिप्त एव अलकार से रहित प्राप्त होती है। क्षेमेन्द्र ने वेतालपंचविशति कहानियो का वर्णन जहॉ केवल 1206 श्लोकों में किया है वही सोमदेव ने कथासरित्सागर मे काथात्मक ढग से

2195[88] श्लोकों मे वेतालपचविशिति की कहानियो का विस्तार पाया जाता है।

ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ये वेताल विक्रम की कहानियां मूल बृहत्कथा में या नही ? इस विषय मे हर्टेल एव एजर्टन के मतो का उल्लेख करना आवश्यक है कि बृहत्कथा मे बेतालपचविशति की कहानिया विद्यमान न थी,[89] जो कि उचित ही प्रतीत होता है। क्योंकि नरवाहन उपरिकाम से इस कथा का वास्तविक सम्बन्ध नही समझ में आता है। कीथ के मतानुसार वेतालपचविशति कहानियो पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है।[90]

कथासरित्सागर मे इन कथाओ के अतिरिक्त नलदमयन्ती[91] की कहानी, पाणिनि की कथा,[92] पाटलिपुत्र की कथा आदि भी मिलती है। कथासरित्सागर मे पाणिनि की जो कथा प्राप्त होती है वह ऐतिहासिक एव प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती है। पाणिनि और वररूचि के समय मे पर्याप्त अन्तर है। पाटलिपुत्र[93] की कथा मिलती है। चाणक्य की कथा[94] में विशाखदत्त के मुद्राराक्षस मे इस वार्ता को प्रकारान्तर से लिया गया है। किन्तु मुद्राराक्षस के कथा का आधार यही है। दशकुमार चरित की भी कथाए कथासरित्सागर मे मिलती हैं। कथासरित्सागर मे मदिरावती[95] की कथा प्राप्त होती है। यही कथा 'मालतीमाधव' प्रकरण का मूल है इसमे यही मदिरावती मालती के रूप मे वर्णित है। मालतीमाधव वृतान्त में माधव का मालती के न प्राप्त होने की आशा मे श्मशान जाना और वहॉ पर अधोरघण्ट का समागम होना आदि वर्णित है। इसमें माधव द्वारा वृक्ष पर चढकर फाँसी लगाना तथा किसी युवक द्वारा उसका फॉसी के फन्दे को काटने का उल्लेख मिलता है।[96] भवभूति ने यह सम्पूर्ण सामग्री लावणाक लम्बक के चतुर्थ तरंगस्थ विदूषक की कथा से लिया है। यद्यपि इस ग्रंथ मे अनेक ऐसी कथाओं का समावेश है जो कि अन्य ग्रंथो मे भी प्राप्त होती है परन्तु सोमदेव ने उनका जितना आकर्षक एवं सरल वर्णन किया है, उतना अन्य किसी में नही है। ऐसी स्थिति मे कथासरित्सागर भारतीय वाड्मय मे एक मौलिक एवं महत्वपूर्ण रचना के रूप में अवतरित होता है। भारतीय साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य मे भी इस ग्रंथ का महत्वपूर्ण स्थान है।[92]

कथा सरित्सागर मे प्रात होने वाली कथाए न केवल भारतीय सस्कृत ग्रथो मे प्राप्त होती है अपितु विश्व जगत के अन्य साहित्य मे भी प्राप्त होती है।

पश्चिमी जगत मे कथासरित्सागर की कुछ कथाएँ अत्यन्त लोक प्रिय है। सम्भवत. इन कथाओ का मूल स्रोत गुणाढ्य की बृहत्कथा थी। कथासरित्सागर मे प्राप्त उपकोशा[98] की कथा से मिलती–जुलती कहानी वर्टन के अरेबियन नाइट्स मे मिलती है जिसमे एक मिस्र की स्त्री और उसके चार–यारो की कहानी है। अग्रेजी के उपन्यासो मे भी परियो की कहानी मे ऐसा प्रसग मिलता है। कथासरित्सागर के राजा ब्रह्मदत्त[99] की कथा में मयासुर के लडको द्वारा पैतृक धन लाठी, खडाऊँ और एक पात्र के लिए संघर्ष एव इन वस्तुओ की प्राप्ति के लिए पुत्रक द्वारा सुझाए गए नियम कि जो तीनो में दौडने मे अधिक बलवान हो वही ले ले। इनसे मिलती जुलती कहानी अरेबियन नाइट्स मे है, जिसमें शाहजादा मोहम्मद और पीरबानू की कहानी में ऐसा प्रसंग आता है कि तीन शाहजादे नूर निहार से शादी करने के लिए ऐसी ही तीन चीज लाए थे, उसका फैसला करने के लिए तीर फेके गए थे। कथासरित्सागर की इस कथा से मिलती कहानी अरेबिन नाइट्स के अलावा 'बहारे दानेस' और ग्रीम्स के फेरीटेल्स मे आती है। परन्तु कुछ परिवर्तन किया गया है। कथा सरित्सागर के राजायोगनन्द का अन्तःपुर, मरी मछली का हॅसना[160] कथा में राजा के अन्तःपुर अनेक पुरुष स्त्रियों के रूप मे भरे है। इस प्रकार का वर्णन अरेबियन नाइट्स में शहरयार के अन्तःपुर में स्त्री वेषधारी पुरुषों के रहने की चर्चा आती है। कथासरित्सागर के लोहजघ[101] कथा मे गरुड वंश के पक्षी का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार अरेबियन नाइट्स मे सिन्दाबर जहाजी की कहानी मे तीन फकीर और बगदाद की तरुणियो की कथा के प्रसंग में, तीसरे फकीर की कहानी मिलती–जुलती है। इस कहानी मे इस प्रकार के पक्षी की चर्चा है। कथासरित्सागर मे प्राप्त कथाएं जो विश्व के कतिपय साहित्यिक कथाओं से साम्य रखती है तथा कथाए कुछ परिवर्तन के साथ भारतेत्तर देशों के साहित्य मे पायी जाती है। अब प्रश्न उठता है कि ये कहानियां भारत भूमि की उपज है या सोमदेव ने इन कथाओ से पाश्चात्य देशों से ग्रहण किया। इस सदर्भ में

उल्लेखनीय हे कि सोमदेव के कथासरित्सागर की मूल प्रेरणा एव स्रोत गुणाढ्यकृत बृहत्कथा है। हो सकता है कि पश्चिमी कथासाहित्य की कुछ कथाओं का भी स्रोत बृहत्कथा रहा हो, क्योकि भारत मे प्रचलित कुछ कथाए सम्भवत सार्थवाह, पर्यटक और धर्म प्रचारको के माध्यम से अन्य देशो को गयी होगी। ऐसी कथाओ मे विशेष रूप से पिशाचो की कथाएँ उल्लेखनीय है। भारतीय साहित्य मे कथासरित्सागर का स्थान वही है जो ग्रीक साहित्य मे होमर के ग्रथ 'इलियड' और 'ओडिसी' का है।[102]

कथासरित्सागर की कहानियों का संग्रह करने वाला लोक विलक्षण प्रतिभा का धनी है। जिसने स्पष्ट, रोचक और मनमोहक ढग से कहानियो का प्रस्तुतीकरण किया है तथा इन गुणों के अतिरिक्त कहानियो मे व्यापकता है। ये कहानियॉ समाज के सभी आयामो को अपने पेट में समाहित किए हुए है। सोमदेव द्वारा समाज का शायद ही कोई अवयव अछूता रहा हो, विशेषकर नागरिक जीवन का। सोमदेव के राजा—रानी, राजकुमार—राजकुमारी, मंत्री, सेनापति, दूत, युद्ध, प्रणय आदि विषय—वस्तु तो है ही लेकिन इन्होने अन्य पक्षो पर भी अपनी लेखनी का प्रयोग किया है। सोमदेव ने अपनी लेखनी बिना खुटक का अनुभव किए हुए चलायी हैं। जैसे बरसात की मटमैली धाराओ के ऊपर चारोओर का खरपतवार आकर बहने लगता है वैसे ही सोमदेव की कथाओं की शैली बुराइयों को समेटकर सामने ले आती है। मानव स्वभाव जैसा है वैसा ही उसे दिखाना, यह महान लेखक की विशेषता होती है और सोमदेव इसमे पिछडे हुए नही है। सोमदेव की अनेक कहानिया मन पर एक बार छप जाने के बाद फिर नही भुलाई जा सकती है।[103]

कथासरित्सागर में स्त्रियों की कथाएं बहुलता के साथ मिलती है। इस प्रकार की कथाए उनके दुश्चरित्र निम्न आचरण से सम्बन्धित है।[104] कथासरित्सागर के 36वें तरग मे एक कथा आती है कि एक राजा के पास एक सुन्दर श्वेत हाथी था जो चोट खाकर गिर पडा। इसी समय भविष्यवाणी हुई कि यदि कोई भी सच्चरित्र नारी इसे स्पर्श कर दे तो हाथी उठ जाएगा। लगभग राज्य की 86,000 स्त्रियों ने स्पर्श किया परन्तु वह हाथी उठा नही।

केवल एक सती साध्वी स्त्री नगर मे थी जिसके स्पर्श से वह हाथी उठ गया। राजा को अन्तःपुर की रानियो के चरित्र के विषय मे अत्यन्त आश्चर्य हुआ तथा उस साध्वी स्त्री की बहन से राजा ने विवाह कर लिया। उसके चरित्र की रक्षा के लिए उसे एकान्त मे ले जाकर रखा। परन्तु उसका भी चरित्र दूषित हो गया।[105] कथासरित्सागर के 64वे तरग मे घट कर्परनामक चोर की कथा मे राजकन्या का कई पुरुषो से एक–एक करके छोडकर दूसरे के साथ सम्बन्धो का उल्लेख मिलता है।[106] इसके आलावा कथासरित्सागर मे दुश्चरित्र स्त्रियो की अनेक कथाएँ मिलती है जो अपने पतियो के अतिरिक्त परपरुष गमन करती थी। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा मद्यपान द्वारा मदमत्त स्त्रियो आदि का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

सोमदेव ने दुश्चरित्रा स्त्रियो के अलावा कुट्टनी[107] का भी वर्णन किया है जिसके निरीक्षण मे वेश्याएं रहती थी जो कि आने वाले लोगों से सर्वप्रथम सम्पर्क करती थी।

इसके अतिरिक्त सच्चरित्र स्त्रियो की कथाओं का प्रणयन सोमदेव ने किया है। उपकोशा नामक सत्चरित्र स्त्री का उल्लेख मिलता है जो कि अपने सतीत्व की रक्षा कुमार सचिव, पुरोहित, कोतवाल तथा हरिण्यगुप्त बनियों से किया।[108] इसके अतिरिक्त पतिव्रता स्त्री देवस्मिता की कथा विश्व साहित्य मे प्रसिद्ध है।[109] एक पतिव्रता स्त्री ने परोक्ष रूप से बगुली की वृतान्त जान लिया[110] पतिव्रता नाम विश्व विख्यात है।[111] कुछ समय के बाद उस रानी के गर्भ से नागश्री उत्पन्न हुई। एक बार उसकी माता को अकस्मात ही पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। उसने कहा राजन्, यदि मै आपसे न कहूॅ तो प्रेम विरूद्ध है यदि कहूँ तो मेरी मृत्यु होती है इसलिए मुझे बहुत खेद है। राजा ने कहा, मुझे भी अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया है मै तुझसे कह दूॅ तू मूझसे कह दे। भविष्य को कौन टाल सकता है इस प्रकार पति से प्रेरित होकर रानी ने कहा मैं इसी कोशल देश मे माधव नामक किसी ब्राह्मणकी सदाचारिणी दासी थी। देवदास नाम को मेरा पति किसी सज्जन वैश्य के घर नौकर था। इस प्रकार हम दोनों अपने अनुरूप घर बनाकर अपने–अपने स्वामियों के घरो से लाए हुए

पकवानो से जीवन निर्वाह किया करते थे। कुछ समय के बाद उस देश मे अकाल पडा जिसके परिणामस्वरूप भोजन कम मिलने लगा। तब भूख प्यास से व्याकुल अन्न की कमी से कष्ट पाते हुए हम लोगो के भोजन के समय कोई थका हुआ ब्राह्मण अतिथि घर मे आ गया। फलत· इस भी·षण प्राण संकट के समय मे हम लोगो ने अपना सारा भोजन उसे दे दिया। मेरा पति क्षुधा से पीडित हो कर परलोक सिधार गया तब भी मैने सती प्रथा का अनुसरण करते हुए परलोक मे पति का पुनः सानिध्य प्राप्त कर लिया। राजा ने कहा प्रिये ! मै वही तुम्हारे पूर्वजन्म का देवदास हूँ। मैने भी आज ही अपना पूर्व जन्म स्मरण किया है। ऐसा कहकर के और अपने पूर्व जन्म के सस्मरण बता करके प्राणहीन राजा उस देवी के साथ स्वर्ग मे चला गया।[112] पाटलिपुत्र के एक ब्राह्मण की दो पत्नियो की कथा चरित्र के विषय में उल्लिखित है।[113] कल्मष स्त्रियो के चरित्र सम्बन्धी कथाओं के उद्भ·व का मूल बौद्ध कथाए रही होंगी। ऐसी सम्भावना व्यक्त की जाती है।[144] इस संदर्भ मे बेनफी के इस मत को मान्यता नही प्रदान की जा सकती कि कथासरित्सागर की सब कथाओं का मूल बौद्ध कथाएं है।[113] यद्यपि सोमदेव बौद्ध नहीं थे फिर भी बौद्ध कथाओं को कथासरित्सार में स्थान दिया। यह उनके व्यापक दृष्टिकोण एवं विशाल हृदय प्रतीक है। बौद्ध कथाएं 27 और 28 तरंगो मे पायी जाती है।[116] बौद्ध कथाओं की श्रृंखला 72वे तरंग में पायी जाती है इस के अलावा वेताल की कहानियों पर भी बौद्ध प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। बौद्ध कथाओ का आभास इसके अतिरिक्त अन्य कथाओं मे भी होता है।[117] कथासरित्सागर के अध्ययन से पता चलता है कि सोमदेव ने स्त्रियों के स्वभाव विश्लेषण के विषय में बहुत रुचि लिया है। स्त्री–चरित्र की अनेक कहानियॉ उनके सग्रह मे विद्यमान है। स्त्री–चरित्र स्वभाव के गुण–दोषो का खुलकर चित्रण करते है। इससे पता चलता है कि 11वी शताब्दी ई. का काश्मीर स्त्रियो के विषय मे कुछ अधिक सम्मान सूचक भाव से प्रभावित नहीं था। सोमदेव स्त्रियों के चरित्र सम्बन्धी हीनता, अमर्यादित उच्छृंखलता और प्रायः स्त्री चरित्र के ऐसे पक्ष को सामने रखते है, जो किसी प्रकार से भव्य नहीं कहा जा सकता है।[118]

सोमदेव ने स्त्री कथाओ के अतिरिक्त मूर्खों की कथाओ मे अधिक रुचि लिया है। जिन मूखो की कथाओ का उल्लेख सोमदेव ने किया वे भारतीय साहित्य ही नही अपितु विश्व साहित्य मे भी लोकप्रिय है।[119] सोमदेव ने भुने हुए तिल बोने वाले मूर्ख कृषक की कथा का एक नुकीला तुलिका प्रस्तुत किया है– अगुरुदाही की कथा तुमने सुनी, अब ति˜लकार्षिक की कथा सुनो। एक स्थान पर भूत के समान एक मूर्ख किसान रहता था। उसने एक बार तिलो को भूनकर खाया और उन्हे स्वादिष्ट जानकर उने भुने हुए तिलो को ही वैसा ही मीठा तेल पैदा करने की दृष्टि से खेतो मे बो दिया। अब भुने हुए तिलो के न उगने पर अपने माल के नष्ट करने वाले कृषक की सभी लोग हॅसी करने लगे।[120] एक मूर्ख रूई वाले की कहनी – "हे देव ! गहनो के सम्बन्ध मे मूर्ख की कहानी कह चुका हूँ अब रूई वाले की कहानी सुनिए। कोई मूर्ख रूई बेचने बाजार गया पर साफ न होने के कारण किसी ने नही लिया तब उसने देखा कि सुनार सोने को आग मे तपाकर शुद्ध कर रहा है। उस सोने को सुनार ने बेचा और ग्राहक ने खरीद लिया। यह देखकर उसने अपनी रूई को साफ करने के लिए आग मे डाल दिया। इससे सब लोग उस उल्लू पर हॅसने लगै यह तुलिका की कहानी हुई।[121] अब खजूर काटने वाले मूर्ख की कहानी सुनो।

इस तरह सोमदेव के कथासरित्सागर मे तरंगित शैली मे सोमदेव की छोटी कहानियां बड़ी कहानियों के सम्पुट मे कटहल के कोयो की तरह भरी हुइ है।[122] इसी तरह गॅवार गोदोहक की कहानी है उसकी गाय प्रतिदिन पॉच सेर दूध देती थी। किसी समय उसके घर एक उत्सव का समय निकट आया। उसने सोचा समय आने पर इकट्ठा दूध दुह लॅूगा, इस लिए महीना भर गाय को नही दूहा। उत्सव आने पर दूध दुहने बैठा तो उसे दूध की एक बूँद भी न मिली।[123] इस ग्रथ मे मूर्खों की अनेको कहानियॉ है। एक अन्य मूर्ख की कहानी है जो अपनी यात्रा के बीच भूख लगने पर सात पुए खाए अन्तिम पुआ खाने पर उसकी भूख शान्त हो गई। अब वह पाश्चाताप करने लगा कि अन्तिम पुआ कही सबसे पहले क्यो नही खाया। विश्वसाहित्य में भी लोकप्रिय कथाएं मिलती हे एक मूर्ख नौकर की कथा जो चौखट साथ लेकर चलता था अथवा उस मूर्ख

की कथा जिसने कहा था कि उसके पिता ने अपने जीवन काल मे ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया था।

कथा सरित्सागर मे मुग्ध कथाए भी पायी जाती है जिनका मूल उद्देश्य हास्यरस की नि सृति है। कई कथाए लोगो का मनोरजन भी करती है। अनेक कथाओ के अत मे लिखा है कि यहॉ तक कि पाषाण खण्ड भी सुन कर अट्टहास करने लगेगे। इन कथाओ मे शठ, चोर, जुआरी, आदि की कथाऍ वर्णित है। इस प्रकार की कथाओ का वर्णन सोमदेव ने बुद्धिमत्ता पूर्ण किया है।[125]

सोमदेव ने एक धूर्त और झूठे मत्री की रोचक कथा का वर्णन किया है जो एक वणिक का वेष धारण करके राजा को प्रतिदिन वार्तालाप करने के लिए पॉच सौ दीनार प्रदान करने लगा ऐसा करने पर राज्य के लोगों ने उसे महामंत्री समझ लिया। उसने अपनी धूर्तता के बल पर सभी अधिकारियों, सामन्तो, राजपुत्रों और सेवको से भिन्न–भिन्न युक्तियो द्वारा राजा से बाते करते हुए पॉच करोड दीनार कमा लिया और उससे प्रसन्न होकर उसे राजा ने महामंत्री बना दिया।[126] कथासरित्सागर में शिव और माधव धूर्तों की कथा का मनोरंजक वर्णन है जिसमें एक साधु का स्वाग रचता था दूसरा राजकुमार का। उसने अपने हथकण्डे के आधार राजपुरोहितो की अनुपम सुन्दरी पुत्री से विवाह करके उसका सारा धन ठग लिया।[127] कथासरित्सागर एक शठ की कहानी मे प्राप्त होती है जिसमे शठ की शठता उसके बुद्धिमत्ता के कारण भुला देनी पडती है। उसे एक दिन इन्द्र का राज्य मिल गया जिसके फलस्वरूप पुण्यकार्य करके स्वयं इन्द्र के पद को स्थायी रूप से हस्तगत कर ही नही लिया अपितु अपने आस–पास के अन्य धूर्तों, जुआडियों एवं वेश्याओं को भी स्वर्ग मे लाकर देवत्व प्रदान करा दिया।[128] इसके अलावा सोमदेव ने धूर्त साधुओ का भी वर्णन किया है जिसने किसी की सुन्दरी कन्या का अपहरण करने के लिए उसे बताया कि कन्या बुरे ग्रहों के संयोग से उत्पन्न हुई है। उसके पिता ने उसे एक डिब्बे में बंदकरा कर बहा दिया। संयोगवश सुन्दरी को राजकुमार ने डिब्बे से निकाल कर उसमें बंदर डाल कर बहा दिया। सुन्दरी

कन्या को प्राप्त करने के इच्छुक सन्यासी ने डिब्बे को जैसे ही खोला उसमे एक बदर मिला जिसने उसकी ऑख निकाल ली और कान को नोच डाला।[129] इस तरह से कथा सरित्सागर मे धूर्तों, ठगो की अनेक कहानियॉ मिलती है।

सोमदेव ने अपने ग्रंथ कथासरित्सागर मे जहॉ एक ओर बडी–बडी कहानियो का ताना–बाना तैयार किया है वही दूसरी ओर अतिसक्षिप्त कहानियो की रचना करके अपने को उत्कृष्ट कथाकार होने का परिचय प्रदान किया है। सक्षिप्त कथा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है – प्राचीन समय मे किसी राजा के यहॉ अकाल पडा। उस राज ने नागवाहनो की फुहार की जलधारा से सुअर की प्रियतमा की पीठ पर स्वयं खेती किया, तब उपजे अन्नो से वह राजा धनी हो गया और प्रजा के अकाल को दूर किया।[130]

इसके अलावा सोमदेव के इस ग्रथ मे पश्चिमोत्तर भारत के तुर्कों से आक्रान्त होने का प्रतिबिम्बन मिलता है। इस समय तक उत्तर–भारत महमूद गजनवी के आक्रमणो से आक्रान्त हो चुका था। तुर्कों, ताज़िको का उत्तर–भारत मे आवागमन होता रहता था। कथासरित्सागर मे उल्लेख मिलता है कि तीन वैश्य यात्री जंगल आदि को पार कर उत्तर दिशा पहॅुचे। जहॉ ताजिको ने उन्हे पकडकर दूसरे ताजिक को बेंच दिया। तदुउपरान्त दूसरे ताजिक ने मुखार नामक तुर्क के पास उपहारस्वरूप इनकों भिजवा दिया।।[131] इससे स्पष्ट है कि सिन्धु मे अरबों की सत्ता की स्थापना हो चुकी थी तथा यदा–कदा तुर्कों के आक्रमण होते रहते थे। कथासरित्सागर मे सोमदेव ने स्पष्ट रूप से उल्लिखित किया कि तुर्को एवं ताजिकों के कारण उत्तर दिशा असुरक्षित हो गयी थी। जब कि दक्षिणा पथ इस समय पूर्ण सुरक्षित था।[132] इस विषय में क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मंजरी में कोई उलेख नहीं मिलता है।

सोमदेव ने अपने वर्णन के बीच–बीच मे नीति सम्बन्धी सूक्तियॉ डाल दी है। यथा – बिना उद्योग के सिद्धि प्राप्त नही होगी।[133] धन ही पुरुषो का यौवन है और धन का अभाव ही बुढापा है। धन के अभाव से मनुष्य की ओज, तेज, बल और रूप नष्ट हो जाता है।[134] जीवन–निर्वाह न कर सकने वाले

स्वामी को सेवक, पुष्पहीन वृक्ष को भ्रमर, जलरहित सरोवर को हस, चिरकाल तक उसका आश्रय पाकर भी छोड देते है।[135] गुणी के लिए कोई विदेश नही है। सन्तोषी के लिए कोई दुःख नही है। धैर्यशाली के लिए कोई विपत्ति नही है और उद्योगी के लिए कोई कार्य असाध्य नही।[136] इस प्रकार के नीति सम्बन्धी सूक्तियो की छौक वर्णन के स्वाद को बढा देती है।[137] इससे पाठक के मस्तिष्क पर अपना अमिट प्रभाव डालती है।

कथासरित्सागर अनेक प्रकार की कहानियो का महापर्व है। उसके पूरे स्वरूप की परिकल्पना बडी कठिनाई से किया जा सकता है। भारतीयो का विश्वास है कि कहानी सुनने से पाप नष्ट होता है। इसका अभिप्राय यही है कि अच्छी कहानियों को सुनने से मन का तनाव दूर होता है और मानव को अपनी स्वाभाविक स्थिति में ला देती है। यह उस नमक की चुटकी के समान है जो सारे भोजन को स्वादिष्ट बनाती है। सोमदेव का ग्रंथ रत्नों से परिपूर्ण डिब्बे है चाहे जहॉ से अपनी रूचि के अनुसार हम उन्हे चुन सकते है।[138]

संदर्भ

1 एस एन प्रसाद, कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ 21

2 वही, पृ 25

3. काव्यादर्श—1, 23—28

4 वासुदेवशरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका, खण्ड—1, पृ 5

5 क स सा , खण्ड—1, 2 / 10, 100 / 21

6 एस एन प्रसाद, कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ 29

7 बृ क. म., 3, 51, 55

8 वासिल्ज्यू, बुद्धिज्म, पृ 295, द्रष्टव्य, एस एन.प्रसाद, कथासरित्सागर और भारतीय सकृति, पृ 29

9 क.स सा , खण्ड—1, 2 / 3

10. वासुदवे शरण अग्रवाल कथासरित्सागर की भूमिका, भाग 1, पृ 6

11. वही, पृ. 6

12. वही, पृ. 6

13. एस.एन. प्रसाद, कथासरिसागर और भारतीय सस्कृति, पृ. 45

14. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका प्रथम खण्ड, पृ 7

15. वही, पृ. 8

16. वही, पृ. 8

17. वही, पृ. 8

18. एस.एन. प्रसाद, कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ 45

19. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका खण्ड—1, पृ 12

20. एस.एन. प्रसाद, कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति, पृ 46

21. वही, पृ 49

22 विन्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ. 350

23. वही, पृ. 351

24. वही, पृ. 81

25 वही, पृ. 352

26 वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका खण्ड—1, पृ 17

27 प. दुर्गा प्रसाद और काशीनाथ पाण्डुरग का चतुर्थ सस्करण, विद्यासागर प्रेस, बम्बई — 1930

28. बुलर — 1885 (एस.डब्ल्यू ए.)

29 वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका खण्ड—1, पृ. 5

30 क स सा., खण्ड—1, 2/10—12

31. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका खण्ड—1, पृ 19

32 विन्टर विल्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ. 353

33 टॉनी, द ओसन ऑफ स्टोरी जि, 1 पृ. 31

34 वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका खण्ड—1, पृ. 5

35. वही, पृ. 5

36. वही, पृ 5

37. वही, पृ. 14

38. वही, पृ. 14

39. क.स.सा., खण्ड—1, 2/4

40. वही, खण्ड—1, 2/5

41. वही, खण्ड—1, 2/6

42. वही, खण्ड—1, 2/7

43. वही, खण्ड—1, 2/8

44. वही, खण्ड—1, 2/9

45. कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, मगलदेव शास्त्री द्वारा हिन्दी अनुवाद, पृ. 334—335

46 एस.एन. प्रसाद, कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति, पृ 206

47. वही, पृ. 207

48 जे.एस. स्पेयर, स्टडीज एबाउट दि कथासरित्सागर, अमेस्टर्डम, 1908, पृ. 174

49 एस एन प्रसाद, कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ 216

50 विन्टरनित्स हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ 354

51 वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका, खण्ड—1, पृ 22

52 एस.एन प्रसाद, कथासत्सिागर और भारतीय सस्कृति, पृ 215

53 क स सा , खण्ड—2, 51/48

54. लाकोत, मि ज जि. 4 पृ. 247

55 विन्टरनित्स हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ 356

56 टॉनी, दि ओसन ऑफ द स्टोरी, जि 2 प्राक्कथन, पृ 10

57 क स सा., खण्ड—1, 410/20—28

58 क.स.सा., खण्ड—3, पृ. 910/61, खण्ड—2, 458—60/59—78

59. वही, खण्ड—1, पृ 122/33—34

60. वही, खण्ड—3, पृ. 655

61. वही, खण्ड—1, पृ 69

62. वही, खण्ड—2, पृ 669

63. वही, खण्ड—1, पृ 33

64. वही, खण्ड—1, पृ. 241

65. वही, खण्ड—2, पृ. 743

66 वही, खण्ड—1, पृ. 760 एव खण्ड—2, पृ. 766, 768

67. वही, खण्ड—3, पृ. 267—571

68. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका, खण्ड—1, पृ 22

69 कीथ, सस्कृत साहित्य का इतिहास, हिन्दी अनुवादक मगल देव शास्त्री पृ. 355

70 एस.एन. प्रसाद कथासत्सिागर और भारतीय सस्कृति, पृ. 207

71 विन्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ. 355

72. एस.एन प्रसाद, कथासत्सिागर और भारतीय संस्कृति, पृ. 207

73. वही, पृ. 207

74 राबर्ट ब्राउनिग, रबाई बेन एजरा पक्ति, 1—8 तक

75. क.स सा., खण्ड—1, 12 / 11

76. ऋग्वेद, 10 90.12 1

सहस्त्रशीर्षा पुरुष सहस्त्राक्ष सहस्त्रपात
पुरुष एवेद सर्व यद्भूत यच्च भव्यम् ।।

77. क.स.सा., द्वितीय खण्ड, पृ. 458—466

78 वही, खण्ड—1, पृ. 410—412

79 वही, खण्ड—1, पृ. 123 / 33—34

80 वही, खण्ड—1, 274 / 106—107

81 वही, खण्ड—2, पृ. 744—48

82 वही, खण्ड—1, पृ 760

83. वही, खण्ड—2, पृ. 812

84. वही, खण्ड—2, पृ. 850

85. वही, खण्ड—2, पृ. 910

86. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका, खण्ड—1, पृ 24

87. क स.सा में खण्ड—3, द्वादश लम्बक (अष्ट तरग से द्वाविश तरग), पृ. 267—571 तक

88. सुशील कुमार डे, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ 421

89. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका, खण्ड—1, पृ. 24

90. कीथ, सस्कृत साहित्य का इतिहास हिन्दी अनुवादक मगल देव शास्त्री पृ. 355

91. क.स.सा , खण्ड—2, पृ. 666

92 वही, खण्ड—1, पृ. 38

93 वही, खण्ड—1, पृ. 24

94 वही, खण्ड—1, पृ. 68

95 वही, खण्ड—3, पृ. 692

96 वही, खण्ड—3, 700 / 71—73

97. एस.एन. प्रसाद, कथासत्सिागर और भारतीय सस्कृति, पृ 215

98 क.स सा , खण्ड—1, पृ 40

99 वही, खण्ड—1, पृ 32

100. वही, खण्ड—1, पृ. 56

101 वही, खण्ड—1, पृ 182

102 एस.एन प्रसाद, कथासत्सिागर और भारतीय सस्कृति, पृ. 215

103 वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, खण्ड—1, पृ 24—25

104 क स.सा., 34, 182, 60, 3, 6, 61, 193, 66, 29, 71, 22, 78, 48, 124, 140

105 वही, खण्ड—2, पृ 916

106 वही, खण्ड—2, पृ 916

107. वही, खण्ड—1, 182/79

108. वही, खण्ड—1, 46/83

109 विन्टरनित्स हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ. 359

110. क.स.सा., 56/171

111. वही, 27/79

112. वही, खण्ड—1, पृ. 610

113. वही, खण्ड—3, 216/418

114. एस.एन. प्रसाद, कथासत्सिागर और भारतीय संस्कृति, पृ 212

115. पंचतंत्र 1, पृ. 148

116. विन्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ 361

117. क.स.सा., 65, 44, 117, 32, 75, 120, 50, 116 तरग

118. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका, खण्ड—1, पृ. 24

119. विन्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ. 357

120. क.स.सा., खण्ड—2, पृ. 802—804

121. वही, खण्ड—2, पृ. 806

122. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका, खण्ड—1, पृ. 25

123. क.स.सा., खण्ड—2, पृ. 808—810

124. क.स.सा., खण्ड—2, पृ. 878 / 204—8

125 विन्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, पृ 357

126. क.स.सा , खण्ड—2, पृ 984—86 / 113—133

127 वही, खण्ड—1, 502 / 198

128 वही, खण्ड—3, 1102 / 198

129 वही, खण्ड—1, पृ. 242—44

130. वही, 124 / 220—221

131. वही, खण्ड—2, 48 / 36—37

132 वही, खण्ड—2, 50 / 48—51

133. वही, खण्ड—2, 246 / 56

134. वही, 61 / 116

135. वही, 61 / 118

136. वही, 61 / 121

137. वासुदेव शरण अग्रवाल, कथासरित्सागर की भूमिका, खण्ड—1, पृ. 26

138. वही, पृ. 26

6.1. विन्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर पृ० 348

6.2. एस॰ एन॰ प्रसाद कथा सरित्सागर और भारतीय संस्कृति पृ० 43

6.3. काव्यालंकार 2, 102

6.4 काव्यानुशासन 4, 303-324

6.5 सिद्धनाथ प्रसाद, कथा सरित्सागर और भारतीय संस्कृति पृ० 43

6.6 क० स० सा० 7/26-29

6.7 दशरूप - 56, 14

6.8 वासिलज्यू बुद्धिज्म पृ॰ 295

सामाजिक संगठन

मनुष्य के जीवन को सुसस्कृत, सुगठित और सुव्यवस्थित बनाने के लिए सामाजिक सगठन की व्यवस्था की गई थी। इस सामाजिक गठन का उद्देश्य मनुष्य के लौकिक और पारलौकिक दोनो जीवन का विकास करना था। सामाजिक संगठन में वर्ण, जाति, आश्रम, पुरूषार्थ, सस्कार महत्वपूर्ण थे, जो मानव जीवन को उन्नति एवं गतिशीलता प्रदान करते थे। गतिशीलता के साथ–साथ समाज मे सामाजिक आर्थिक कारणो से दासप्रथा जैसी सामाजिक व्यवस्था की भी जानकारी मिलती है जिसमे मानव के जीवन को सकुचित किया गया। भारतीय सामाजिक सगठनों मे हमे कतर्व्यपरायणता, बौद्धिकता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता एव परिश्रम आदि तत्वो का योग दिखाई पडता है, जिससे भारतीय सामाजिक जीवन प्रवध्मान रहा।

प्राचीन भारतीय ग्रंथो के अनुशीलन से पता चलता है कि इस सामाजिक संगठन की मुख्य विशेषता वर्णव्यवस्था थी जिसके आधार पर भारतीय समाज का ताना–बाना बुना गया था। इस सामाजिक ताने–बाने को उद्देश्यपूर्ण व्यवस्थाओं और नियमों से क्रियान्वित किए जाने से सामाजिक स्तरीकरण रूपी जाति व्यवस्था का निर्धारण हुआ। जो कि सामाजिक कार्यो के निर्धारण में महत्वपूर्व भूमिका का निर्वाह किया। यद्यपि आगे चलकर इसमे कुछ कमियां भी आ गई।

कथा सरित्सागर के काल के आस–पास कतिपय नवीन सामाजिक नियम एवं मान्यताएं निर्मित हो चली थी। पश्चिमोत्तर भारत तुर्को के आक्रमण से आक्रान्त था जिससे लग रहा था कि सामाजिक संगठन में विश्रृंखलता आ गई है। जिसमे ताजिक व्यक्तियों को पकडकर दास बनाने लगे थे। इस्लाम धर्म के प्रचार के पीछे सांस्कृतिक श्रेष्ठता एवं उदान्त दार्शनिक पृष्ठभूमि के स्थान पर सैन्य बल का भयंकर रोग छिपा था।[1]

दूसरी ओर भारतीय सस्कृति मे प्रगति वादी सुधार सम्बन्धी हवा चलना शुरू हो रही थी जिसमे ताजिको के सम्पर्क मे आ चुके भारतीयो को पुन अपने समाज मे मिलाकर उदारता का परिचय भी दिया गया।

वर्ण एवं जाति व्यवस्था

प्राचीन भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का महत्वपूर्ण एव अद्वितीय स्थान है। इसी के आधार पर भारतीय सामाजिक जीवन का ढॉचा निर्मित हुआ है। यह वर्ण व्यवस्था प्राचीन काल से ही अनेक सामाजिक सक्रान्तियो को झेलते हुए पर्याप्त समय तक उसी प्रकार सुदृढ बनी रही।[2] यह व्यवस्था वैदिक युग से प्रारम्भ करके आज भी किसी न किसी रूप से निरन्तर प्रवहमान है। जाति प्रथा में सकीर्णता आ रही थी। नवीन जातियॉ तथा उपजातिया बन रही थी तथा दूसरी तरफ प्राचीन धर्मशास्त्रकारो द्वारा निर्दिष्ट जाति व्यवसाय सम्बन्धी परम्परिक नियमों के अनुसरण के क्षेत्र में शिथिलता के साक्ष्य द्रृष्टव्य होते है।[3]

इस वर्ण व्यवस्था के संदर्भ मे प्रथम उल्लेख ऋग्वेद के पुरूष सूक्त[4] मे मिलता है। जिसमें विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से राजन्य, जघा से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न हुए। इसका लाक्षणिक अर्थ यह लगाया गया कि पुरूष ने मनुष्य मात्र को शिक्षा देने के लिए ब्राह्मणो की सृष्टि की, अपनी पूरी शक्ति से मनुष्य मात्र की रक्षा करने के लिए क्षत्रियों की सृष्टि हुई। मनुष्यो को भोजन उपलब्ध कराने के लिए वैश्यों की उत्पत्ति हुई। शूद्र का जन्म तीन वर्णो की सेवा करने के लिए हुआ।[5] ऋग्वेद में ब्रह्म, क्षत्र और विश् का उल्लेख मिलता है परन्तु प्रथम मडल में चारो वर्णो के विद्यमान होने का संकेत मिलता है। इसमें उल्लिखित है कि एक वर्ण सूर्योदय होने, उच्च आर्दश को प्राप्त करने के लिए, दूसरा उच्च महिमा प्राप्त करने के लिए, तीसरा लाभ प्राप्ति के लिए और चौथा परिश्रम करके अपना जीवन व्यतीत करने के लिए है।[6] **भूरिदत्त जातक** में भी वर्णन मिलता है कि महाब्रह्मा ने ब्राह्मणों के लिए अध्ययन, क्षत्रियो के लिए राज्य जीतना, वैश्यों के लिए कृषि तथा शूद्रो के लिए तीनो वर्णो की सेवा करने का विधान प्राप्त होता है।[7] वर्णो के विभाजन

से स्पष्ट है कि यह विभाजन कर्म तथा व्यवस्था के आधार पर हुआ था।[8] किन्तु कर्म पर आधारित विभिन्न व्यवसाय से सम्बद्ध विभिन्न वर्ग बना दिए गए जिससे लोगो के अन्दर धीरे–धीरे अलगाव की भावना घर कर गई।[9]

ब्राह्मण

कथासरित्सागर के अनुशीलन से पता चलता है कि तत्कालीन समाज मे ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि था। देवता और ब्राह्मणो की पूजा सज्जनो के लिए कामधेनु के समान है, जिससे सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है।[10] इससे उसकी समाज मे सर्वश्रेष्ठ स्थिति का पता चलता है। तैत्तरीय संहिता मे बताया गया है कि ब्राह्ममण के अन्दर समस्त देवता निवास करते है इस लिए देवता माना गया था।[11] ब्राह्मणो की सुविधाओं का सर्वदा ध्याने भी रखा जाता था समाज मे उसे कष्ट मिलने पर जल में टूटी हुई नाव की तरह राजा का राज्य विनष्ट हो जाता है।[12] अलबीरूनी लिखता है कि ब्राह्मण सबसे ऊँचे वर्ण के है। उनके विषय में हिन्दू धर्म ग्रथ कहते है कि वे ब्रह्मा के सिर से उत्पन्न हुए है। जिस शक्ति को माया कहते है उसका दूसरा नाम ब्रह्मा है। शरीर का सबसे ऊँचा अग सिर है, इसी लिए ब्राह्मण सभी जातियों में श्रेष्ठ है। अतः हिन्दू उन्हें सर्वोत्तम मानते है।[13] आलोच्य ग्रंथ मे ब्राह्मणो के कत्तर्व्यों पर भी प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मणों द्वारा वेदो का अध्ययन किया जाता था। वे वेदों के ज्ञाता होते थे।[14] कथासरित्सागर मे वेदपाठी[15] ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है। सामवेदी ब्राह्मणो का वर्णन है, जिसमे सामवेदी विद्वान विधिपूर्वक सामगान कर रहे थे, कही वेदो के अर्थ निर्णय पर विद्वानो में शास्त्रार्थ हो रहा था।[16] ब्राह्मण विष्णुदत्त शिक्षक का कार्य करता था जो वेद विद्या का विशारद था।[17] ब्राह्मण शिक्षको के पास विद्यार्थी दूर–दूर से आते थे। इन विद्यार्थियो को वेद की शाखाओ का ज्ञान कराया जाता था।[18] जिसमें वेद की 12 शाखाओ के अध्ययन का वर्णन है। ब्राह्मण वेदो, धर्मशास्त्रों व विभिन्न विधाओ का ज्ञान प्राप्त करते थे, तदुपरान्त गृहस्थ बनकर धर्म के अनुकूल जीवनयापन करते थे। कुछ ब्राह्मण आचार्य का कार्य करते थे।[19] जातक षष्ठ में कहा गया है कि वेदो का अध्ययन अध्यापन ब्राह्मणों का कर्म

है।[20] ब्राह्मणो को विभिन्न शास्त्रो का ज्ञान रहता था।[202] वेदो के अध्ययन एव अध्यापन के अतिरिक्त सोमदेव ने ब्राह्मणो को यज्ञ करते हुए प्रदर्शित किया है।[21] अर्थशास्त्र,[22] मनुस्मृति,[23] याज्ञवलक्य स्मृति[24] आदि ग्रथो मे ब्राह्मणो के प्रधानत छ. कर्म बताए गए है ये वेदाध्ययन, वेदो को पढाना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना, दान देना और दान प्राप्त करना। ये कर्म उसके स्वधर्म के अन्तर्गत आते थे, जो वैदिकयुग मे उसके साथ सम्बद्ध थे।[25] प्रारम्भिक मध्ययुग के धर्मशास्त्रकारो ने ब्राह्मण को समाज का सुयोग्य प्राणी बताया है, इनके अनुसार ब्राह्मण का कत्तर्व्य है कि वह वेदो के अध्ययन अध्यापन मे समय व्यतीत करे, पवित्र आचरण वाला हो, मिथ्या भाषण न करे, पापो से भयभीत रहे, अहिसा का पालन करे, घर मे अग्नि प्रज्जवलित रक्खे। धार्मिक यम तथा नियमो का पालन शास्त्र के अनुसार करे। गायो की रक्षा करे तथा वह तृष्णा एव लालच से दूर रहे।[26] कृत्य कल्पतरु में भी ब्राह्मण के लिए उपर्युक्त बातों के पालन का विधान बताया है।[27] कथासरित्सागर में ब्राह्मण धर्म का भी विवरण उपलब्ध है। इसमे ब्राह्मण का स्वाभाविक धर्म क्षमा बताया गया है। मोक्ष चाहने वालो का धर्म शान्ति है।[28] एक अन्य विवरण मे भी मित्र और शत्रु पर समान रूप से क्षमा करने को ब्राह्मण धर्म बताया गया है।[29] जातक में ब्राह्मण को धर्म का पर्याय बताते हुए उल्लेख है कि ब्राह्मण तो धार्मिक होते ही है।[30] जातको का यह उल्लेख धर्मात्मा सच्चे ब्राह्मणो के लिए था, जो अपने कर्त्तव्यो का नैतिकता पूर्वक पालन करते थे।

सोमदेव ने ब्राह्मणो के उपरोक्त तथ्यों के अलावा दूसरे पहलुओ का भी अच्छा चित्रण किया है। ब्राह्मण, पुरोहितो तथा वेदपाठी ब्राह्मणो का उल्लेख किया है। ज्ञानी ब्राह्मणो द्वारा अपने शरीर त्यागने तीर्थस्थानो में जाते थे। इस सदर्भ मे बदरिका आश्रम मे जाने का उल्लेख है।[31] इसी प्रकार के विवरण तत्कालीन ग्रंथों मे मिलता है, जिसमे लोग शरीर त्याग करने हेतु वाराणसी एवं प्रयाग में जाते थे। प्रयाग में वटवृक्ष से कूदकर प्राण देने का उल्लेख है। कुछ ऐसे ब्राह्मणो का भी वर्णन है जो क्रोधी स्वभाव के होते थे अपने अपमान का बदला लेने के लिए धार्मिक क्रियाए सम्पादित करते थे। इस

सदर्भ मे ब्राह्मण चाणक्य द्वारा **'कृत्या'** साधना करने का वर्णन है जिसके प्रभाव के कारण राजा नन्द ज्वर दाह से सातवे दिन मर गया।[32] कथासरितसागर में ब्राह्मण तथा चाण्डाल द्वारा साथ–साथ तपस्या करने का उल्लेख है। जिसमे भावना तथा तत्वज्ञान के कारण चाण्डाल, राजा के घर पैदा हुआ जब कि व्रत मे विचलित होने के कारण ब्राह्मण धीवरो के कुल मे जन्म लिया।[33]

इस विवरण से स्पष्ट है कि समाज मे गुण एव कर्म की महत्ता थी। इसमे ब्राह्मण, पुरोहित तथा वेदपाठी ब्राह्मणों के प्रति हास्यास्पद दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार वेदपाठी ब्राह्मण स्वभाव से ही भय, क्रोध और कठोरता के घर होते है।[34] ये सृष्टि के आरम्भ काल से मोक्ष के विरोधी तथा काम, क्रोध के निकेतन होते है।[35 1] क्षेमेन्द्र ने भी वेदपाठी ब्राह्मण को मूर्ख कहा है[35 2] क्षेमेन्द्र ने एक मन्दिर के सरक्षक पुरोहित के असद् कार्यो का उल्लेख अत्यन्त स्पष्ट रूप से किया है।[35 3] इसके अतिरिक्त सोमदेव के समकालीन अन्य लेखको कल्हण, क्षेमेन्द्र ने भी पुरोहितो का हास्पास्पद चित्रण किया है इससे यह अभिव्यंजित होता है कि समाज ब्राह्मण के प्रति कितना आलोचनात्मक एव यथार्थ दृष्टिकोण अपना चुका था, अन्यथा ये ब्राह्मण लेखक अपनी ही जाति के वर्ग विशेष को इतना हेय दृष्टि से न अंकित करते।[35 4] इन बातों के होते हुए भी ब्राह्मणो द्वारा धार्मिक कृत्य सम्पन्न कराएं जाते थे। गुप्त सम्राटों के यज्ञ ब्राह्मण पुरोहितो ने करवाएं थे।[36] इसके अतिरिक्त ब्राह्मण शकुन, ज्योतिष आदि के बारे मे जानकारी रखते थे। विवाह, युद्ध तथा अन्य कार्यो को सम्पादित करने के लिए गणना करके बतलाते थे। राजा ने सोना, रत्नो आदि की चोरी का पता लगाने के लिए ज्योतिषी को बुलवाया था।[37] इसके अतिरिक्त विवाह, नामकरण, श्राद्ध,[38] राज्याभिषेक आदि धार्मिक कृत्य बिना ब्राह्मणो के सम्पादित होना असम्भव था। राजाओं के यहॉ राजपुरोहित की नियुक्ति होती थी जो वंशानुगत होती थी। जनसामान्य के भी पुरोहित होते थे इनमें भी वंशानुगत का सिद्धान्त कायम था, जो कि आज भी सामान्यत: देखने को मिलता है। ब्राह्मणो को धार्मिक कार्यो के प्रतिफल स्वरूप दान प्राप्त करते थे। हर्षचरित मे उल्लेख है कि धार्मिक कृत्यो को सम्पन्न करवाने के

बदले पुरस्कार स्वरूप हर्ष ब्राह्मणो को प्रभूत दान देता था।[39] इसके अतिरिक्त **अलबीरूनी** लिखता है कि राजाओ तथा सामन्तो के यहॉ धार्मिक कार्य सम्पन्न करवाने के लिए ब्राह्मण रहता था, जिसे पुरोहित कहते थे। ऐसे पुरोहित को धार्मिक आदि कार्य करवाने के बदले दान और उपहार मिलते थे।[40 1] लक्ष्मीधर ने लिखा है कि ब्राह्मण पुरोहितो के रूप में समस्त धार्मिक क्रियाओ को सम्पादित करते थे।[40 2] कथासरित्सागर मे उल्लिखित है कि ब्राह्मणो को अग्रहार ग्राम भी प्रदान किया जाता था।[40 3] अग्निहोत्र ब्राह्मण को राजा द्वारा अच्छे–अच्छे वस्त्र, गहने और अनेक गॉव पुरस्कार के रूप मे प्रदान किया।[41] मध्यकालीन अनेक अभिलेखो द्वारा ब्राह्मण पुरोहितो के वर्णन मिलते है, इन ब्राह्मण पुरोहितो को अनेक प्रकार के दानादि दिए जाते थे।[42] जयचन्द्र ने अपने पुत्र हरिश्चन्द्र का नामकरण सस्कार सम्पन्न किए जाने पर अपने राजपुरोहित ऋषिकेश शर्मान को दो ग्राम दान में दिए थे।[43] ब्राह्मण दूसरे वर्णो से दान प्राप्त करते थे। दान प्राप्त करना उनका धर्म था।[44] आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी ब्राह्मण को विभिन्न अवसरो पर आचार्य के लिए दक्षिणा, प्रथम विवाह, यज्ञ, माता–पिता के भरण पोषण की इच्छा, विद्या आदि, दान प्राप्त करने की आज्ञा प्रदान की गई। कथासरित्सागर मे ब्राह्मण वेश्याओ के द्वारा दिए गए दान को भी प्राप्त करने का उल्लेख है, जिसमें मदनमाला अपनी सम्पत्ति ब्राह्मणों को दान करके पाटलिपुत्र जाने को उद्यत हुई।[45] ब्राह्मणों द्वारा सामान्यतः एक स्त्री के साथ विवाह करने की प्रथा थी, किन्तु ऐसे भी उद्धरण है जिससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण एक मे अधिक स्त्रियों के साथ विवाह सम्पन्न कराते थे।[46] अथर्ववेद में भी उल्लेख है कि ब्राह्मण प्रत्येक वर्ण से एक–एक स्त्रियां रख सकता था।[47] इस सिद्धान्त का विवेचन अलबीरूनी ने भी किया है कि पत्नियों की संख्या वर्ण पर आधारित थी जिसके अनुसार ब्राह्मण चार, क्षत्रिय तीन, वैश्य दो और शूद्र एक पत्नी रख सकता था।[48] जातको मे ऐसे विलासी ब्राह्मणों का उल्लेख मिलता है जिसका वृद्धावस्था मे भी मन काम भोगो में ही लीन रहता था। कुछ ऐसे वृद्ध ब्राह्मणो का वर्णन है जिन्होने सन्यास ग्रहण करने वाली आयु मे तरुणियो से विवाह किया।[49] इस प्रकार का वर्णन सोमदेव ने भी किया है।

आलोच्य ग्रंथ के अनुशीलन से स्पष्ट है कि ब्राह्मण अध्ययन, अध्यापन तथा पुरोहित कर्म परम्परानुसार करते चले आ रहे थे। इस काल मे ब्राह्मणो द्वारा पारम्परित कर्मो के अलावा कतिपय ऐसे कर्म करने प्रारम्भ कर दिए थे जो समय की आवश्यकता एव दृष्टि से अनिवार्य हो गए थे।[50]

कथासरित्सागर मे ब्राह्मणो ने क्षत्रिय कर्म अपनाया था। जहॉ परिवार मे एक भाई ब्राह्मण धर्म का पालन कर रहा था, वही दूसरा भाई क्षत्रिय कर्म करने वाला था।[51] अनेक ब्राह्मणो की स्थिति राजा और सामन्तीय थी।[52] कुछ ब्राह्मणो को क्षात्र ब्राह्मण भी कहा जाता था, इस प्रकार वे ब्राह्मण राजाओ मे बगाल के सामन्त सेन और परमार मे राजा मुज प्रमुख था।[53] इस तरह ब्राह्मण क्षत्रियो की भॉति कर्म करते थे। मनु का कथन है कि यदि अपने कर्म से ब्राह्मण अपना जीवन निर्वाह नही कर सकता तो वह क्षत्रिय कर्म को अपना सकता है।[54] इसके अलावा ब्राह्मण द्वारा क्षत्रिय कर्म अपनाने की दूसरी यह व्यवस्था दिया है कि दु:साहसी मनुष्यो द्वारा ब्रह्मचर्य आदि आश्रमवासियों के धर्म का अवरोध होने, राज्य मे अराजकता की स्थिति उत्पन्न होने पर, युद्ध की सम्भावना मे, आत्मरक्षा में, दक्षिणाद्रव्य के अपहरण सम्बन्धी युद्ध में तथा स्त्रियों और ब्राह्मणों की रक्षा मे द्विजातियो को शास्त्र ग्रहण करना चाहिए।[55] महाभारत से भी शस्त्रोपजीवी ब्राह्मणों का उल्लेख है कुछ ऐसे ब्राह्मणो यथा– कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा आदि सैनिक वृत्ति के लिए विख्यात थे। ब्राह्मण सैनिको के लिए यह निर्देश था कि वे अपने राजा के समुचित आदेश पर युद्ध प्रारम्भ कर सकते थे और अपने अद्‌भुत रणकौशल से अपनी श्रेष्ठता स्थापित कर सकते थे।[56] इसके अतिरिक्त लक्ष्मीधर[57] और हेमचन्द्र[58] का भी कथन है कि ब्राह्मण अपने जीवन यापन के लिए आयुधजीवी हो सकता है। कल्हण ने ऐसे ब्राह्मण, सैनिको का उल्लेख किया है जो युद्ध भूमि में भाग लेते थे।[59] कथासरित्सागर में ब्राह्मण भी युवा होने पर अस्त्र–शस्त्र विधाओ में एवं मल्लयुद्ध मे निपुण होने का उल्लेख है।[60] क्षेमेन्द्र ने भी वृहत्कथामञ्जरी मे ब्राह्मणों के अस्त्र–शस्त्र सचालन तथा युद्ध कला कौशल सीखने वाले ब्राह्मणो का उल्लेख है। अस्त्र–शस्त्र विद्या मे निपुण ब्राह्मणो की कथाएं मिलती है।[61]

राजतंरगिणी में भी अनेक वीर ब्राह्मण योद्धाओ का उल्लेख मिलता है।[62] कथासरित्सागर मे ब्राह्मणो को प्रतिहारी का कार्य करते हुए प्रदर्शित किया गया है।[63] इसके अतिरिक्त ब्राह्मण गुण शर्मा का उल्लेख है जिसने उसका पीछा कर रहे एक सौ सैनिको को मार डाला।[64] इससे स्पष्ट है कि वर्णो का प्राचीन कत्तर्व्य विभाग शिथिल हो रहा था, सभी वर्ण अवसर एवं इच्छा के अनुसार कार्य करने लगे थे। राजा बिना किसी वर्ण अथवा जातिभेद के योग्य व्यक्तियो को ऊँचे पदो पर नियुक्त करता था।[65]

प्राचीन काल मे वैश्यो का कर्म कृषि, पशुपालन एव व्यवसाय था। परन्तु इस काल मे जिस प्रकार आपद्काल मे रक्षा हेतु शस्त्र उठाने की व्यवस्था थी ठीक उसी प्रकार ब्राह्मण के आपत्तिकाल मे कृषि कार्य एव पशुपालन की व्यवस्था थी। कथासरित्सागर मे ब्राह्मणो द्वारा कृषि कर्म[66] एव पशुपालन[67] का उल्लेख मिलता है। काणे ने इस संदर्भ मे विभिन्न मतो की समीक्षा की है।[68 1] मनु का कथन है कि यदि ब्राह्मण क्षत्रिय कर्म से जीवन निर्वाह न कर सकने के कारण ब्राह्मण, वैश्य के कर्म कृषि, गोपालन एव व्यापार ग्रहण कर सकता है।[68 2] ब्राह्मण अपने बैलो पर अधिक बोझ न ढोए। उसे समय पर भरपेट भोजन तथा पानी दे ऐसी स्थिति में वह यदि कृषि कर्म में इनका उपयोग करे तब ब्राह्मण कृषक किसी प्रकार का पाप नही करता है।[69] लक्ष्मीधर ने भी उदारवादी देवल को उद्धत करते हुए कठिन परिस्थितियो में ब्राह्मण को कृषि करने की अनुज्ञा प्रदान की है। कृषि उत्पाद से अगर वह 1/6 राज्य कर देता था, 1/12 भाग ईश्वर के नाम निकाल देता था और 1/30 भाग ब्राह्मण को देता था तो वह कोई पाप नहीं करता था।[70] अलबीरूनी ने भी ब्राह्मणों को विशेष परिस्थितियो में खेती करने का निर्देश दिया है।[71] इन विवरणो से स्पष्ट है कि ब्राह्मणो में एक ऐसा वर्ग था जो कृषि कर्म भी किया करता था। संकट के समय ब्राह्मणो को व्यापार करने की अनुमति प्राप्त थी। मनु ने कुछ वस्तुओ को ब्राह्मणो द्वारा व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगाया था। कथासरित्सागर में ब्राह्मण द्वारा गो–पालन का प्रसंग आया है। जिसमें मृगांक दत्त कहता है कि हम काशी पुरी में जन्मे है। गाएं

पालकर हम अपनी जीविका चलाते है। अनावृष्टि के कारण वहॉ अकाल पड गया और घास—दूब तक जल गई है। तब हम अपनी गायो के साथ वहॉ से बहुत घासवाले इन वन मे चले आए है।[72] इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण आपद्ध काल मे पशुपालन को भी अपनाते थे। परन्तु पशु व्यापार का ब्राह्मणो के लिए निषेध बताया गया है, किन्तु पेहोआ अभिलेख मे ब्राह्मण वायुक घोडे के व्यापारियों मे से था।[73]

धर्म शास्त्रों मे ब्राह्मणो के लिए आपत्तिकाल मे राज्य सेवा द्वारा धन अर्जित करने का विधान था। ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त है जहॉ ब्राह्मणो ने राजा के मत्री, नगराधीश तथा लेखको के रूप मे अपनी सेवाएं अर्पित की थी।[74] ब्राह्मणो द्वारा देश काल और परिस्थिति के अनुसार अन्य वर्ण कर्म को अपनाया। कथासरित्सागर के अनुसार ब्राह्मण सामान्यतः सम्मान का पात्र था। ब्राह्मण और दूत को अबध्य बताया गया है।[75] किन्तु इस समय के दण्ड संहिताओ मे इस प्रकार का प्रावधान नही था। कथासरित्सागर का उपरोक्त छूट सम्भवत· राजा की अनुकम्पा पर आश्रित रहा होगा।[76] इस प्रकार की छूट का उल्लेख अलबीरूनी ने भी किया है।[77] कथासरित्सागर में चोर ब्राह्मण का वर्णन है जो अपने अनुचरो के साथ लूटपाट एवं हत्या करता था।[78] जो बिना हत्या किए धन लेना अपने नीति के विरूद्ध मानता था।[79] इसके अलावा ब्राह्मणों द्वारा जुआ खेलने का भी उल्लेख है, एक ब्राह्मण युवावस्था मे जुएँ का व्यसनी हो गया था और अपने शरीर के कपड़े तक हार गया था।[80] इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ मे यह भी उल्लेख है कि ब्राह्मण अपनी प्रधानता स्थापित करने के लिए सात ब्राह्मण एक गुट बनाकर गॉव के कार्यो मे बाधा पहुँचाने लगे।[81] यह भी प्रसग है कि एक ब्राह्मण का दूसरे ब्राह्मण द्वारा अपमान करने पर राजा द्वारा प्राण दण्ड दिया गया।[82] ब्राह्मण द्वारा अकाल पड़ने पर जीवन की रक्षा करने लिए ब्राह्मणो द्वारा गाय के मांस भक्षण का उल्लेख है।[83] जबकि वही दूसरी ओर ऐसे तेजस्वी ब्राह्मण का प्रसग आता है जो शूद्र का अन्न नहीं ग्रहण करते थे।[84] कल्हण की राजतरगिणी मे भी अनेक ऐसे दृष्टान्त मिलते है जिसमे धूर्त, राजद्रोही तथा शठ ब्राह्मणों के बध के उल्लेख है।[85] इस प्रकार

से इस काल मे धार्मिक, अधार्मिक, धर्मात्मा एव पापी, राजा एव सेनापति, कृषक एव पशुपालक आदि सभी प्रकार के ब्राह्मणो का उल्लेख है। सोम देव यदि धर्मात्मा ब्राह्मण को सम्मान की दृष्टि से देखते है तो भ्रष्ट ब्राह्मणो की निन्दा करने मे संकोच नही करते।

क्षत्रिय

वर्णव्यवस्था में ब्राह्मणो के पश्चात् द्वितीय स्थान क्षत्रियों को प्राप्त था। प्राचीन समय से देश और समाज की रक्षा का भार क्षत्रियो पर था। प्रजा की रक्षा करना, वेद पढना, दान देना, यज्ञ करना एवं ससारिक विषयों मे चित्त लगाना क्षत्रियो का कर्म बतलाया गया है।[861] देवल के अनुसार क्षत्रिय, देवता की आराधना एव ब्राह्मण की रक्षा करे। अध्ययन एव यज्ञ के क्षेत्र में ब्राह्मणो की भॉति क्षत्रियो को भी छूट थी। वे वेदो का अध्ययन कर सकते थे किन्तु उन्हे वेद की शिक्षाओ को देने का अधिकार नही था।[862] क्षत्रियो के लिए वेदाध्ययन का उल्लेख अलबीरूनी ने भी किया है।[863] यद्यपि क्षत्रियो को दान लेने का प्रावधान नहीं था। लेकिन लक्ष्मीधर ने यह मत प्रतिपादित किया कि क्षत्रिय भी दान के रूप मे वस्तु को ग्रहण कर सकते है।[864] गौतम ने क्षत्रिय का तीन वेदो से अधीत होना बताया है तथा शासन कार्य के लिए राजा को वेद, धर्मशास्त्र, उपवेद और पुराणों का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य माना है।[865] आपस्तम्ब धर्मसूत्र मे ब्राह्मण के उपरोक्त कर्त्तव्यों को बतलाते हुए इसके साथ दड देना तथा युद्ध करना भी समाहित था। शत्रुओ पर युद्ध करके विजय प्राप्त करना क्षात्र धर्म समझा जाता था।[87] इस समय सामन्तवादी परम्परा का अधिक विकास हुआ। यद्यपि इस व्यवस्था को गुप्तकाल से ही देखा जा सकता है, किन्तु हर्षकाल मे सामन्तवाद का विकेन्द्रीयकरण प्रारम्भ हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप कथासरित्सागर के समय भारत अनेक छोटे—छोटे राज्यो में विभक्त हो गया था। इस समय राजनय का परम लक्ष्य अपने छोटे राज्यों को सुरक्षित रखना था। इससे देश में राष्ट्रीयता की भावना का लोप हो चुका था।[88] प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत मे क्षत्रियों ने अपनी जाति के उल्लेख की अपेक्षा अपने वश के उल्लेख की प्रधानता देना प्रारम्भ कर दिया

था। जिससे क्षत्रियो की जातियों का कम उल्लेख मिलता है।[89] क्षत्रियो के लिए इस काल मे राजपूत शब्द अधिक प्रयोग हुआ है। प्राचीन काल मे 'राजन्य' शब्द का उल्लेख 'पाणिनि' ने अष्टाध्यायी मे किया है।[90] यह शब्द सम्भवत आगे चलकर राजपूत शब्द का पर्याय हो गया होगा।[91]

क्षत्रियो का प्रमुख कत्तर्व्य देश, समाज और लोगो की सुरक्षा करना था। कथासरित्सागर मे क्षत्रिय को वर्णो तथा आश्रमो का रक्षक कहा गया है।[92] क्षत्रियो द्वारा प्रजा पालन का उत्तरदादित्व, शिक्षा एव धर्म का संरक्षण प्रशासन, युद्ध तथा सैन्य सचालन का गुरुतर भार इनके ऊपर था।[93] इसके अलावा राजा कभी–कभी सेनाओ के निरीक्षण हेतु 'जयस्कन्धावारो' मे भी जाया करता था।[94] इस समय के अभिलेखो से पता चलता है कि राजा के लिए बडी–बडी उपाधियो का प्रयोग होने लगा था। जिसमे, महाराजाधिराज, परमभट्टारक, परमेश्वर आदि उपाधियो के उल्लेख उपलब्ध है। इससे यह स्पष्ट है कि बाह्ययाडम्बर एव मिथ्या प्रशस्तिगान के प्रेमी थे।[95] इस प्रवृत्ति को तत्कालीन सामन्तवादी प्रवृत्तियो के कारण विकास मे सहायता मिली होगी।

आलोच्य ग्रंथ मे क्षत्रियो के शिक्षण के उद्धरण प्राप्त होते है। राजा को क्षत्रियोचित संस्कार करने के अनन्तर उसे सभी विद्याओ मे और धनुर्वेद (शस्त्र विद्या) मे शिक्षित किया जाता था।[96] शस्त्र विद्या के साथ राजा के शरीर सौष्ठव पर ध्यान दिया जाता था। इसे मल्ल विद्या भी प्रदान की जाती थी। काशिराज प्रतापमुकुट को मल्ल विद्या का विशेषज्ञ बताया गया है[97] जो अपने यहॉ कुश्ती का आयोजन भी करवाता था। राजा को शस्त्रादि विद्या के अतिरिक्त विभिन्न ग्रंथो का अध्ययन करते थे। राजा को शब्दशास्त्र का ज्ञान आवश्यक था। कथासरित्सागर में शब्द शास्त्र का ज्ञान न रखने वाले राजा की हँसी उडाने का वर्णन है।[98] इस समय के अभिलेखों मे क्षत्रियों के लिए प्रशासन तथा युद्ध विषयक ज्ञान महत्वपूर्ण बताया गया है।[99] क्षत्रियो के सदर्भ में उल्लेख है कि राजा का एक प्रमुख कर्त्तव्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना था। इस ग्रंथ में यह भी उल्लिखित है, कि विजय की इच्छा न रखने वाले क्षत्रियो की भुजाओं और उनके यौवन को धिक्कार है। राजा युद्ध अभियान के

दौरान सेना तथा अपने सामन्तो के साथ जाते थे।[100] ये सामन्त राजा की अधीनता मे शासन करते थे, ये समय–समय पर राजा को कर, उपहारादि के साथ–साथ आवश्यकता पडने पर राजा की युद्ध मे अपने सैनिको के साथ सहायता करते थे। राजाओ के युद्ध के प्रस्थान के समय माताओ द्वारा मगलाचरण किया जाता था।[101] क्षत्रिय अधर्म तरीके से विजय प्राप्त नही करते थे।[102] धर्मशास्त्रो में युद्ध के नियमो को बताया गया है। जिसका अनुसरण क्षत्रिय युद्ध के दौरान एव अन्य अवसरो पर करते थे, जबकि यदा–कदा नियमो के उल्लघन के दृष्टान्त भी मिलते है। राजा द्वारा अपने पुत्र को युवराज नियुक्त करते थे।[103] बडे पुत्र को सामान्यत· युवराज नियुक्त करते थे परन्तु यदि बडा पुत्र अयोग्य हो तो छोटे पुत्र को भी उत्तराधिकारी घोषित करने का साक्ष्य प्राप्त होता है। इसमे उल्लिखित है कि राजा वीरभुज ने ज्येष्ठ पुत्रो के होने पर भी भृग भुज छोटे पुत्र को युवराज पद पर नियुक्त किया।[104] शासको एवं राजकुमारी का वैवाहिक सम्बन्ध राजाओं की पुत्रियो, सामन्त की पुत्रियो[105] एवं वैश्य कन्याओ[106] के साथ होने की सूचना मिलती है। शासको द्वारा क्षात्र–धर्म के कुशलता पूर्वक निर्वहन के साथ–साथ अनेक व्यवसनों का उल्लेख कथासरित्सागर में मिलता है, राजा उदयन वीणा वादन का व्यसनी, था जो वीणा वादन के द्वारा हाथियों को वश मे करने के लिए वन–वन में घूमता रहता था।

वही काशिराज प्रतापमुकुट मल्ल युद्ध का व्यसनी था, वही कुछ शासको के मृगया व्यसन का भी उल्लेख मिलता है। चालुक्य नरेश विनयादित्य के गणित ज्ञान की प्रशंसा होती थी, यह गणित का महान पण्डित था। वही हर्ष साहित्य एवं विद्वानों को सरक्षण प्रदान करने के साथ–साथ स्वय साहित्य सृजन में सलंग्न रहा। राजा भोज की ख्याति सर्व प्रसिद्ध हैं। चौहान शासक विग्रहराज चतुर्थ द्वारा प्रणीत नाट्यग्रंथ शिला पर उत्कीर्ण साहित्य का एक अनूठा उदाहरण है।[107] राजाओं द्वारा अनुजीवी राजाओं (सामन्तो) का सत्कार करने का भी उल्लेख आलोच्य ग्रंथ में है।[108] ये सामन्त समय–समय पर राजाओं की सेवा में उपस्थिति होकर उपहार आदि प्रदान करते थे। राजा

द्वारा लोगो को वस्त्र, आभूषण एव गॉव पुरस्कार के रूप मे देने का उल्लेख है। राजाओ द्वारा ब्राह्मणो को दान मे वस्त्राभूषण आदि वे साथ–साथ गॉव भी अग्रहार के रूप मे दिए जाते थे।[109]

कथासरित्सागर के अवलोकन से स्पष्ट है कि क्षत्रियो के दो वर्ग स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते है। प्रथम वर्ग मे राजा, सामन्त और उनके सम्बन्धी तथा विशिष्ट राजपुरूष आते थे। इस समय के समाज में इनका महत्वपूर्ण स्थान था। दूसरा वर्ग योद्धाओ एव सैनिको का था। इनकी नियुक्ति राज्य की सुरक्षा हेतु की जाती थी। तत्कालीन अभिलेखो मे कतिपय क्षत्रिय राजकर्मचारियो का उल्लेख है।[110] सामान्यत क्षत्रियो का प्रशासन तथा युद्ध सम्बन्धी ज्ञान महत्वपूर्ण था।[111] अरबी यात्री इब्नखुर्दाब्द ने हिन्दुओं की सात जातियो का उल्लेख किया है। जिसमे प्रथम वर्ग सबुकफ्रिया का है। जबकि तीसरे वर्ग को कटरिया कहा गया है।[112] प्रथम वर्ग से राजा तथा सामन्त आते थे, जबकि तीसरे वर्ग मे साधारण क्षत्रिय योद्धा वर्ग आते थे। अरबी लेखको ने क्षत्रियो के इस योद्धा वर्ग को 'ठाकुर' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इस समय के अभिलेखो में भी क्षत्रियो को ठाकुर कहा गया है राजतरंगिणी मे राजपुत्रों के वेतन की व्यवस्था का उल्लेख है।[113] सम्भवतः राजकीय वेतन प्राप्त करने वाले कर्मचारियों में इनका सर्व प्रमुख उल्लेख है।[114]

कथासरित्सागर में मलेच्छ[115] शब्द का उल्लेख मिलता है। जो अभिलेखो मे उल्लिखित हूण[116] माना जाता है। मेसोपोटामिया के अभिलेखो मे मलेच्छ के लिए मलय शब्द आया है।[117] यहॉ पर मलय शब्द विदेशी वे रूप में आया प्रतीत होता है। अभिलेखो से स्पष्ट है कि हूणो को भारतीय जाति व्यवस्था मे स्थान प्रप्ति हो गया था। हूणो के साथ राजपूतो ने वैवाहिक सम्बन्ध कायम किए थे।[118] इस अभिलेखिक सूचना के आधार पर कहा जा सकता है कि तत्कालीन जाति व्यवस्था मे हूणों को देशी क्षत्रिय की भॉति स्थान मिल गया रहा होगा। सम्भव है कि इस प्रकार के विवाहो के पीछे कोई राजनीतिक मन्तव्य भी छिपा रहा हो किन्तु सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से उतना महत्वपूर्ण नही है।[119] इस समय के अभिलेखिक साक्ष्यों से स्पष्ट है कि

राजा द्वारा इनको अन्य सैनिको की अपेक्षा विशेष सुविधाए दे रखी थी। जबकि स्थानीय भारतीय सैनिको को इन सुविधाओ से वचित होना पडा।[120] कौटिल्य ने राजकीय सेवा मे रत सैनिको की मृत्यु के उपरान्त मृतक के परिवार को राजकीय अनुदान देने का उल्लेख मिलता है।[121] चदेल अभिलेख मे त्रैलोक्यवर्मन नामक सैनिक तुर्कों से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके परिवार के जीवन–निर्वाह के लिए राजकीय सहायता के रूप मे भूमि दिया गया था।[122]

पूर्व मध्ययुगीन आर्थिक विषमताओ के कारण प्राचीन वर्ण व्यवस्था विशुद्ध रूप से अवशिष्ट नही रह सकी थी। इसीलिए कतिपय ऐसे उद्धरण भी सुलभ है जिनके अनुसार क्षत्रियो ने शास्त्रोक्त व्यवसायो के अतिरिक्त अन्य व्यवसायो को जीवकोपार्जन हेतु अपनाया था।[123] गौतम,[124] मनु[125] ने क्षत्रियो को जीवकोपार्जन हेतु वैश्यकर्म अपनाने की सलाह दी है। लक्ष्मीधर ने भी क्षत्रियो को आपत्तिकाल में वैश्यकर्म करने का विधान दिया है।[126] अतएव स्पष्ट है कि आपत्तिकाल मे क्षत्रिय अपने परिवार के पोषण के निमित्त कुछ प्रतिबन्धो वे साथ वाणिज्य एवं व्यापार कर्म अपना सकता था।

वैश्य

'वैश्य' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम ऋग्वेद मे मिलता है। पाणिनि ने वैश्य के लिए 'अर्य' शब्द का प्रयोग किया है। भारतीय प्राचीन अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड था। व्यापारिक एवं कृषि व्यवस्था का सम‍स्त भार उसी के ऊपर था अर्थ सम्बन्धी नीतियो का संचालन भी वही करता था।[127] वैश्यो का प्राचीन काल मे अध्ययन, यजन और दान देना परम कत्तर्व्य बताया गया है।[128] वैश्यो के लिए प्रतिपादित यह कत्तर्व्य पूर्वमध्यकाल तक आते–आते काफी परिवर्तित हो चुका था। गुप्तकाल से ही वैश्यों के लिए श्रेष्ठि, वणिक और सार्थवाह आदि नामो से संबोधित किया जाने लगा था।[129] पूर्वमध्यकाल मे बौधायन ने उनकी अवस्था शूद्रो के समकक्ष मानी है।[130] अलबीरूनी ने भी वैश्यो को शूद्र की श्रेणी का ही स्वीकार किया है। वेद पढने पर दोनो को एक ही तरह का दण्ड दिया जाता था।[131] इब्नखुर्दाब्द ने भी वैश्यों को समाज के वर्ग विभाजन में शूद्र

के बाद पाचवा स्थान दिया है।[132] इसका प्रमुख कारण अध्ययन एव यज्ञ करने से विरत हो जाना था। इसके अलावा दोनो एक ही साथ गॉव और नगरो मे बसते थे।[133] कथासरित्सागर के अध्ययन से पता चलता है। कि इस समय वैश्यो का प्रमुख कर्म व्यापार था। यह व्यापार देशीय एव अन्तर्राष्ट्रीय था। कथासरित्सागर मे कुछ ऐसे व्यापारी थे जो गॉवो, नगरो मे रहकर व्यापार करते थे। इस प्रकार के व्यापार की व्यवस्था श्रेणी पद्धति पर आधारित रही होगी द्वितीय ऐसे व्यापारियो का वर्णन है जो कारवॉ लेकर व्यापार के लिए स्थल मार्गो द्वारा जाते थे। ऐसे व्यापारी 'सार्थवाह' की भूमिका का निवर्हन भी करते थे। कुछ ऐसे व्यापारियों का वर्णन आता है जो व्यापार के लिए दूसरे देशो की समुद्री यात्राए करते हुए दिखते है और व्यापार से अपार धनसम्पदा लाते थे। ऐसी समुद्री यात्राएं साहसिक होती थी।

कथासरित्सागर मे वैश्य पुत्रो की शिक्षा का विवरण मिलता है इस ग्रथ मे वैश्यो के लिए वणिक् शब्द का उल्लेख सामान्यतः हुआ है। इस समय वणिको को धर्मशास्त्रो की शिक्षा के जगह व्यापार कार्य मे आवश्यक समझी जाने वाली शिक्षा प्रदान की जाती थी इन्हे अक्षर ज्ञान, एव गणित का ज्ञान कराया जाता था।[134] इस ग्रंथ में उल्लिखित विवरणो के आधार पर कहा जा सकता है कि देशीय एवं अन्तर्देशीय व्यापार के लिए वस्तुओ एव क्रय–विक्रय का हिसाब रखने हेतु बही बनाने की प्रथा रही होगी। एक वणिक बालक के कुछ पढ़ लेने पर उसकी माता ने कहा बेटा, बनिये के पुत्र हो, व्यापार करो। वणिक् व्यापार कला में चातुंर्य थे।[135] ऐसा सुनकर व्यापार करने हेतु वणिक पुत्र ने एक वणिक् से मरे हुए चूहे को हाथ से उठाकर एक डिब्बे में रखा लिया और बणिक् के बही मे लिखकर चला गया।[136] कथासरित्सागर मे ऐसे वणिको का उल्लेख है जो कि नगरो तथा गॉवो मे रहते थे।[137] जो स्थानीय स्तर पर व्यापार करते थे। धन को गिरवी रखते थे तथा उधार भी देते थे। कुछ ऐसे व्यापारी थे जो आढत का कार्य करते थे तथा अपना धन बिना लगाए ही बीच में दलाली से धन कमाते थे।[138] कथासरित्सागर मे एक ऐसे अर्थलोभी वणिक् का विवरण मिलता है जो मधुर रूप, भाषण और व्यवहार मे कुशल अपनी पत्नी मानपरा को व्यापार कार्य मे लगाया था। इसने अपनी पत्नी को

सुखधन वणिक् से पॉच हजार घोडे चीनी और दस हजार कपडो के जोडे खरीद लाने के लिए भेजा। परन्तु सुखधन ने केवल एक रात्रि उसके साथ व्यतीत करने पर उपरोक्त वस्तुओं को प्रदान करने को कहा। मानपरा अपने अर्थलोभी पति के द्वारा भेजने पर मानपरा सुखधन के पास गई। उसकी स्त्री ने अपने अर्थलोभी पति को छोडकर सुखधन के साथ रहने का निश्चय कर लिया।[139] इस प्रकार स्थानीय स्तर पर ग्रामो और नगरो मे वणिको द्वारा व्यापारिक गतिविधियो के सचालन का विवरण प्राप्त होता है।

कथासरित्सागर मे स्थलमार्गो द्वारा व्यापारिक गतिविधिया संचालित होती थी। प्राचीन भारत के प्रसिद्ध स्थल मार्गो में उत्तरापथ यातायात तथा व्यापार की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण था।[140] उत्तरापथ के मार्ग से व्यापार करने का उल्लेख मिलता है।[141] परन्तु इस ग्रथ में उल्लेख है उत्तरापथ का व्यापार सुरक्षित नही रहा गया था क्योकि उत्तरापथ दिशा मलेच्छो से भरी हुई है। जबकि **दक्षिणापथ** अच्छा है।[142] इससे स्पष्ट है। कि उत्तर भारत मे तुर्को के आक्रमण के फलस्वरूप व्यापार की दृष्टि से सुरक्षित नही रह गया था, क्योकि इस ग्रथ में ऐसे भी उद्धरण है कि ताजिको ने व्यापार करने के लिए गए वैश्यों को पकड़कर दास बना लिया था।[143] ऐसी स्थिति में व्यापारियो का रूझान दक्षिण भारत की ओर अधिक हुआ, इस समय तक दक्षिण भारत तुर्को के आक्रमण से अछूता था। इसीलिए अन्तर्देशीय व्यापार में भी दक्षिण एवं दक्षिण पूर्व दिशा की ओर के द्वीपो एवं देशो मे वैश्यो द्वारा व्यापारिक यात्राओ की भरमार दिखाई देती है, जबकि अरब एवं मध्य एशियाई देश जो पहले से ही व्यापारिक गतिविधियों के केन्द्र रहे है उसमे नीरसता दिखलाई पडती है। आलोच्य ग्रथ में वर्णन है कि वणिक स्थल मार्गो से भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर व्यापार करने हेतु जाते थे। इसमें बलभी ताम्रलिप्ति, उज्जयनी, पाटलिपुत्र, वाराणसी, पुण्ड्रवर्धन आदि नगरो का उल्लेख हुआ है। यह व्यापारिक मार्ग बगाल के ताम्रलिप्ति के बदरगाह से होकर उत्तर पश्चिम में पुष्कलावती तक निकल जाता था।[144] जहॉ व्यापारी व्यापारिक गतिविधियाँ सचालित करते थे। स्थलमार्गो से व्यापार करने वाले वणिक् दल

बनाकर चलते थे। इस व्यापारियों के दल का एक मुखिया होता था, जिसे इस ग्रथ मे सार्थधर[145] कहा गया है।जब कि अन्य ग्रथो मे 'सार्थवाह' शब्द मिलता है। उद्यमी सार्थवाहो का विवरण भारतीय साहित्य मे भरा पडा है। ये सार्थवाह बुद्धि के धनी, सत्य मे निष्ठावान, साहस के भण्डार, व्यावहारिक सूझ बूझ मे पके हुए, उदार, दानी, धर्म और सस्कृति मे रूचि रखने वाले, नई स्थिति का स्वागत करने वाले, देश विदेश की जानकारी के कोष, यवन, शक, पह्लव, रोमक, ऋषिक् हूण, पक्कण आदि विदेशियो की भाषा और रीति–नीति के पारखी भारतीय सार्थवाह महोदधि के तट पर स्थित ताम्रलिप्ति से सीरिया की अन्तारवी नगरी तक, यव द्वीप और कटाहद्वीप से चोलमण्डल के सामुद्रिक पत्तनो और पश्चिम मे यवन बर्बर देशों तक के विशाल जल–थल पर छा गए थे।[146] इस काल के साहित्यिक तथा अभिलेखिक साक्ष्यो से पता चलता है कि व्यापारी माल एक जगह से खरीद कर दूसरे जगह पहुँचाते थे जहॉ उसकी मॉग होती थी। कुवलयमाला मे उल्लेख मिलता है कि उत्तर और दक्षिण मे वणिक् एक दूसरे से बहुधा मिल जाते थे।[147] यशस्तिलक ॱ भी दूर देश मे जाकर व्यापार करने वाले व्यापारियो का उल्लेख मिलता है।[148]

वैश्य वर्ण के लोग ही विभिन्न वस्तुओं के व्यापारी व्यापार के लिए नगरो आदि के बाजार मे शामिल होते थे। नगर भी बाजार व्यवस्था के लिए व्यापारी प्राय. आपस में विचार विमर्श करते थे।[149] प्राय सभी बन्दरगाहो के पास बड़े बाजार होते थे जहॉ विदेशो से आया हुआ माल थोडे समय मे स्थानीय व्यापारियो द्वारा खरीद लिया जाता था। सम्भवत. बाजारो पर व्यापारियों एवं महाजनो का नियन्त्रण था।[150] बाजार एवं दुकानो की भूमि एव बाजार मार्ग पर शुल्क राज्य की ओर से लिया जाता था जो राज्य में स्थापित विभिन्न शुल्क शालाओ से प्राप्त होती थी।[151] राज्य की ओर से वणिको की दुकानो की सुरक्षा का प्रबन्ध होता था जिसके लिए वणिको को राज्य को कर देना पडता था।[152] व्यापारियो का समूह जब सार्थ के रूप में एक नगर से दूसरे नगर व्यापार हेतु चलता था तो उन्हे आन्तरिक व्यापार पर कर देना

पडता था। इसके अलावा व्यापारी दल के लिए डाकुओ का भी खतरा बना रहता था।[153] उस क्षेत्र के राजा जगल मे डाकुओ से व्यापारियो की रक्षा करते थे। इसके बदले मे मार्ग शुल्क व्यापारियो से प्राप्त करता था।[154] मार्ग शुल्क वसूलने के लिए मुख्य मार्ग पर चुगीघर होते थे। कभी–कभी व्यापारी वैश्यो का दल मार्ग शुल्क की अधिकता से बचने के लिए निर्धारित मार्ग को छोडकर जगली मार्ग से जाते थे।[155] कथासरित्सागर से यह भी स्पष्ट होता है कि अधिकाश व्यापारी मार्ग शुल्क बचाने के लिए ऐसे मार्गो का आश्रय लेते थे।[156] व्यापारी यात्रा करने वाले व्यापारी दलो के पास सेनाए होती थी जो रक्षा का कार्य करती थी। ऐसी ही दो वैश्यो अर्थ लोभ और सुखधन की सेनाओ का उल्लेख सोमदेव ने किया है।[157]

कथासरित्सागर मे वणिको के अध्ययन से वणिको के द्वीपान्तर यात्रा के विषय पर प्रकाश पडता है। वैश्य समुदाय ने कौशल तथा अध्यवसाय के बल पर न केवल आन्तरिक व्यापार के क्षेत्र मे सफलता प्राप्त की अपितु अदम्य साहस एव उत्साह का परिचय देते हुए अन्तर्देशीय व्यापार के क्षेत्र मे भी महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की। व्यापारी अधिक धन की कामना से द्वीपान्तर की यात्रा का कार्यक्रम बनाते थे।[158] कथासरित्सागर में कपूर्र द्वीप,[159] श्वेत द्वीप,[160] नारिकेलद्वीप,[161] सुवर्ण द्वीप,[162] सिंहल द्वीप,[163] कटाह द्वीप[164] इत्यादि द्वीपो का उल्लेख मिलता है।

इस ग्रंथ में विशेषकर कटाह द्वीप एवं नारिकेल द्वीप का विशेष वर्णन हुआ है।[165] सम्भवतः इन सभी का सामूहिक नाम स्वर्ण द्वीप प्रचलन मे रहा होगा।[166] इस द्वीपान्तर यात्रा से भारतीय व्यापारी गरम मसाले तथा अगरु प्रभूतमात्रा में लाते थे।[167] चाओ–जु–कुआ में उल्लिखित है कि गन्ना, हाथी दॉत, मोती, मसाले, कपूर, कछुए की खोपड़ी, सौफ, कवंग, इलायची, बड़ी पीपल, मिर्च, सुपाडी, गन्धक, केसर तथा तोतो का व्यापार होता था। विदेशी व्यापारी माल की अदला–बदली, सोना, चाँदी, रेशमी कपडा, चीनी बर्तनो आदि से करते थे।[168] सिंहल द्वीप में एक संस्कृत लेख से पता चलता है कि

समुद्र यात्रा मे कुशल भारतीय व्यापारियो का सार्थ जो माल खरीदने बेचने और जहाजो मे भरने मे कुशल था तथा सिहल मे व्यापार करता था।[169] इस समय चीनी व्यापार मे ह्रास के चिन्ह दृष्टिगोचर होते है। यद्यपि कि कथासरित्सागर मे चीनी व्यापार के छिट–पुट साक्ष्य है। धनसुख व्यापारी बीस हजार चीनी घोडे तथा अनगिनत चीनी कपडे लाया था।[170] इन विवरणो से स्पष्ट है कि सोमदेव के समय अन्तर्देशीय व्यापार की प्रगति महत्वपूर्ण थी।

कथासरित्सागर मे अपशकुन तथा अशुभ पशुओ का बोलना व्यापारियो के लिए महत्वपूर्ण था। उदाहरणार्थ श्रृंगाली का भयकर रूप से रोना व्यापारी लोग इसे अपशकुन मानते थे।[171] इसमे वर्णन है कि एक बार वैश्य व्यापारियो ने श्रृगाली के रोने की आवाज सुनकर उन व्यापारियो ने चोर डाकुओं आदि के आक्रमण की शंका से सावधान होकर साथ र¯ने वाले रक्षक दल के सिपाहियो को शस्त्र लेकर जाने को कहा।[172] रात्रि होने के उपरान्त शस्त्र से सुसज्जित डाकुओं की बडी सेना ने व्यापारियो के दल को घेर लिया।[173] इसके उपरान्त डाकुओ की सेना ने व्यापारियो को मारकर सारा धन और साध ान लूट लिया।[174] इससे वैश्यों की मानवेत्तर विश्वासो की भावना के विषय में जानकारी मिलती है।[175]

कथासरित्सागर मे कुछ ऐसे व्यापारियो एवं वणिकों की जानकारी मिलती है जो रखे हुए धन को हडप जाते थे। इसके अतिरिक्त वैश्यो के दुश्चरित्र की अनेक गाथाएं मिलती है।[176] कुछ ऐसे वणिको का उल्लेख है जो वणिक् समाज का नायक था।[177] कथासरित्सागर में राजाओं तथा व्यापारियो के मध्य मधुर सम्बन्धों का वर्णन मिलता है इतना ही नही वणिक् (वैश्य) राजा को अपनी कन्या के साथ उनके वैवाहिक सम्बन्धों को प्रोत्साह्न देता था। इससे आर्थिक जीवन में उनकी भूमिका एव महत्व का अनुमान किया जा सकता है। इसके अलावा वणिक् संगठनों द्वारा जनकल्याणकारी कार्य भी किए जाते थे। इन वैश्यो के यात्राओ के द्वारा जहाँ एक तरफ आर्थिक लाभ हुए वही दूसरी ओर विभिन्न देशो में वैश्यो के लम्बे प्रवास के दौरान वहॉ भारतीय विचारो, विश्वासो तथा भारतीय सस्कृति का बीजारोपण हुआ।

शूद्र

कथासरित्सागर मे शूद्र वर्ण के बारे मे महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त होता है। वर्ण व्यवस्था में शूद्रो का स्थान चतुर्थ था। इसका प्रमुख कर्म तीनो वर्णो की सेवा करना था।[178] यही उसका स्वधर्म बताया गया इसके अनुगमन से उसे परम सुख एव शान्ति की प्राप्ति होगी। शूद्रो के उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद मे प्राप्त होता है। इस मान्यता को इस समय भी स्वीकार किया जाता था, परन्तु वायु पुराण[179] और ब्रह्माण्ड पुराण[180] मे शूद्रो की उत्पत्ति का सम्बन्ध वशिष्ठ से जोडा गया है।

आलोच्य ग्रथ के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से चली आ रही जन्मना वर्ण व्यवस्था का सिद्धान्त कायम था। इसके अतिरिक्त इसके पूर्व जाति एवं वर्ण के कर्म का अन्योन्याश्रित सिद्धान्त कायम था। परन्तु आलोच्य काल में उसके कर्म का चयन जाति आधारित न रहकर उस जाति या वर्ण के मनोवृत्ति, सामाजिक आवश्यकता एवं आर्थिक दबाव के साथ–साथ राजनीतिक दृष्टिकोण इत्यादि की महत्वपूर्ण भूमिका हो गई।[181] कर्म के सिद्धान्त से जाति की परम्परा का ह्रास होने के कारण यद्यपि जाति विशेष को महत्व प्रदान किया जाता था किन्तु उसके कत्तर्व्य तथा उस जाति के आचार–विचार की प्रधानता को भी महत्व प्रदान किया गया। सम्भवतः यही कारण रहा होगा कि इस समय के लक्ष्मीधर जैसे लेखको ने शूद्र को आततायी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य से श्रेष्ठ माना था।[182] सम्भवतः इसी कारण समाज मे इनकी सामाजिक स्थिति के कारण अरब यात्री इब्नरणुर्दाब्द ने शूद्र वर्ग उल्लेख वैश्य वर्ण के पहले किया है।[183]

इन विवरणो से यह स्पष्ट रूप से पता चलता है, कि पूर्व मध्यकाल तक आते–आते समाज में शूद्र वर्ण के अन्तर्गत दो वर्गो का विकास हो रहा था। एक वह वर्ग था जो धार्मिक आचरण, धार्मिक क्रियाओ तथा कर्मकाण्डो को सम्पादित करने लगा था, परन्तु यह कर्मकाण्ड वैदिक पद्धति पर आधारित नही था अपितु ये कर्मकाण्ड मंत्रविहीन होते थे। इन शूद्रो की स्थिति समाज में ऊँची थी। परिणामस्वरूप शूद्रों का यह वर्ग वैश्यो की स्थिति में जा पहुँचा।

वैश्य वर्ण और इस वर्ग के शूद्रो मे कोई विशेष अन्तर नही रह गया था। आचरण और कर्म के अनुसार इस प्रकार के पवित्र शूद्र को सामान्य शूद्र से अलग रखा गया। इसी कारण इस वर्ग के (पवित्र शूद्रो) शूद्रो को श्राद्ध करने की स्वीकृति प्रदान की गई थी।[184] शूद्रो का दूसरा वर्ग वह था जो इस विशुद्ध आचरण और सात्विकता से हटकर असभ्य और असस्कार युक्त जीवन व्यतीत कर रहा था। इस वर्ण के प्रथम वर्ग के सामाजिक स्थिति मे यह बदलाव उनके आर्थिक प्रगति के कारण सम्भव हुआ। इस आर्थिक प्रगति की पृष्ठभूमि बौद्धकाल मे ही निर्मित हो चुकी थी। इस काल तक शूद्रो के परिचर्या आदि वैसे प्रमुख कर्मो के अतिरिक्त काष्ठ—शिल्प, धातु शिल्प, भाडशिल्प, चित्रकला आदि कर्मो के सम्पादन की अनुमति धर्मशास्त्रो द्वारा प्रदान की गई।[185] पूर्वमध्यकाल के पहले ही वैश्यो द्वारा वाणिज्य—व्यापार मे अधिक रूचि लेने के परिणाम स्वरूप कृषि कर्म शिथिल पडने लगा। इस स्थिति मे कृषि कर्म को शूद्रो द्वारा आगे बढकर स्वीकार किया गया। इसी लिए सातवी शताब्दी ई. मे आए चीनी यात्री ह्वेनसाग ने शूद्रो को कृषक बताया है।[186] याज्ञवलक्य भी शूद्रो के लिए कृषि, गोपालन, व्यापार, चित्रकला, नृत्य, गायन और वादन के व्यवसायो के विषय मे उल्लेख किया है। ऐसी स्थिति में समाज के अर्थव्यवस्था के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। समाज का प्रथम दो वर्ण ब्राह्मण एव क्षत्रिय इन पर भी आर्थिक दृष्टि से पर्याप्त रूप से अवलम्बित हो गए तथा इसके अतिरिक्त कथासरित्सागर से यह भी पता चलता है कि शूद्रो के द्वारा बौद्ध धर्म को बडे पैमाने पर अपनाया जा रहा था।[1862] ऐसी स्थिति मे जो शूद्र इन आर्थिक गतिविधियो मे सलंग्न हो गए थे उन्हे इस वर्ग मे सम्मिलित कर लिया गया और इसके कारण इनकी सामाजिक स्थित मे पर्याप्त हुआ।

कथासरित्सागर मे राजा के मृगया के समय उसके साथ जाने वाले चार वीरो का उल्लेख है जिसमे एक खड्गधर क्षत्रिय, ब्राह्मण, भाषा विज्ञानी वैश्य और पच पट्टिक शूद्र है। जो अत्यन्त वीर थे। उनके साथ अपनी पुत्री के विवाह हेतु ज्योतिषियो से राजा ने अनुरोध के साथ पूछा कि मेरी पुत्री अनगरति के साथ इन चारो वीरो मे किसके साथ कुण्डली मिलती है। उसके

विवाह का लग्न कब शुभ है।[187] इससे पता चला है कि इस शूद्र पच पट्टिक के साथ भी राजा अपनी पुत्री का विवाह करने हेतु तैयार था। स्थिति, शूद्रो की दशा मे आए आश्चर्यजनक सुधार का परिणाम था। इस समय **मेघातिथि** ने उन शूद्रो की जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, उनके लिए द्विजो की सेवा का विधान नही बतलाया।[188] जब कि लक्ष्मीधर जैसे नीति शास्त्रकार ने कहा कि यदि शूद्र ब्राह्मणो की सेवा नही करता है तो भी उसको श्रद्धा करनी चाहिए।[189] शूद्रो द्वारा कृषि, व्यवसाय अपनाने से उनकी स्थिति मे सुधार हुआ। इस स्थिति की झलक कथासरित्सागर मे भी दिखलाई पडती है।

सोमदेव ने आलोच्य ग्रंथ मे सामान्यत शूद्रो के मध्य बौद्ध धर्म की अधिक लोक प्रियता का उल्लेख किया है, कि "स्नान, शौच आदि से हीन और अपने समय पर भोजन के लोभी, शिखा और केशों को मुडवाकर केवल कौपीन पहननें वाले तथा विहारो (मठो) मे स्थान मिलने के लोभ से सभी नीच जाति के व्यक्ति बौद्ध धर्म को ग्रहण करते है।"[190] इस समय तत्र का बौद्ध धर्म मे प्रचलन अधिक था। इस कारण भी यह शूद्रो के मध्य अधिक लोकप्रिय हुआ क्योकि इसके प्रवर्तक तथा अधिकाश संत शूद्र थे। अतः शूद्रो ने शूद्रो से सम्बन्धित कर्मकांडो से रहित तान्त्रिक बौद्ध धर्म को अपनाया होगा। इसके अतिरिक्त इनके मध्य इनकी लोक प्रियता का अन्य कारण कर्मकाण्डो की सरलता को निर्दिष्ट किया जा सकता है।[191] कथासरित्सागर के अन्तः साक्ष्यो के अनुशीलन से स्पष्ट है कि शूद्रो के सन्दर्भ मे प्राचीन सिद्धान्तो मे काफी शिथिलता आ गई थी, यहाँ तक कि इस ग्रथ मे ब्राह्मण और चाण्डाल साथ–साथ तपस्या करते दिखलाई पडते है।[192]

कथासरित्सागर के समय से यह दर्शित होता है कि इस समय सामाजिक नियमों में कुछ बदलाव दृष्टि गोचर होने लगता है एक ओर जाति व्यवस्था मे संकीर्णता के दर्शन होते है तो दूसरी ओर नई जातियों एव उपजातियों का निर्माण हो रहा था। दूसरी प्रमुख बात यह थी कि धर्मशास्त्र में वर्णित वर्ण एवं जाति कर्मो के क्षेत्र में पर्यात शिथिलता के दर्शन होते है।

प्राचीन हिन्दुओ मे अशौच के प्रति घृणा थी। उन्होने अपवित्र कार्यो के करने वालो को समाज मे बहिष्कृत किया था।[193] इस कोटि मे डोम तथा चाण्डाल को प्रमुख रूप से माना जा सकता है। अपरार्क का कथन है कि निम्न व्यवसाय वालो के हाथों का भोजन नही करना चाहिए। इस कोटि मे गायक, कलाकार, वेष, शल्यचिकित्सक, स्वर्णकार, लोहार, अस्त्रनिर्माता, दर्जी, धोबी, मादक द्रव्यो का निर्माता एव विक्रेता, तेली, भडुआ, बढई, ज्योतिषी कुम्भकार, मल्ल, टोकरी बनाने वाले, सूदखोर तथा ग्राम पुरोहित का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।[194] इस जाति व्यवस्था ने समाज को नुकसान पहुँचाने मे योगदान दिया होगा। सम्भवतः ऐसा विश्वास था कि जाति पूर्व जन्म के कर्म के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।[195] इसके अतिरिक्त कथासरित्सागर मे अस्पृश्य जाति के अतिरिक्त कायस्थ का उल्लेख है जो अस्पृश्य जाति से सम्बन्धित नही था। इस ग्रथ के काल मे जातियो मे बृद्धि हुई। कल्हण[196] ने 64 जातियो का उल्लेख किया है।

कायस्थ

कथासरित्सागर मे एक जाति कायस्थ का उल्लेख मिलता है, इस जाति का इस समय प्रादूर्भाव हो रहा था। 'कायस्थ' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम याज्ञवलक्यस्मृति मे प्राप्त होता है जिसका वर्णन लेखक के रूप मे किया गया है।

कायस्थों का उल्लेख अभिलेखो में भी हुआ है। इनका प्रधानकार्य केवल लेखकीय न होकर बल्कि लेखाकरण, गणना, आय—व्यय, भूमिकर के अधिकारी तथा प्रशासनिक कार्यो को सम्पादित करते थे।[197] हरिषेण (दसवी सदी) ने इनके लिए लेखक और कायस्थ दोनो शब्दो का प्रयोग किया है। ओश्नम् स्मृति में कायस्थों को एक जाति के रूप मे उल्लिखित किया गया है। गुप्तकालीन दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख में कायस्थो को प्रथम कायस्थ या ज्येष्ठ कायस्थ कहा गया है।[198] राजपूतकालीन अभिलेखो मे भी उन्हे लेखक कायस्थ के रूप में उल्लिखित किया गया है। कथासरित्सागर में भी इन्हे लेखक के रूप में वर्णित किया गया है।[199] चन्देल, चेदि, चाहमान आदि

विभिन्न अभिलेखो मे उन्हे कायस्थ जाति अथवा कायस्थ वश का कहा गया है।[200] कायस्थो की उत्पत्ति का जहॉ तक प्रश्न है इनका उल्लेख चारो वर्णो मे कही नही मिलता है बल्कि कायस्थो का विकास एक जाति के रूप मे हुआ है। पद्मपुराण सृष्टि काण्ड मे कहा गया है कि जिस प्रकार चारो वर्णो की उत्पत्ति ब्रह्मा से हुई है उसी प्रकार कायस्थो की उत्पत्ति ब्रह्मा के काया से हुई है। इससे स्पष्ट है कि अपनी स्थिति एव कार्यो के कारण समाज के उच्च्च वर्गो मे स्थान प्राप्त हुआ। श्री हर्ष ने उनकी उत्पत्ति यम के लिपिक चित्रगुप्त से माना है।[201] ग्यारहवी शताब्दी के एक अभिलेख में उनका वश बहुत पहले से माना गया है जिसमे उनका उद्भावक कुश और उनका पिता कश्यप विवृत है।[202]

कायस्थो का सम्बन्ध करण शब्द से भी सयुक्त किया गया है। कौटिल्य ने इसी अर्थ में 'कर्णिक' शब्द का उल्लेख किया है। मनु ने भी करण का अर्थ वैधानिक परिपत्र से स्वीकार किया है तथा कर्णिक का लेखा जोखा रखने वाले अर्थात् लिपिक से है।[203] करण लोगो ने कुछ ही क्षेत्रो मे लेखन–कार्य अपनाया था, किन्तु 'कायस्थ' लोग सर्वत्र लेखन का कार्य करते थे। कालान्तर मे कायस्थ एक जाति के रूप में आविर्भूत हुई जिसमे 'करण' भी सम्मिलित हो गए।[204] पूर्व मध्यकाल मे इनकी एक स्वतन्त्र जाति बन गई। चन्देल शासक परमर्दि के अभिलेख में उन्हे 'कायस्थ वश' के साथ उल्लिखित किया है।[205]

कथासरित्सागर, राजतरगिणी[206] एव तत्कालीन साहित्यिक ग्रथो के अध्ययन से पता चलता है कि कायस्थो द्वारा जनता को अनेको प्रकार से परेशान किया जाता था। जबकि इस समय के अभिलेखो मे उसके उदात्तचरित्र का दर्शन होता है। अभिलेखिक एवं साहित्यिक साक्ष्यो से पता चलता है कि प्रशासन का भार इनके ऊपर आश्रित था। राजतरगिणी में कायस्थों के द्वारा जनता पर किए गए भयकर अत्याचार के आर्द्र स्वर सुनाई पडते है। कल्हण के अनुसार इनका जन्म मदिरो में भयंकर सक्रान्ति तथा उसे आर्थिक दृष्टि से निर्बल बनाने के लिए हुआ है। चौपायो के लिए विशाल चारागाहो की प्रथा को

नित्य समाप्त करते जा रहे थे। कल्हण की राजतरगिणी से एक ओर कायस्थो के प्रशासकीय अधिकार सम्पन्नता तथा राजकीय कार्यो मे दखल तथा दूसरी ओर प्रशासनिक भ्रष्ट तरीके से जनता पर अत्याचारो का वर्णन प्राप्त होता है। इन उल्लेखो से स्पष्ट है कि तत्कालीन साहित्य मे कायस्थो के शोषण का पर्याप्त वर्णन है, क्योकि साहित्य सही अर्थो मे जनता का प्रतिनिधि होती है। साहित्य के माध्यम से लेखक को समाज मे व्याप्त अनेक अच्छाईयो तथा बुराईयो का वर्णन करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है। दूसरी ओर अभिलेख मे कायस्थो को कर्मठ, सुयोग्य विदग्ध एव सुयोग्य प्रशासक के रूप मे अकित किया गया है। राजकीय अभिलेखो के लेखक कायस्थ होते थे। राजा स्वय अपने अभिलेखो मे वह अपने कर्मचारियो की आलोचना कैसे कर सकता था यदि वह ऐसा करता तो स्वय अपनी ही आलोचना करता क्योकि ऐसे उल्लेख राजा की अयोग्यता तथा उसके प्रशासकीय कार्य क्षमता मे सदेह उत्पन्न करने के पर्याप्त कारण होते।[207] फिर भी कायस्थों की योग्यता तथा उसकी विद्वता के बारे में कोई सदेह नही किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि कायस्थो ने जनता का कल्याण कम ही किया होगा। इसके लिए कायस्थों को पूर्णतः उत्तरदायी नही ठहराया जा सकता है, बल्कि शासक वर्ग भी एक सीमा तक उत्तरदायी था।

कथासरित्सागर में वर्णन मिलता है कि कायस्थ ब्रह्मा तथा शिव का काम करता है वह क्षणभर मे सारे संसार को लिख अथवा मिटा सकता है क्योकि सारा संसार उसके हाथ में है।[208] इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि कायस्थों का अधिकार बहुत अधिक था। जिस प्रकार ब्रह्मा समस्त ससार का भाग्य लेखन करते है तथा शिव उसको मिटा सकते है, उसी प्रकार कायस्थ किसी प्रकार के लेख को लिख सकता था तथा उसे बदल भी सकता था। इससे उसके लेखा—जोखा के एकाधिकार का पता चलता है।

आलोच्य ग्रथ कालीन साहित्य की अभिव्यजनाओ से पता चलता है कि राजनीतिक स्थिति अत्यन्त कठिन दौर से गुजर रही थी। विदेशी आक्रमणों का सिलसिला प्रारम्भ हो चुका था। युद्ध सम्बन्धीकार्यो के लिए और अधिक

धन की आवश्यकता थी। अत इन प्रशासनिक अधिकारियो ने जनता का जमकर शोषण किया। हो सकता है कि, इन प्रशासनिक अधिकारियो एव कायस्थों ने जो राजस्व सम्बन्धी कार्यो को देखते थे इनके कार्यो से जनता को अधिक शिकायते हुई है इस काल तक आते–आते ब्राह्मणो की तरह कायस्थो को भी अग्रहार दान दिए जाने लगे।[209] यह अग्रहार राजाओ को परामर्शो एव कार्य सम्पादन एव विद्वता आदि के कारण दिए गए होगे। इसके अतिरिक्त इस काल मे कायस्थो ने अनेक अभिलेखो को लिखा।[210] इससे समाज में उनके बुद्धिजीवी होने का प्रमाण मिलता है।[211] कायस्थो की अनेक उपजातियो का उल्लेख कई अभिलेखों में हुआ है कायस्थ की जातिया मूलतः भौमोलिक आधार पर बनी थी। इन उपजातियो मे वलय कायस्थ, गौड कायस्थ, मथुरा के माथुर और श्रावस्ती के श्रीवास्तव इत्यादि प्रसिद्ध है।[212]

कथासरित्सागर में वर्णित अन्य जातियां

कथासरित्सागर कालीन समाज मे कायस्थों एवं शूद्र के अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग था जो कि प्राचीन भारतीय समाज मे वर्णित वर्णव्यवस्था से पृथक था अलबीरूनी ने इन्हें 'अन्त्यज' कहा है। इस ग्रंथ मे कुछ पेशेवर जातियो माली, कुम्हार, बढई, जुलाहा एव धोबी का जहां उल्लेख है वही दूसरी ओर जंगली जातियों शबर, पिशाच, भील आदि एव ऐसे अस्पृश्य जातियों चाण्डाल, व्याध आदि का वर्णन है, जो नगर सीमा के बाहर रहते थे। इस काल में जातियों का बहुगुणन दिखाई पडता है यह बहुगुणन शूद्र मे था। इसका प्रमुख कारण शिल्प जाति का आधार हो गया था। गुप्तोत्तर काल मे व्यापार एवं वाणिज्य के ह्यस के परिणामस्वरूप शिल्पी वर्ग में गतिहीनता, स्थानीयता एवं शिल्प संघ मे अवरूद्धता के दर्शन होने लगे। इससे व्यापारियों तथा शिल्पियों ने धीरे–धीरे अपना एक विशिष्ट वर्ग बना लिया जिसका रूप सभी व्यवहारिक प्रयोजनो के लिए जाति जैसा मालूम पडता था।[213] इसके अतिरिक्त यादव प्रकाश की वैजयन्ती और हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणि मे शूद्र जाति की संख्या में विशेष वृद्धि का उल्लेख प्राप्त है।[214] एक ओर शिल्प

वर्गगत कार्यो के कारण जातियो का बहुगुणन हो रहा था तो दूसरी ओर प्राचीनकाल से ही अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाहो के फलस्वरूप भी अनेक जातियो का प्रादुर्भाव हुआ।[215] पूर्व मध्यकाल तक आकर वर्णशकर जातियो की सख्या 64 हो गई।[216]

कथासरित्सागर मे चतुर्वर्ण के अलावा अपने कथाओ मे यत्र–तत्र विभिन्न जातियो एव उनके क्रियाकलापो की जानकारी प्राप्त होती है। सोम देव ने अपने बेबाक शैली मे भारतीय समाज का चित्रण किया है, इसी लिए इस समय चाण्डाल जैसी जाति के प्रति सामाजिक सोच मे हो रहे परिवर्तन की सूचना प्राप्त होती है। यद्यपि कि सोमदेव का मुख्य उद्देश्य लोगो का मनोरजन करना था, लेकिन इसमे सामाजिक व्यवस्था का चित्रण एक सलीके से किया है। कथासरित्सागर मे उल्लिख्ति जातियो का एक सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा सकता है इसमे पशुपालन, पेशेवर, जगली एव अस्पृश्य जातियो को उल्लिखित किया जा सकता है–

गोपाल (ग्वाला) सोमदेव ने गोपालक का उल्लेख किया है।[217] ये जंगल मे अपने तथा दूसरे के पशुओ को चराते थे। गोपाल गायो का नियन्त्रक था।[218] यशस्तिलक मे बताया गया है कि जिसके पास गाय तथा अन्य पशुओं का एक विशाल समुदाय होता था उसे ब्रजपाल कहा गया है।[219] जातको मे भी गोपाल का उल्लेख है जो गायो को चारागाह, जंगलो में चराने तथा पशु पालने वाले कुल के रूप में जाना जाता था।[220]

पशुपाल (गड़ेरिया) कथासरित्सागर में पशुपाल[221] का उल्लेख आया है। सोमदेव सूरि के ग्रंथो में 'गोध' का उल्लेख प्राप्त होता है।[222] इनका कार्य भेड तथा बकरिया पालना था। जातको मे भेडो का पालन करने वाली सामान्य जाति के रूप मे वर्णन प्राप्त होता है।[223]

उद्यानपाल[224] (माली) का भी वर्णन है जो कि उद्यानों की देखभाल करने वाली जाति थी। ये राजाओ को फल तथा फूल भेट करते थे, पुष्पों की माला तथा गजरा आदि सुन्दर चीजे बनाते थे।

कुम्भकार[225] कुम्भकारी का कार्य अतिप्राचीन काल से चला आ रहा है। ये मिट्टी के बर्तन बनाते थे। इसे वैदिक युग मे कुलाल के नाम से जाना जाता था। यह जाति मिट्टी के घडे, तश्तरिया, कुल्हड आदि बनाती थी। बौद्ध काल मे भी इसका यही पेशा था।[226]

नापित (नाई)[227] का कार्य क्षौर कर्म बतलाया गया है। यह प्रारम्भ से ही धूर्त और चतुर होता था। कथासरित्सागर मे एक वृद्ध धूर्त नापित का उल्लेख प्राप्त होता है।[228] नापित की गणना कारू स्पृश्य शूद्र के रूप मे की गई है। सोमदेव सूरि ने इसका मुख्य कार्य क्षौर कर्म बताया है। क्षेमेन्द्र के अनुसार नापित सदैव रसिक लोगो का मित्र तथा वेश्याओ का शिक्षक होता था।[229]

तक्ष (बढ़ई)[230] कथासरित्सागर मे बढई को तक्षा कहा गया है। यह विभिन्न प्रकार के लकड़ी की वस्तुओं का निर्माण करते थे। जातक ग्रथों मे उल्लेख मिलता है कि ये जंगल से लकड़ी लाकर उसकी उपयोगी वस्तुएं बनाते थे।[231] यह समाज की एक उपयोगी जाति थी।

रजक (धोबी)[232] का उल्लेख सोमदेव ने किया है जो वस्त्रो की धुलाई का कार्य करते थे। वैदिक काल मे यह जाति अस्पृश्य नही थी परन्तु बाद में चलकर यह अस्पृश्य की श्रेणी में आ गई। अलबीरूनी ने भी धोबी का उल्लेख किया है।[233]

तंतुवाय (जुलाहा) का उल्लेख भी आलोच्य ग्रथ में आता है।[234] जो कपडे बुनने का कार्य करता था। अलबीरूनी ने भी इसका उल्लेख एक अस्पृश्य जाति के रूप मे किया है।[235]

स्वर्णकार[236] का उल्लेख हिरण्यकार के रूप मे भी उल्लेख मिलता है। स्वर्णकार सोने के आभूषणों का निर्माण करता था। मनु ने स्वर्णकारो को दुष्टो मे दुष्ट कहा है।[237] पुराणों में भी इसके द्वारा अलकार आभूषण का वर्णन आता है जिसका सम्बन्ध प्रजापति विश्वकर्मा से माना गया है।[238]

काष्ठिक (लकडहारा) कथासरित्सागर मे लकडहारे के लिए काष्ठभारिक[239] एव काष्ठिक[240] शब्दो का उल्लेख प्राप्त होता है। इनका कार्य जगल से लकडिया काटना था। ये लकडिया नगरो मे बेचकर अपनी आजीविका चलाते थे।

नट[241] का उल्लेख आलोच्य ग्रथ में आया है। ये कथोपकथन एव वाद्य यन्त्रो के साथ अभिनय करते थे। यशस्तिलक मे नटो के पेशे का चित्रण मिलता है जिसमे जोर–जोर से बाजा बजाया जाता था। स्त्रिया गीत गाती थी। नट आभूषण पहने होते थे विशेषकर गले का हार। ये तेज–तेज नर्तन करते थे।[242] कथासरित्सागर में नन्द नट का वर्णन आया,है जो कि एक ब्राह्मण का मित्र था। इससे स्पष्ट है कि समाज मे इसे सम्मान प्राप्त था।[243]

धीवर[244] को कथासरित्सागर मे समुद्रजीवी के रूप मे चित्रित किया गया है **कैवर्त्त** इनका प्रमुख कार्य समुद्र एवं नदियो से मछलियां पकडना तथा उसको बेचना था। ये वैश्यो के साथ द्वीपान्तर यात्रा में भी जाते थे। इस ग्रंथ मे 'धीवराधिपति' शब्द से इनके श्रेणी की जानकारी प्राप्त होती है। इस संघ या श्रेणी का नेतृत्व धीवरों का कोई नेता करता था।[245] अलबीरूनी ने भी मछुआ के एक अलग वर्ग का उल्लेख किया है।[246]

शबर[247] का उल्लेख कथासरित्सागर मे आया है। जो कि सर्प पकडने का काम करते थे।[248] साँपो को पकडकर मनोरजन द्वारा अपनी जीविका चलाते थे। आखेट द्वारा भी अपनी जीविका का संचालन करते थे। इनकी बस्तियां जंगलो में होती थी।

पुलिन्द– यह जंगली जाति थी। जो कि विन्ध्य पर्वत की उपत्यकाओ मे रहते थे। पुलिन्दों की सेनाएं भी होती थी। ये समय–समय पर राजाओं का सहयोग भी करते थे।[249] कथासरित्सागर मे वत्सराज उदयन के मित्र पुलिन्दक का उल्लेख आया है।[250] ये शक्ति अथवा दुर्गा देवी के अनन्य उपासक थे। विध्याचल की देवी का इन पुलिन्दो के धार्मिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

भिल्ल (भील) का उल्लेख एक जंगली जाति के रूप मे पाया जाता है। पुलिन्दो की भॉति ये भी देवी के अनन्य उपासक थे। विशेषत ये चण्डी की उपासना करते थे। इस ग्रंथ मे भीलो द्वारा चण्डी देवी को प्रसन्न करने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त भिल्ल कन्या का वर्णन मिलता है जो शुक को लेकर सुमना राजा के दरबार मे आती है। इस भिल्ल कन्या के आश्चर्यजनक रूप को देखकर सभी सभासद अवाक् रह जाते है।[251] इस भिल्ल कन्या को इसी ग्रथ मे निषादाधिपति कन्या कहा गया है।[252] इस ग्रंथ से यही स्पष्ट होता है कि निषाद और भिल्ल एक ही जाति थी। जब कि अन्य साक्ष्यो से स्पष्ट है कि भिल्ल और निषाद् अलग–अलग जातिया थी। हेमचन्द्र ने 'भिल्ल' जाति का उल्लेख किया है जो धनुष बाण के प्रेमी थे।[253] इससे प्रतीत होता है कि लेखक ने इनको आहार एवं कार्यो से दोनो को एक ही जाति समझ लिया जब कि ये दोनो अलग–अलग जातियां बहुत पहले से चली आ रही थी।

निषाद का उल्लेख निषादराज[254] के रूप मे हुआ है। रामायण में भी निषाद्राज का वर्णन उपलब्ध है। कथासरित्सागर में निषादों का कार्य प्राय दूर–दूर के देश देशान्तरो एवं द्वीपों की यात्राएं करने का वर्णन है। वैश्य जब व्यापार हेतु समुद्री यात्राएं करते थे तो ये लोग नाव संचालन का कार्य करते थे। इसके अतिरिक्त मछली मारना[255] तथा जंगलों मे आखेट करना भी इनका दूसरा प्रमुख धर्म था।[256] इस जाति की उत्पत्ति ब्राह्मण पुरूष एवं शूद्र स्त्री से माना गया है।[257]

व्याध[258] का उल्लेख कथासरित्सागर मे अनेक स्थलों में हुआ है। इसी ग्रंथ मे ही 'लुब्धक'[259] शब्द का उल्लेख भी व्याध (बहेलिया) के लिए किया गया है। यह अन्त्यज कोटि में माना जाता था। ये जंगली जानवरों को मारकर अपनी जीविका चलाते थे। इसी ग्रंथ में ही धर्म व्याध का उल्लेख है जो दूसरो द्वारा मारे हुए पशुओं का मास बेचता था।[260] इसने ऋषि को ज्ञान प्रदान किया था।[261] ये आखेट मे उच्च वर्ग का साथ देते थे तथा राजाओ के लिए मृगो आदि का मास भी लाते थे।

डोम्ब (डोंम) का विवरण सोमदेव ने किया है जो चाण्डाल का कर्म करने वाली नीच जाति थी।[262] ये अपने साथ ढोल रखते थे।[263] जो बजाकर आने की सूचना देते थे। ये चोरी भी करते थे।

चाण्डाल[264] का उल्लेख कथासरित्सागर की अनेक कथाओ मे प्राप्त होता है। इसको समाज में निम्न माना जाता था इसकी उत्पत्ति शूद्र पुरूष और ब्राह्मण स्त्री से हुई थी।[265] धर्मशास्त्रो से भी यही जानकारी प्राप्त होती है। उत्तर वैदिक काल मे यह जाति श्वान तथा शूकर जैसी स्थिति को प्राप्त हो चुकी थी।[266] बाद के समय मे भी चाण्डालों की स्थिति अत्यन्त हीन थी इनके स्पर्श से हवा भी दूषित समझी जाती थी।[267] मातग जातक में उल्लेख आता है कि एक चाण्डाल युवक नगर में प्रवेश कर रहा था उस पर श्रेष्ठि कन्या की दृष्टि पड गई। लड़की ने उसके विषय में पूछा बाद मे पता चलने पर कि ये चाण्डाल है, तो लडकी के मुख से निकलने पर कि मैने अशुभ दर्शन कर लिया है, इसके बाद लोगो को उस चाण्डाल युवक को खूब मारा।[268] चाण्डालो के गॉव में अध्ययन की भी मनाही थी। चाण्डाल की बस्ती से बाहर शुद्ध अन्न पकाने पर ही ब्राह्मण अन्न ग्रहण करते थे।[269] यहॉ तक कि उसके देखते रहने पर भोजन बन्द कर देने का निर्देश दिया गया था। मत्स्यपुराण मे वर्णित है कि यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर चाण्डाल स्त्री का संग करता था अथवा उसके साथ भोजन करता था या प्रतिग्रह स्वीकार करता था वह पतित होकर उसी की श्रेणी का हो जाता था। चीनी यात्री **फाश्येन** उसके विषय में लिखता है कि जब चाण्डाल बाजार में प्रवेश करते थे, तब वह लकड़ी बजाते चलते थे जिससे लोग लकडियो की आवाज सुनकर हटते चले जाए और उनके स्पर्श से अशुद्ध न हो।[270] कादम्बरी मे बाण ने इसे स्पर्श वर्जित कहकर साथ–साथ बॉस की झडी बजाकर अपने आने की सूचना देने वाला निर्दिष्ट किया है।[271] हेमचन्द्र ने भी वर्णित किया है कि चाण्डाल लकडी से आवाज करते हुए चलता था ताकि उच्च वर्ण के लोग उसे छूने से बच जाए।[272] अलबीरूनी ने चाण्डालों के कार्यो का वर्णन किया है जिसमें बताया कि उसका मुख्यकार्य गॉव की सफाई करना था।[273] ह्वेनसाग ने बताया है कि

पशुओ को मारकर वह मास बेचता था बधिक का कार्य करता था, विष्ठा की सफाई करता था और नगर के बाहर निवास करता था। उसके घर पर विशेष चिन्ह बने होते थे।[274] इसके अतिरिक्त जगह–जगह खेल तमाशे करके जीवको पार्जन करता था। कफन उसका वस्त्र था टूटे–फूटे बर्तनो मे भोजन करता था तथा लोहे एव जगली वृक्षो के पत्तो एव फूलो का आभूषण पहनता था। कथासरित्सागर के पूर्ववर्ती तथा समकालीन ग्रथो मे जहॉ चाण्डाल के दर्शन, स्पर्श की मनाही थी वही इस ग्रथ मे चाण्डाल तथा ब्राह्मण साथ–साथ तपस्या करते वर्णित है।[275] यद्यपि कथासरित्सागर मे भी उसके अन्त्यज की सूचना मिलती तथा अपवित्रताओ का भी वर्णन मिलता है। फिर भी अपवित्रता एव अपात्रताओ के साथ–साथ ये सच्चे तत्वो को भी जानने वाले थे जो कि तपस्या के बल पर अगले जन्म मे राजा हुआ और ब्राह्मण, दास (धीवर) कुल मे जन्म लिया। इस आलोक्य में यह स्पष्ट है कि सोमदेव ने सद्विचार एवं शुद्ध आचरण को सर्वोपरि माना, चाहे व चाण्डाल हो या ब्राह्मण। इसी लिए कथासरित्सागर मे शुद्ध आचरण वाले चाण्डाल की प्रशसा की गई है, जो कि इस समय हो रहे सामाजिक सोच में बदलाव को रेखांकित करता है, वही दूसरी ओर चाण्डाल कुल में जन्मे उत्पलहस्त के घर का अन्न ब्राह्मण शका रहित होकर ग्रहण किए। क्योकि यह पता चला कि उत्पलहस्त विद्याधर है जो चाण्डाल कुल में जन्म लिया है।[276] इस वर्णन से कहा जा सकता है कि यदि चाण्डाल शुद्ध आचरण अपना रहा है तो ब्राह्मण उसके यहॉ अन्न ग्रहण कर सकता है। इस ग्रंथ के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि पूर्वकालीन चाण्डाल दर्शन से अशुद्ध होने वाली स्थापनाएं शिथिल पड़ने लगी थी और सद् आचरण को महत्व दिया जाने लगा था जो कि भारतीय वर्ण व्यवस्था का मूल बिन्दु था।

इन उपर्युक्त जातियों के अतिरिक्त कथासरित्सागर मे वैद्य, चित्रकार, ज्योतिषी, आदि कार्य करने वाले वर्गो का उल्लेख मिलता है। इन वर्गो का यदि सूक्ष्मता पूर्वक अध्ययन किया जाए तो यह वर्ग के रूप में बने रहे जातियों के रूप में अपने को परिणित नहीं किया। यदि कोई ब्राह्मण ज्योतिष का कार्य

या पुरोहित कर्म करता था तो वह ज्योतिष कर्म करने वाले या पुरोहित कर्म करने वाले ब्राह्मणो के मध्य ही सामाजिक सम्बन्ध कायम किए ऐसी बात नही थी।

कथासरित्सागर की रचनाकाल के दौरान पश्चिमोत्तर भारत से तुर्को का आक्रमण प्रारम्भ हो चुका था। इसका प्रभाव भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर पड रहा था। इस ग्रथ मे ताजिकों[277] का उल्लेख मिलता है, जो कि इस्लाम मतावलम्बियों की एक शाखा थी जो तुर्को के साथ आक्रमणो मे हिस्सा ले रहे थे। आगे चलकर ताजिको ने भारत मे शासनसत्ता भी सम्हाली। इसके फलस्वरूप उत्तर पश्चिम भारत मे व्यापारिक गतिविधिया पूर्णत सुरक्षित नही रह गयी थी। यहाँ के लोगो को अवसर आने पर दास बनाने तथा इस्लाम धर्म मे परिवर्तित करने का भरसक प्रयास किया। इससे भारतीय सामाजिक जीवन में एक नई उलझन ने जन्म लिया जिनको इस्लाम धर्म मे दीक्षित कर लिया गया तथा जो उनके सम्पर्क मे आए ऐसे लोगो के साथ किस प्रकार का सामाजिक व्यवहार किए जाए।

आलोच्य ग्रंथ मे उत्तर दिशा को मलेच्छो से भरी हुई बताया उत्तर दिशा में वैश्य अन्य यात्रियों के साथ ताजिक द्वारा पकड लिए गए।[278] उस ताजिक ने दूसरे ताजिक के हाथ बेन्च दिया उसने भी चारो को खरीद कर नौकर के हाथ उपहार स्वरूप मुरवार नामक तुर्क के पास भिजवा दिया। उसके पहुँचने पर मुखार की मृत्यु हो चुकी थी। अतः चारों को उसके पुत्र को सौप दिया। जिसने अपनी पिता की कब्र के पास दफनाने का निश्चय किया परन्तु दैवगति से किसी तरह मुक्त होकर उत्तर दिशा को त्यागकर सुरक्षित दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया।[279]

इससे पता चलता है कि ताजिक लोग यहाँ के व्यक्तियो को पकडकर दास बना लेते तथा उनका विक्रय भी करते थे। इसके अतिरिक्त कुछ हिन्दू मुसलमान हो गए होगे। सम्भवत. इसके पीछे सैनिक दबाव रहा होगा। इसके अलावा निम्न वर्ग के लोगो ने इसलिए इस धर्म को स्वीकार किया होगा कि नए धर्म में उन्हें अच्छी सामाजिक स्थिति प्राप्त हो रही थी।

इसके अलावा कुछ आर्थिक दृष्टि से भी लाभ हुआ होगा।[280] इन परिवर्तित लोगो को पुन· हिन्दूधर्म मे शामिल करने के प्रयास अवश्य हुए। स्मृतिकारो ने तुर्को से सम्पर्क स्थापित हो जाने वाले व्यक्तियो को पुन वर्णव्यवस्था में मिला लेने का विधान निर्दिष्ट किया। इस प्रकार के व्यक्तियो को अपने धर्म और समाज मे पुन स्थान देने की व्यवस्था की गई परन्तु अल्बीरूनी के इस कथन से कि हिन्दुओ ने परिवर्तित हिन्दू मुसलमानो को पुन सामाजिक व्यवस्था मे स्वीकार करने मे सकोच किया।[281] इससे स्पष्ट है कि हिन्दू से मुसलमान बने लोगो पुन हिन्दू धर्म में वापस लौटने की व्यवस्थाए की गई परन्तु व्यवहारिक रूप मे प्रतिकूल स्थिति देखने को मिलती है। जिससे प्राचीन भारतीय सामाजिक वर्ण एव जाति व्यवस्था के समक्ष समस्याएं उत्पन्न हुई जिनका उदारता पूर्वक हल नही ढूढा गया, जिसके फलस्वरूप हिन्दू समाज का एक बडा तबका मुसलमान वर्ग मे परिवर्तित होकर विदेशी आक्राताओ का हितपोषक बन गया। यह वर्ग अब अपना आर्दश एवं पृष्ठभूमि भारत भूमि के बाहर खोजने लगा। जिससे सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर गहरा धक्का लगा।

आश्रम व्यवस्था

कथासरित्सागर मे मनुष्य के जीवन को सुसंस्कृत, सुसंगठित एवं व्यवस्थित करने हेतु आश्रम व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। सोमदेव भट्ट ने भी अपने समकालीन अन्य लेखको की भाँति आश्रमो का वर्णन किया है। यद्यपि कि 'ब्रह्मचर्य आश्रम' एवं 'सन्यास आश्रम' शब्द ग्रथ मे उपलब्ध नही होता है लेकिन चारों आश्रमो के कार्यो एव कर्त्तव्यो पर प्रकाश पडता है। इससे स्पष्ट है कि सोमदेव के समय चारो आश्रमो का प्रचलन पूर्वकाल की भांति था। प्राचीन भारतीय परम्परा में आश्रमों का महत्व पूर्ण स्थान है। वैदिक साहित्य में स्पष्टत चारो आश्रमो का उल्लेख अप्राप्य है परन्तु चारो आश्रमों का उल्लेख समानार्थक एवं प्रसंगत विवरणों में अवश्य प्राप्त होता है।[282] कथा सरित्सागर में ब्रह्मचारी, गृहस्थ, परिव्राजक, सन्यासी तथा मुनि शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है।[283] पाणिनि ने भी ब्रह्मचारी, गृहपति, परिव्राजक तथा

अध्ययन स्थान अत्यन्त शान्त, निरापद एवं एकान्त होता था।[293] यहाँ पर विद्यार्थी ब्रह्मविद्या के लिए व्रत का पालन करता था। अत· ब्रह्मव्रत के कारण ही 'ब्रह्मचारी' कहलाता था।[294] इसका जीवन अत्यन्त व्यवस्थित, सयमित और नियमबद्ध होता था। वह गुरू के पशुओ की देखभाल करता था, समिधा इकट्ठी करता था, भिक्षा मॉगता था, यज्ञ करता था और निष्ठा पूर्णक गुरू की सेवा करता था। वह आचार्य की अधीनता स्वीकार करते हुए गुरू की सेवा करता था ऐसा करने वाला जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी स्वर्ग को प्राप्त करता था।[295] ब्रह्मचारी भिक्षावृत्ति से निर्वाह करता था। भिक्षा मे जो कुछ प्राप्त हो, उसका कुछ हिस्सा देव, गुरू को अर्पण कर शेष बचे हुए अन्न का स्वयं भोजन करता था।[296] इसके अलावा प्रतिदिन स्नान, शरीर शुद्ध रखना एवं पृथ्वी पर शयन करना आवश्यक था। जब तक विद्या समाप्त न हो जाए तब तक व्रत धारण करना और उत्तम संस्कारो से युक्त अपने को बनाना आवश्यक कत्तर्व्य था।[297] अलबीरूनी ने वर्णन किया है कि ब्रह्मचारी दिन में तीन बार स्नान करते है तथा सुबह और शाम हवन करता है, वह एक दिन उपवास करता था और एक दिन उपवास तोडता था तथा होम के उपरान्त गुरू की पूजा करता था, गुरू आवास में ही वह निवास करता था। जिसे वह भिक्षा मॉगने के समय ही छोडता था और एक बार मे पॉच घरो से अधिक मे नहीं माँगता है। दोपहर को या शाम को जो कुछ भिक्षा उसे मिलती है गुरू के सम्मुख रख देता था इसीलिए इच्छानुसार ले लेने के उपरान्त शेष गुरू उसे खाने की आज्ञा देता था, इस प्रकार गुरू से बचे हुए भोजन से विद्यार्थी अपना पोषण करता था फिर वह अग्नि के लिए दो तरह के वृक्षो पलास की समिधा और दर्भ लाता था। इसीलिए हिन्दू अधिक अग्नि की पूजा करते है और फूल चढाते है।[298] ब्रह्मचारियो के लिए नृत्य, गायन, वाद्य, सुंगधित वस्तुएँ, माला, जूता, छाता, अंजन, हँसना, नग्न स्त्री को देखना, स्त्री को मुख से सूँघना उसकी मन में कामना करना तथा उसे अकारण स्पर्श करना निषिद्ध था।[299] कथा सरित्सागर मे गुरू पत्नी द्वारा विद्यार्थी के साथ सम्पर्क स्थापित करने के प्रयास का वर्णन है। विद्यार्थी के अस्वीकार करने पर उसके ऊपर लांक्षन लगाकर गुरू तथा अन्य शिष्यों से पिटपाने का वर्णन मिलता है।[300] इससे स्पष्ट होता है कि इस

समय तक आते–आते गुरूपत्नी तथा शिष्यो के सम्बन्धो मे ह्रास के लक्षण दिखलाई पडने लगे थे। विद्याध्ययन की समाप्ति पर गुरू दक्षिणा दिया जाता था।[301] गुरूओ द्वारा दक्षिणा की मॉग भी की जाती थी।[302]

गृहस्थ आश्रम समाज की उन्नति के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इसीलिए धर्म शास्त्रकारो ने इस आश्रम को सर्वश्रेष्ठ कहा है। जहॉ एक ओर ज्ञान प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम श्रेष्ठ है, तो दूसरी ओर धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति का साधन यही आश्रम है। अन्य तीनो आश्रमो के व्यक्ति इसी आश्रम पर आश्रित रहते है। कथासरित्सागर मे उल्लिखित है कि विवाह के उपरान्त मनुष्य, देवता, पितर और अतिथियो की सेवा करके धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरूषार्थो को प्राप्त करता है।[303] सम्भवत इसी को दृष्टिगत करते हुए मनु ने इसे सर्वश्रेष्ठ आश्रम कहा है।[304] गृहस्थ आश्रम की श्रेष्ठता इस कारण मानी गई है कि इसमें सब का उपकार करने का अवसर प्राप्त होता है। सोमदेव ने वर्णन किया है कि व्यक्ति ब्रह्मचर्य आश्रम मे विद्याध्ययन एव गुरूओ को गुरू दक्षिणा के उपरान्त विवाह करके गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करते थे। जिसमे व्यक्ति को धन की आवश्यकता पडती थी।[305] नीति वाक्यामृत में गृहस्थ की परिभाषा मिलती है जिसमे प्रतिपादित किया गया है कि जो मानव, शास्त्र विहित नित्य अनुष्ठान और नैमित्तिक अनुष्ठान का पालन करता है वह गृहस्थ है।[306] यशस्तिलक में भी विवरण मिलता है कि जो अहिंसक है जिसे सम्यक्ज्ञान रूपी अतिथि प्रिय है, तथा जो मनरूपी देवता की साधना करता है वही सच्चा गृहस्थ है।[307] इन्ही सब कारणो से कथासरित्सागर में गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमो में सर्वश्रेष्ठ बताया गया है।[308] महाभारत मे गृहस्थ आश्रम की गरिमा युक्त प्रतिष्ठा की गई है तथा उसे अन्य सभी आश्रमो में श्रेष्ठ माना गया है।[309] गृहस्थ आश्रम का त्याग कर सन्यास को पापिष्ठा कहा गया है। गृहस्थ आश्रम में ही देवताओ पितरो और अतिथियो के लिए यज्ञ आयोजित होते थे, इससे त्रिवर्ग की प्राप्ति होती है।[310]

मनु ने[311] गृहस्थ आश्रम के कर्त्तव्यों का विवेचन करते हुए गृहस्थ को ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ तथा नृयज्ञ नामक पॉचो यज्ञो को सम्पादित

करना चाहिए क्योकि ये गार्हस्थ के समस्त दायित्वो का सम्पादन करने मे समर्थ है। ब्रह्मयज्ञ का आशय शिष्यो को वैदिक शिक्षा देना, पितृ यज्ञ का आशय पितरो के नाम पर तर्पण करना, देव यज्ञ मे होम करना, भूतयज्ञ मे जीवो के लिए अन्न भोजन देना एव नृयज्ञ मे अतिथि का आदर—सत्कार करने का प्रावधान था। इसी आश्रम मे तीन ऋणो देवऋण, ऋषि ऋण एव पितृ ऋण से मुक्ति पा सकता था। सामाजिकता के विकास तथा बन्धुत्व के दृष्टिकोण से भी ऋण के इस सिद्धान्त का विशेष महत्व प्रतीत होता है।

वानप्रस्थ

गृहस्थ आश्रम के उपरान्त वानप्रस्थ आश्रम का प्रारम्भ होता था। पूर्व मध्यकालीन ग्रथो से प्रतीत होता है कि उस युग मे ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम के बाद वानप्रस्थ आश्रम की व्यवस्था थी। नियमतः जब व्यक्ति गार्हस्थ कर्त्तव्यो और उत्तरदायित्वो को सम्पन्न कर लेता था तब वह ससारिक मोहमाया को त्यागकर वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करता था। कथासरित्सागर में वर्णन है कि राजा का पुत्र गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश हुए बिना वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करने का निश्चय किया। इससे प्रभावित होते हुए राजा ने अपने दायित्वों से पूर्णतः निवृत्त हुए बिना वानप्रस्थ आश्रम मे पुत्र के साथ प्रवेश किया।[312] एक राजकुमार का वर्णन मिलता है, जो युवावस्था में ही परिव्राजक बन गया था।[313] इस आलोच्य ग्रथ मे ऐसे की विवरण मिलते है जब राजा लोग वृद्धावस्था के आगमन को समझ कर राज्य को छोडकर तपस्या करने चले जाते थे।[314] मनु ने भी यह मत प्रतिपादित किया है कि जब सिर के बाल भूरे होने लगे और शरीर पर झुर्रिया आ जाए तब व्यक्ति को गृहस्थाश्रम छोड़कर वानप्रस्थ में प्रवेश का लेना चाहिए।[315] इस आश्रम के नियमो को प्रतिपादित करते हुए बताया गया है कि संयमित और सादा जीवन व्यतीत करना चाहिए। गौतम धर्मसूत्र में कहा गया है कि उस व्यक्ति को मूल एव फल खाना चाहिए। अपने शरीर को कष्ट देना चाहिए, पंच महायज्ञो को करना चाहिए, वर्जित लोगों को छोड़कर अतिथियो का सत्कार करना चाहिए।[316] इसे बाल तथा दाढ़ी बढा लेनी चाहिए।[317] वानप्रस्थी को तेल भी नही लगाना

चाहिए।[318] वानप्रस्थ मे अतिथि पूजा का उतना महत्व है जितना गृहस्थाश्रम मे है। इसका मुख्य उद्देश्य आध्यात्मिक उत्कर्ष, समस्त भौतिक स्पृहाओं से मुक्ति पाने का उपक्रम था।

सन्यास आश्रम को चतुर्थ आश्रम भी कहा जाता है वानप्रस्थ आश्रम के बाद सन्यास आश्रम प्रारम्भ होता था। वानप्रस्थ में रहकर व्यक्ति समस्त ससारिक मोह माया से अपने को पूर्णत. तटस्थ कर लेता था और ऐकान्तिक तथा तपस्वी का जीवन व्यतीत करने का अभ्यास प्राप्त करता था। सन्यास आश्रम के माध्यम से अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति सम्भव थी। कथासरित्सागर मे वर्णन है कि राजा अधिक उम्र हो जाने पर अपना राज्य पुत्रों को सौप कर शुभ मुहूर्त में तपस्या के लिए तीर्थ स्थान मे जाते थे।[319] राजा तपस्या हेतु मत्रियो के साथ भी जाते थे।[320] राजाओ द्वारा तपस्या के लिए प्रयाग[321] एव वाराणसी[322] जाने का उल्लेख है। महाभारत में सन्यासी के लिए बताया गया है कि उसे क्रोध मोह का परित्याग कर अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान नियमो का पालन करे।[323] इसके अतिरिक्त इन्द्रिय निग्रह के साथ जितेन्द्रिय होना भी आवश्यक था।[324] उपरोक्त बातो के अलावा सन्यासियों को भ्रमणशील होना चाहिए; परिव्राजक इसी श्रेणी मे आते थे। वह एक रात्रि एक ग्राम में पाँच रात्रि से अधिक नगर में निवास नहीं करता था। यह नियम उसके निमित्त इसलिए आवश्यक था कि वह कही मोह माया और संसारिक प्रपंच के बन्धन में फिर न फॅस जाए।[325] अलबीरूनी ने बताया है कि यह आश्रम जीवन के अंतिम समय तक चलता था। लाल वस्त्र एव दण्ड हाथ मे धारण करता था। वह पाच दिन से अधिक कही नहीं रहता था कोई कुछ देता तो उसे दूसरे दिन के लिए नहीं रखता। मुक्ति मार्ग की चिन्ता हमेशा उसको लगी रहती है।[326] सन्यासी का जीवन अत्यन्त तपस्या एव कठोरता का था। इसका परम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए वह अपने शरीर और मन को दृढता पूर्वक तपाता था। संसार की समस्त भौतिक तथा संसारिक पदार्थो के प्रति अनासक्त होकर अपने उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति के लिए साधनरत रहता था। समाज में भिक्षु एवं सन्यासी का अत्यधिक आदर और सम्मान था।[327]

पुरूषार्थ

प्राचीन भारतीय जीवन मे भोग परक एव आध्यात्मिक वृत्तियो का समन्वित एव सतुलित रूप का महत्वपूर्ण स्थान है, जो मानव जीवन को उन्नति बनाती है। भारतीय जीवन दर्शन मे इन दोनो प्रवृत्तियो के सतुलित, सम्मिलित और समन्वित रूप को 'पुरूषार्थ' कहते है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरूषार्थ माने गए है जिन्हे शास्त्रकारो ने चतुर्वर्ग कहा है। कथासरित्सागर मे कहा गया है कि मनुष्य देवता, पितर और अतिथियो की सेवा करके धर्म, अर्थ, काम तीन पुरूषार्थो को प्राप्त करता है।[328] इसमें मोक्ष का भी वर्णन आया है जिसमें कहा गया कि जिस व्यक्ति को तत्व का ज्ञान हो जाता है वह फिर कर्मजाल के बधन में नही बॅधता। यही संक्षिप्त मे मोक्ष का उपदेश है।[329] ऐसी स्थिति मे कहा जा सकता है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से समन्वित पुरूषार्थ व्यक्ति के जीवन को गरिमा मण्डित बनाता है और उसके निवृत्तिमूलक व्यक्त्वि का निर्माण करता है।

मानव जीवन में 'धर्म' का बहुत अधिक महत्व है जिससे व्यक्ति को ससारिक और आध्यात्मिक सहारा मिलता है तथा उसकी और समाज की उन्नति होती है। भारतीय धर्मशास्त्रकारो ने धर्म को सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म और आपद्धर्म मे विभाजित किया है। महाभारत मे विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत देश धर्म, जाति धर्म और कुल धर्म का उल्लेख है।[330] इसके अन्तर्गत अन्य धर्म शास्त्रकारो ने कई प्रकार के स्मार्त धर्मो का उल्लेख किया है। जिसमें वर्णधर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रमधर्म, गुण धर्म एवं नैमित्तिक कार्य का विवरण मिलता है।[331] साधारण धर्म मे सामान्यत· सत्य, अहिसा, ब्रह्मचर्य, दम, क्षमा, शुश्रूषा, शील, मधुर वचन, शरणागत रक्षा, अतिथि सेवा आदि की गणना की जाती है।[332] इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत् मे सामान्य धर्म के तीस लक्षण बताए गए है। कथासरित्सागर में उपरोक्त सामान्य धर्मो का उल्लेख मिलता है।

पुरूषार्थ मे दूसरा स्थान 'अर्थ' का है। कथा सरित्सागर मे द्वितीय पुरूषार्थ अर्थ का विवेचन प्राप्त होता है।[333] ऋग्वैदिक आर्य भी भौतिक सुखो

के प्रति जागरूक थे। धन सम्पत्ति, गाय, अश्व आदि की वृद्धि के लिए प्रार्थना करते थे।[334] अर्थ लौकिक जीवन की समस्त आवश्यकताओ की पूर्ति का साधन है। अर्थ पुरूषार्थ से तात्पर्य भौतिक सुखो और आवश्यकताओ की पूर्ति से है। समस्त भौतिक उन्नति के साधन इसी पुरूषार्थ से समवेत किए जाते है। अधिकाश विचारको ने अर्थ की आवश्यकता और उपादेयता स्वीकार की है। कौटिल्य ने अर्थ को धर्म जितना ही महत्वपूर्ण बताया है।[335] अर्थ विहीन व्यक्ति ग्रीष्म की सूखी सरिता के समान माना गया है।[336] मनु के अनुसार त्रिवर्ग ही श्रेय है जिसमे अर्थ की अपनी विशेषता है।[337] कथासरित्सागर मे अर्थ का विशेष महत्व प्रदर्शित किया गया है। जिसमे वैश्य अर्थ के लिए देश देशान्तरों की यात्राए करते थे।[338] इसमे ऐसे वणिक की चर्चा आती है जिसने बुद्धि बल से पर्याप्त अर्थ का सचय किया था।[339] इस ग्रथ मे ऐसे वर्णन आते है जो अर्थ के लिए अनैतिक या धर्म विरूद्ध हथकण्डे अपनाते थे जिसमे अर्थ प्राप्ति के लिए अपनी स्त्री को दूसरे व्यापारी के पास भेजा।[340] उपर्युक्त विचारो से यह सिद्ध होता है कि अर्थ का मानव के जीवन मे बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान था। प्रत्येक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं के प्रति प्रवृत्त रहता है। किन्तु व्यक्ति का धन संग्रह धार्मिक आधार पर होना चाहिए। अधार्मिकता और अन्याय से अर्जित सुख और धन सम्पत्ति का फल दु:खद होता है। धर्म विरूद्ध कार्यो मे धन व्यय करना भी निन्दनीय माना गया है। धर्म को हानि पहुँचाने वाले अर्थ का त्याग करना श्रेयस्कर माना गया है मनु के अनुसार अगर अर्थ और काम धर्म विरूद्ध है तो उनको छोड देना चाहिए।[341]

प्राचीन धर्म शास्त्रकारो ने 'काम' को तीसरा पुरूषार्थ माना है काम का अर्थ उन सभी इच्छाओ से है जिनकी पूर्ति करके मनुष्य ससारिक सुख प्राप्त करता है। काम का मुख्य उद्देश्य धर्म पूर्वक मर्यादा का पालन करते हुए सन्तानोत्पत्ति के द्वारा समाज को गति प्रदान करना है। नीतिवाक्यामृत मे काम की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि बाधा रहित तन्मयता के साथ जिससे समस्त इन्द्रियों को परितृप्ति और प्रीति होती है उसे काम कहते है।[342] कौटिल्य ने संकेत किया है कि एक दूसरे के आश्रित धर्म और काम स्वरूप त्रिवर्ग का समान रूप से सेवन करना चाहिए क्योंकि धर्म, अर्थ और काम इन

तीनो मे यदि एक का व्यसन के रूप मे अत्यधिक सेवन हो जाता है तो उनमे से दो को पीडा पहॅचती है।[343] काम का महत्व कथासरित्सागर मे प्रतिपादित है कि विद्वान लोग युवावस्था का उपयोग हो जाने पर ही वैराग्य की कामना करते है।[344] इस ग्रथ मे बताया गया है कि भोग (काम) का नियम अवस्था पर निर्भर नही होता है।[345] मानव जाति का प्रसार और विस्तार काम पर अवलम्बित है। व्यक्ति की काम जनित इच्छाए और आभिलाषाए इसी से तृप्त होती है। अतृप्तावस्था में व्यक्ति के मन और मस्तिष्क मे ग्रथिया और अस्वाभाविकता आ जाती है। जब कि स्वाधीन अत करण वाला पुरूष रागद्वेष से रहित अपने वश मे की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयो को भोगता हुआ अन्त. करण की प्रसन्नता प्राप्त करता है।[346] जिसकी इन्द्रिया वश मे नही है उन्हे किसी भी कार्य में सफलता नही प्राप्त हो सकती।[347]

आलोच्य ग्रंथ मे अनियन्त्रित 'काम' के उदाहरण भरे पडे है। सोमदेव ने उपकोशा कथा के द्वारा उसके ऊपर आकृष्ट होने वाले राजपुरोहित, नगरपाल, कुमार सचिव एव वैश्यो का वर्णन प्राप्त होता है।[348] स्त्रियों पर अत्यन्त आसक्ति करने वाले पुरूष का धन, धर्म और शरीर नष्ट हो जाता है।[349] ऐसा विषयी और विलासी व्यक्ति न परिवार के योग्य होता था न समाज के योग्य होता था। मत्स्य पुराण में वर्णित है कि धर्म हीन काम बन्ध्या के रहस्य है।[350] इसी लिए प्राचीन भारतीय चिन्तको ने जीवन को सुगम और सुव्यवस्थित करने हेतु धर्म संवलित काम की अपेक्षा की है।

मनुष्य के पुरूषार्थ की परम परिणित **मोक्ष** है। जन्म और पुनर्जन्म के बंधन से छुटकारा तथा इस संसार के आवागमन से मुक्ति ही मोक्ष है। कथा सरित्सागर मे मोक्ष को परिभाषित करते हुए बताया गया है कि जिसे तत्व का ज्ञान हो जाता है और फिर कर्मजाल के बधन में नही बँधता। वही मोक्ष है।[351] इस मोक्ष की प्राप्ति के लिए मार्ग भी बताया गया है वैश्य पुत्र भ्रमण करते समय एकाग्रचित्त से गले पर तलवार गिरने के भय से तेल की ओर दृष्टि लगाएं हुए उसे बचाने मे तल्लीन था और भ्रमण के दौरान कुछ नही देखा उसी प्रकार की तल्लीनता से व्यक्ति आत्मा के ध्यान मे लग जाए। आत्मा की

एकाग्रवृत्ति से देखने वाला व्यक्ति बाहरी वृत्तियो से हटकर आन्तरिक तत्व को देखता है। यही सक्षेप मे मोक्ष का उपदेश है।[352] मृत्यु से डरा हुआ बुद्धिम व्यक्ति मुक्ति के लिए यत्न करता है।[353] उग्र तपस्या के द्वारा भी मोक्ष प्राप्ति का उल्लेख है।[354] मानव द्वारा मोक्ष के लिए जप–तप के क्लेश उठाने का वर्णन सोमदेव ने किया है।[355] मनु ने इन्द्रिय निरोध, रागद्वेष का त्याग, और अहिसा परायण व्यक्ति को ही मुक्ति के योग्य बताया है।[356] पुराणों में मोक्ष के इच्छुक व्यक्ति के लिए चारित्रिक एव आचरणगत नियम का निर्देश किया गया है।[357]

मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्कर्ष पुरूषार्थ से ही सम्भव रहा है। मानव अपने विभिन्न कर्मो और कर्त्तव्यो का सम्पादन पुरूषार्थ के ही सयोग से करता था। चारो आश्रमो मे धर्म की सर्वोच्च स्थिति मानी गयी है मनुष्य के समस्त कर्त्तव्य धर्म के आधार पर ही सम्पन्न करने की अनुमति प्राचीन विचारको ने दिया है। परन्तु सोमदेव ने गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमो से श्रेष्ठ मानते हुए धर्म, अर्थ और काम को समान महत्व प्रदान किया है। क्योकि वे मानते थे कि मानव जीवन का सर्वागीण एवं संकलित विकास तीन पुरूषार्थो के समान रूप से सम्यक पालन से सम्भव है जिसके आधार पर मानव जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है।

विवाह

भारत मे विवाह एक प्राचीन धार्मिक एवं महत्वपूर्ण व्यवस्था है। कुटुम्ब का निर्माण विवाह से ही होता था। ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद व्यक्ति विवाह के साथ गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था। इसी लिए विवाह को संविदा न मानकर महत्वपूर्ण धार्मिक संस्कार माना गया है। जिसे तोड़ना प्राचीन सामाजिक मूल्यों के विरूद्ध कार्य करना था। व्यक्ति जब तक अविवाहित रहता था। वह पूर्ण नहीं माना जाता था। विवाह के बिना व्यक्ति का परिवार भी व्यवस्थित नहीं होता था। ऐसी स्थिति में समस्त सामाजिक संगठनों मे इसे मेरूदण्ड माना जा सकता है। क्योकि धर्म, अर्थ और काम पुरूषार्थो का पालन इसके बिना सम्भव नही है। किसी देश की संस्कृति का

अध्ययन करने के लिए विवाह के महत्व को समझना आवश्यक है क्योकि सामाजिक सगठन पर इस सस्था का व्यापक प्रभाव पडता है।[358] हिन्दू समाज मे कोई भी धार्मिक कार्य बिना पत्नी के सम्पन्न नहीं होता है इसीलिए वह धर्मपत्नी अथवा सहधर्मिणी भी कहा जाती है। मनु ने उल्लिखित किया है कि पुरूष कोई वस्तु नही, वह अपूर्ण है। स्त्री, स्वदेह तथा सन्तान ये तीनो मिलकर ही पुरूष पूर्ण होता है ऐसी ब्राह्मणो की मान्यता है।[359] जो पति है वही स्त्री है गृहणी शोभा और सम्पन्नता स्त्री से मानी गई है।[360] इससे स्पष्ट है कि भारतीय समाज मे स्त्री–पुरूष के एकात्मकता को यह तथ्य ध्वनित करता है। यही परिकल्पना आगे चलकर 'अर्धनारीश्वर' के रूप मे प्रकट होती है। यह भारतीय अवधारणा पूरकता से कही अधिक उपयुक्त एव उच्च आर्दशो से अनुप्राणित प्रतीत होती है। इस प्रकार विवाह स्त्री पुरूष की पूर्णता तथा उसके सामाजिक तथा आध्यात्मिक अभिव्यजना का आधार स्तम्भ है। कथा सरित्सागर मे भी उल्लिखित है कि हे ब्राह्मण देवता क्या तुम आश्रमों का क्रम नही जानते अर्थात् तुम्हे गृहस्थाश्रम (विवाह) में प्रवेश करना चाहिए।[361] सोमदेव के इस विवरण से कथासरित्सागर कालीन समाज में विवाह सस्था का महत्व रेखाकित होता है।

जहॉ तक विवाह शब्द के अर्थ का प्रश्न है, वधू को उसके पिता के घर से विशेष रूप में ले जाना अथवा किसी विशेष कार्य के लिए अर्थात् पत्नी बनाने के लिए ले जाना।[362] मनुस्मृति की टीका करते हुए मेघातिथि ने लिखा है कि विवाह कन्या को पत्नी बनाने के लिए एक निश्चत क्रम से की जाने वाली अनेक विधियों से सम्पन्न होने वाला पाणिग्रहण संस्कार है जिसकी अन्तिम विधि सप्तर्षिदर्शन है।[363] नीति–वाक्यामृत में वर्णन मिलता है कि विधिपूर्वक कन्या का वरण निश्चय करके अग्नि, देव और द्विज को साक्षी पूर्वक वर द्वारा कन्या का पाणिग्रहण किया जाना, विवाह है।[364] आचार्य की अनुभति लेकर विवाह करने की बात भारतीय धर्म शास्त्रकारो ने किया है।[365] कथा सरित्सागर मे भी आचार्य द्वारा अपने शिष्य के विवाह के अनुमोदन का उल्लेख प्राप्त होता है।[366]

हिन्दू समाज मे विवाह एक आवश्यक सस्कार माना गया है जिसका प्रमुख उद्देश्य धर्म का पालन, पुत्र की प्राप्ति एव रतिसुख माना गया है।[367] इससे देवऋष, ऋषि ऋण, पितृऋण, अतिथिऋण और भूतऋण से मुक्ति प्राप्त होती है। इन यज्ञो को करने के लिए पत्नी का होना आवश्यक बताया गया है ऋग्वेद मे कहा गया है कि विवाह ही व्यक्ति को गृहस्थ बनाता तथा देवताओ के निमित्त यज्ञ करने की योग्यता प्रदान करता है।[368] इसके अलावा पारिवारिक जीवन और उत्तरदायित्व सुव्यवस्थित आधार पर विकसित होता है। अलबीरूनी ने विवाह को मान्य कामजन्य भावना के शमन का सुसभ्य तरीका बताया है।[369] जब कि सोमदेव ने विवाह का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत सुख और सामाजिक विकास दोनो को बताया है। उसके बिना मानव जीवन अपूर्ण है।

हिन्दूधर्म शास्त्र कारो ने विवाह के आठ प्रकारों का वर्णन किया है इन विवाहो में ब्राह्म, दैव, आर्य, प्राजापत्य, असुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच है। इनमें प्रथम चार प्रशस्त माने गए अन्तिम चार की गणना अप्रशस्त मे की गई।[370] याज्ञवलक्य ने इन आठो विवाहो का उल्लेख करके प्रथम चार को ही करने योग्य बताया है।[371] अन्य स्मृतियो मे भी प्रथम चार को अनुसरण योग्य बताया है।

कथासरित्सागर मे विवाह का अल्पधिक एवं महत्वपूर्ण विवरण उपलब्ध है। इस ग्रथ का ताना–बाना ही विवाहो पर आधारित है। नरवाहन दत्त एक–एक करके कई स्त्रियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध कायम करता है। विवाहो एव प्रणय प्रकरणों मे तत्कालीन समाज के वास्तविक स्वरूप का प्रतिविम्बन होता है। इस ग्रंथ में ब्राह्म विवाह के वर्णन प्राप्त होता है जिसमें पिता अपनी कन्या को आभूषणो आदि से अलंकृत करके कन्या वर को प्रदान करते थे।[372] इस विवाह का प्रचलन सबसे अधिक देखने को मिलता है, जो आज भी प्रचलित है। विवाह के लिए चित्रकार द्वारा चित्रपट बनवाकर दूत आदि के द्वारा एक दूसरे पक्ष को भेजते थे। राजा अपनी कन्या का चित्रपट दिखाकर उसके योग्य वर की सहमति प्राप्त करता था। वर को भी कन्या के

चित्र को दिखाकर सहमति प्राप्त की जाती थी।[373] यह राजा तथा उच्च वर्गो द्वारा किया जाता था। यशस्तिलक मे भी वर्णित है कि इस प्रकार के विवाह मे वर के मातापिता योग्य धात्री तथा पुरोहित को कन्या की खोज मे भेजते थे। धात्री और पुरोहित का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण होता था। एक तो यह कि योग्य कन्या की तलाश करे, दूसरे कन्या तथा उसके माता पिता के मन में ये भावना उत्पन्न कर दे कि जिस व्यक्ति का प्रस्ताव कर रहे है उससे अधि-.क योग्य वर उस सम्बन्ध के लिए हो ही नहीं सकता। पुरोहित की कुशलता से माता पिता पहले किए गए निर्णय तक को बदल देते थे।[374] सर्वप्रथम गणको एव ज्योतिषियो द्वारा कन्या का जन्म, नक्षत्र पूछकर कुण्डली मिलाने का उल्लेख है।[375] ज्योतिषियो द्वारा लग्न एवं तिथि निश्चित किया जाता था।[376] लग्न निश्चित हो जाने के बाद वर पक्ष बारात लेकर वधू के घर जाता था।[377] कथा सरित्सागर में यह भी उल्लिखित है कि लोग कभी–कभी हित साधना के लिए ज्योतिषो को मिलाकर अपने अनुसार भी लग्न निर्धारित करवाते थे।[378] बारात का कन्या पक्ष द्वारा स्वागत किया जाता था। कथासरित्सागर मे हरिस्वामी के घर एक साथ तीन बारात आने का वर्णन है।[379] जिसमे एक अलौकिक विद्या को जानने वाला दूसरा ज्ञानी एवं तीसरा वीर था। जिसमे वीर के साथ कन्या का विवाह सम्पन्न हुआ,' हो सकता है कि इस प्रकार का विवाह न हुआ हो क्योंकि यह कथा साहित्य का ग्रंथ है, जिसमें लोगो का मनोरंजन करने हेतु इस प्रकार की कहानियो का संकलन अथवा रचना किया होगा। वर वधू को विवाह वेदी के पास ले जाया जाता था।[380] जहॉ पर वर को वधू का हाथ पकडाया जाता था।[381] इसी लिए इसे पाणिग्रहण भी कहते है। अग्नि मे धान की खील (लावा) वर वधू द्वारा डाली जाती थी।[382] वर वधू द्वारा अग्नि की प्रदक्षिणा की जाती थी जिसे सप्तपदी कहा जाता है। वर को कौतुकागार में ले जाने का उल्लेख है जहाँ सौभाग्यवती स्त्रियां होती थी।[382] विवाह में सगीत, वाद्य और नृत्य द्वारा महोत्सव मनाया जाता था।[384] इसमें ब्राह्मणो एवं समागतो का भी सम्मान किया जाता था। महिलाओ द्वारा मंगलगान किया जाता था। विवाह में दहेज दिया जाता था।[385] राजा जनमेजय द्वारा सोना, चॉदी, रत्न, चीनी, वस्त्र, कपूर्र आदि से लदे हुए पांच हजार ऊॅट

तथा पांच हजार हाथी और एक लाख श्रेष्ठ घोडे प्रदान किए।[386] दहेज मे वस्त्राभरणों के साथ–साथ भूमिदान भी दिया जाता था।[387] विवाह के बाद वर के घर मे भोज एव मद्य का आयोजन किया जाता था। विवाह के समय उपयाचना के अनुसार बलि दी जाती थी।[388] जो कि आज भी समाज में निम्न वर्ग के मध्य देखने को मिलता है।

कथासरित्सागर मे कन्याओ द्वारा कुरूप पति को अस्वीकार करने का उल्लेख है।[389] लोग अपनी कन्या का विवाह बिना विधि के विवाह नही होना देना चाहते थे।[390] अलबीरूनी ने भी लिया है कि माता पिता अपने पुत्रो के विवाह की व्यवस्था करते थे।[391] आलोच्य ग्रथ से यह भी जानकारी मिलती है कि बडे भाई के अविवाहित रहने पर छोटा भाई का विवाह धर्म विरूद्ध माना जाता था।[392]

कथासरित्सागर में गान्धर्व विवाह का अत्यधिक वर्णन मिलता है जब युवक युवती द्वारा प्रेमवश काम के वशीभूत होकर अपने माता पिता की उपेक्षा करके एकान्त मे विवाह कर ले तो यह प्रथा गान्धर्व विवाह कही जाती है।[393] नीतिवाक्यामृत में उल्लिखित है कि जिसमे वर और कन्या अपने माता पिता तथा बन्धुओं को प्रमाण न मानकर पारस्परिक प्रेमवश आपस में मिल जाते है वह गान्धर्व विवाह है।[394] इस ग्रंथ में सोमदेव ने युवक–युवती द्वारा कामोत्सुक होने से गान्धर्व विवाह करने का विवरण उपलब्ध है।[395] राजकुमारियो के विवाह मे प्रदान की गई दासियो से राजा गान्धर्व विवाह करते थे।[396] जातक ग्रथों मे भी प्रेम विवाह के अनेको उद्धरण मिलते है वाराणसी के एक आचार्य के शिष्य ने स्थानीय युवती से प्रेम हो जाने पर उससे परिणय कर लिया।[397] मालती माधव नाटक में माधव और मालती के गान्धर्व विवाह का विस्तृत चित्रण है, जहॉ एक स्थल पर यह कहा गया है कि परिणय के लिए वर और वधू का परस्पर प्रेम ही सर्वोत्कृष्ट मंगल है जिसमे वर और वधू के मानस चक्षु मिले रहते है, और उसी में उन्नति है।[398] कथासरित्सागर मे सभी प्रकार के विवाहों में गान्धर्व विवाह को उत्तम कहा गया है।[399] मनु ने गान्धर्व विवाह को सभी वर्णो के लिए धर्मसम्मत बताया है।[400] वात्स्यायन के अनुसार यही विवाह

अनुरागमय, सुखद और सर्वश्रेष्ठ था।[401] जबकि हिन्दू समाज मे इस विवाह को आदर एव सम्मान की दृष्टि से नही देखा जाता था। इस आलोच्य ग्रथ में यह भी उल्लिखित है कि एकान्त मे विवाह करने के उपरान्त कुछ युवक घर आकर ज्योतिषियो द्वारा मूहूर्त निकलवाकर करके पिता बन्धु बान्धव के साथ पुनः विधिपूर्वक विवाह करते थे।[402] इसके अलावा कन्याओं के अपहरण का भी उल्लेख मिलता है। जिसमे वासवदत्ता का अपहरण उदयन द्वारा किया गया था। यह अपहरण वासवदत्ता की सहमति उसे हुआ था। जिसके बाद विधि पूर्वक विवाह सम्पन्न किया गया।[403] युवतियों को भगाकर विवाह करने को समाज मे असवैधानिक माना जाता था। इस प्रकार का विवाह क्षत्रियो में प्रचलित था। पृथ्वीराज ने स्वयं सयोगिता का अपहरण करके विवाह किया था परन्तु इसको पूर्णरूपेण राक्षस विवाह नही कहा जा सकता है क्योंकि विवाह के लिए स्वय कन्या राजी थी।[404]

कथा सरित्सागर में अस्पष्ट अप्रत्यक्ष रूप से राक्षस विवाह के प्रकरण दिखालाई पड़ते है। जिसमें राजकुमारियो का अपहरण किया गया इस अपहरण के फलस्वरूप युद्ध में सूर्य प्रभ ने राजकुमारियो के भाईयों एवं मामा को बाँध लिया और राजकुमारियों को लेकर चला गया। परन्तु बाद में राजकुमारियों के पिता द्वारा सूर्यप्रभ से राजकुमारियो के साथ आकर विवाह करने के लिए आमन्त्रित किया।[405] महाभारत मे स्त्रियो को बलपूर्वक हर ले जाना क्षत्रियों के लिए उत्तम मार्ग माना गया है। अपहृत कन्या को पूर्णतः अविवाहित कहा गया है और दूसरे के साथ उसका विवाह होना समुचित माना गया है।[406] राक्षस विवाह के प्राचीन कालीन उदाहरण मिलते है। बौद्ध साहित्य मे उदाहरण है कि चोरों के एक नेता ने ग्रामीण कन्या का अपहरण करके विवाह किया था।[407] इसमें राजा वीरभट आदि राजाओं की पुत्रियो का अपहरण उनके सामने ही होने का वर्णन है।[408] इस प्रकार पराक्रम और शौर्य प्रदर्शित करके कन्या का अपहरण कर विवाह करने के उदाहरण प्राचीन काल की भॉति इस समय भी दिखाई पडते हैं।

कथा सरित्सागर के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इस समय स्वयवर की प्रथा विद्यमान थी। इसमे लडकियां अपनी पतियो का चयन स्वेच्छानुसार अपने अनुरूप वर देखकर करती थी। जिसे पसन्द करती थी उसके गले मे वरमाला डालती थी।[409] यह प्रथा राजघरानों मे प्रचलित थी।[410] यशस्तिलक मे वर्णन मिलता है कि कन्या के परिणय योग्य हो जाने पर कन्या का पिता देश–विदेशो मे प्रतिष्ठित लोगो को स्वयंवर की सूचना देता था किसी निश्चित तिथि को स्वयवर का आयोजन किया जाता था। कन्या हाथ मे वरमाला लेकर मण्डप मे प्रवेश करती थी और अपनी इच्छानुसार किसी योग्य व्यक्ति के गले में वरमाला पहना देती थी।[411] गान्धर्व विवाह से अन्तर केवल इतना है कि स्वयंवर मे केवल कन्या अपनी इच्छा से अपने वर का चुनाव करती थी जबकि गान्धर्व विवाह मे वर और कन्या दोनो अपने मन के अनुसार विवाह करते थे। इस प्रकार का विवाह आयोजित करते समय अनेक प्रकार की प्रतिज्ञाएं एव शर्ते लगाई जाती थी जो स्वयंवर का ही भाग थी। कथासरित्सागर में उल्लिखित है कि राजा उदयतुंग की उदयवती नाम की एक कन्या थी, राजा ने प्रतिज्ञा किया कि जो कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय मेरी कन्या को शास्त्रार्थ मे पराजित कर देगा उसी के साथ विवाह करूँगा। विनीतमति द्वारा शास्त्रार्थ में पराजित करने पर राजा उदयतुंग ने प्रसन्न होकर कन्या का विवाह कर दिया।[412] रामायण में भी उल्लेख है कि राजा जनक ने सीता का स्वयंवर आयोजित करके शर्त रखी कि जो इस शिव धनुष को तोडेगा उसी को सीता अपना वर चुनेगी।[413] इसी प्रकार का उदाहरण महाभारत मे मिलता है जिसमे द्रोपदी के स्वयंवर का उल्लेख है तथा मत्स्य का ऑख भेदने वाले को ही द्रोपदी के ब्याहने की बात थी। अर्जुन ने इस प्रण को तोडकर द्रोपदी के साथ विवाह किया।[414] बौद्ध ग्रथों में भी स्वयंवर–विवाह पर प्रकाश पडता है असुरराज बेचपति की पुत्री ने अपना मनोनुकूल वर चुना।[415] रघुवंश मे इन्दुमती के स्वयंवर का विवरण उपलब्ध है।[416] पूर्वमध्यकाल मे भी स्वयंवर का आयोजन होता था। कलहार के शिलाहार शासक की पुत्री चन्द्रलेखा ने कल्याण नरेश चालुक्य विक्रमांकदेव को अपना पति चुना था।[417]

कथासरित्सागर भारतीय समाज मे मुख्य रूप से ब्रह्म, गान्धर्व, स्वयवर विवाह प्रचलन में थे। प्रथम चार प्रकार के विवाहो– ब्रह्म, देव, आर्ष एव प्रजापत्य विवाहो मे कुछ तत्वो को छोडकर लगभग सामान्यताए थी। जिसके परिणामस्वरूप ब्रह्म विवाह का समाज मे अधिक प्रचलन रहा। असुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच प्रकार के विवाहो का किसी न किसी रूप से अस्तित्व बना रहा। प्राचीन काल मे राक्षस आदि विवाह निम्नवर्ण के लोगो के द्वारा अपनाएं जाते थे लेकिन इस काल तक आते–आते क्षत्रिय वर्ग द्वारा भी इन विवाहो को अपनाया जाने लगा। इन चार प्रकार के विवाहो मे समाज की सहभागिता का अभाव था। युवक तथा युवती के द्वारा अथवा एक पक्ष के द्वारा अपने जीवनसाथी को चुनते अथवा बलात् बनाते थे। इस प्रकार से इस काल मे ब्रह्म एव गान्धर्व विवाह का प्राधान्य बना। इसके अतिरिक्त कथासरित्सागर मे कुछ ऐसे प्रकरण मिलते है जो अभी तक परम्परागत रूप से चले आ रहे विवाह प्रकारो से भिन्न थे। इसमें उल्लेख आता है कि एक कुरूप ब्राह्मण वैश्य कन्या को प्राप्त करने के लिए उसके यहॉ अनशन प्रारम्भ किया, इस कारण ब्राह्मण हत्या का पाप लगने के डर से अपनी कन्या को प्रदान किया। लेकिन कन्या उस ब्राह्मण के घर मे भागकर दूसरे को अपना पति बना लिया।[418] इसके अतिरिक्त स्त्री की विपत्ति में रक्षा करने वाले पुरूष को अपना पति बनाने का भी उल्लेख मिलता है। कथासरितसागर मे वर्णित है कि एक बिगडे हुए हाथी को देखकर डरकर भागने वाला मेरा पति नही हो सकता है तुम मेरे अब भर्त्ता हो जिसने अपने जीवन की चिन्ता न करके मुझे मृत्यु मुख से निकाला है।[419]

आलोच्य ग्रथ मे जहॉ तक विवाह की आयु का प्रश्न हो इसमे प्राचीन धर्म शास्त्रकारों के सिद्धान्तो को अपनाते हुए कहा गया है कि कन्या को रजस्वला होने के पूर्व विवाह कर देना चाहिए अन्यथा पिता पाप का भागी होता है।[420] यह भी विवरण उपलब्ध है कि यदि कन्या के तीन बार रजस्वला होने तक पिता विवाह नहीं करता तो वह कन्या स्वतः अपना विवाह करने के लिए स्वतत्र है।[421] कथासरित्सागर की इन विवेचनाओं से स्पष्ट होता है कि

बाल विवाह भी तत्कालीन समाज मे प्रचलित था। परन्तु सामान्यत कन्याओ के वयस्क होने पर ही विवाह होता था। यदि प्राचीन साहित्य पर दृष्टि डाले तो स्पष्ट होता है कि वैदिक, महाकाव्य कालीन समय मे युवावस्था मे विवाह होने का उल्लेख मिलता है परन्तु सूत्रो, स्मृतियो तथा टीकाकारो ने कन्या के विवाह की आयु कम बतलाई है।[422] धर्मशास्त्रो मे कन्या के रजस्वला होने के पूर्व विवाह करना धार्मिक दृष्टि से उचित बतलाया। याज्ञवलक्य का कथन है कि कन्याओ का विवाह रजोदर्शन के पूर्व हो जाना चाहिए अन्यथा कन्या के सरक्षक भ्रूण हत्या के अपराधी होगे।[423] इसके विपरीत सुश्रुत ने यह मत प्रतिपादित किया है कि अल्पवय वाली कन्या से विवाह न करने का निर्देश दिया गया है तथा यह संकेत किया गया है कि ऐसी सोलह वर्ष से कम की बाला से विवाह करने पर गर्भ ठीक से नही ठहरता।[424] अलबीरूनी ने लिखा है कि हिन्दू अल्पवय में ही विवाह कर देते है। विवाह की व्यवस्था माता—पिता करते है।[425] वीसलदेव रासौ मे पता चलता है कि परमार राजकुमारी उस समय केवल बारह वर्ष की थी जब उसका विवाह चौहान नरेश बीसलदेव से हुआ।[426]

इन समस्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में कथासरित्सागर के साक्ष्यो की समीक्षा करने से स्पष्ट होता है कि एक ओर स्मृतिकारों, धर्मशास्त्रकारों एवं सूत्रकारो आदि के विचारो के प्रतिपादन से समाज में अल्पवयस्कता में विवाह के उद्धरण मिलते है तो दूसरी ओर राजकुमारियों के स्वयंवर, अनेको कामोत्तेजक युवतियो, मदोन्मत लडकियों का विवरण मिलता है जो गान्धर्व विवाह किए। ऐसे भी विवरण मिलते है जिनसे पता चलता है कि इस समय बाल विवाह प्रचलित थे। इन बाल विवाहों के प्रचलन के कारण का जहॉ तक प्रश्न है इस सदर्भ मे भिन्न—भिन्न विचार मिलते हैं। चिन्तामणि विनायक वैद्य का विचार है कि अल्पायु विवाह का कारण स्त्रियों का बौद्ध भिक्षुणी हो जाना है। जिसे रोकने के लिए बाल विवाह प्रथा थी।[427] राजवली पाण्डेय ने इसका कारण राजनैतिक बताया है।[428] इसके अलावा कौमार्य को सुरक्षित रखने के लिए अल्पायु में विवाह को प्रोत्साहन मिला। जबकि अल्टेकर का विचार है कि

कम उम्र मे कन्या का विवाह करके लोग उसके भविष्य की चिन्ता से मुक्त होने का प्रयत्न करते थे।[429] फलस्वरूप कहा जा सकता है कि पूर्व मध्यकाल मे बालविवाह के साथ ही साथ वयस्क विवाह भी होते थे। आज भी हमारे देश मे जब आधुनिक शिक्षा एव सभ्यता का अधिक प्रसार हो गया है तब भी बाल विवाह भारतीय समाज से पूर्णतया समाप्त नही हुए है। कुछ ऐसी ही स्थिति कथासरित्सागर कालीन समाज मे भी थी।

कथासरित्सागर मे विशिष्ट सामाजिक समुदाय एवं वंशागत पीढी बहिर्विवाह निर्णायक तत्व माने जाते थे। इस काल मे सगोत्रीय परिवारो के मध्य विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं थी। इसमे वर्णित है कि राजा अमील ने कहा कि अपनी कन्या कलावती को सूर्यप्रभ के लिए देता हूँ। सुनीथ का और हमारा गोत्र एक होने के कारण सुनीथ को देना उचित नही है।[430] इसी प्रकार सभी धर्मशास्त्रकारो ने समानगोत्र वाली कन्या से विवाह वर्जित बताया गया है।[431] अलबीरूनी ने लिखा है कि वे अपने विवाह नियम के अनुसार किसी सम्बन्धी की अपेक्षा किसी अपरिचित से विवाह करना उचित समझते है पति और पत्नी का सम्बन्ध जितना दूर का होता है उतना ही अच्छा रहता है अपनी वशजा अर्थात् पोती या परपोती तथा अपनी पूर्वजा दादी, माता या पर दादी दोनों प्रकार की सगोत्र स्त्रियों के साथ विवाह वर्जित है।[432] मध्यकालीन हिन्दू समाज एव कथासरित्सागर कालीन समाज में संगोत्र कन्या का प्राचीन काल की तरह विवाह के लिए निर्दिष्ट नही था। आज भी हिन्दू समाज में समान गोत्रों के मध्य विवाह का प्रचलन नहीं है।

सोमदेव ने कथा सरित्सागर मे अपने वर्ण, जाति, समूह में विवाह करने का उल्लेख किया है। धर्मशास्त्रो मे भी कहा गया है कि व्यक्ति को अपने ही जाति, वर्ण मे विवाह करना चाहिए। इसका उद्देश्य सम्भवत· अपने कुल एव रक्त की रक्षा करना था। इस काल में अनेकानेक जातियों तथा उप जातियां हो जाने से अपनी ही वर्ण, जाति तथा वर्ग में विवाह होने लगे। अपनी ही जाति वर्ण के बाहर विवाह करना अप्रतिष्ठा एवं हीनता की बात कही गई।

आलोच्य ग्रथ में सजातीय एव समान वर्णो के अलावा अन्तर्जातीय विवाहो मे अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनो प्रकार का विवरण उपलब्ध है। अनुलोम विवाहो मे अनेक उदाहरण इस ग्रथ मे मिलते है अशोकदत्त नामक ब्राह्मण को क्षत्रिय राजा ने अपनी पुत्री का विवाह किया।[433] पाटलिपुत्र के वसुदत्त नामक वैश्य ने अपनी पुत्री क्षत्रिय राजकुमार को प्रदान किया।[434] राजपुत्र तथा राक्षस कन्या के साथ विवाह का उल्लेख है।[435] वैश्य ने अपनी पुत्री कुरूप ब्राह्मण को प्रदान किया।[436] इन प्रकरणो के अलावा मिताक्षरा मे उल्लिखित है कि अनुलोम विवाह मे ब्राह्मण तीन वर्णो (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) क्षत्रिय दो (वैश्य एव शूद्र) वैश्य मात्र एक (शूद्र) वर्ण से विवाह की व्यवस्था थी।[437] ब्राह्मणवशी वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय ने चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की पुत्री प्रभावती गुप्ता से विवाह किया था। राजतरंगिणी मे उल्लिखित है कि सग्राम राज ने अपनी पुत्री लोठिका का विवाह दिद्दा मठ के अध्यक्ष प्रेम नामक ब्राह्मण से किया था।[438] अलबीरूनी के अनुसार पुरूष अपने से निम्नवर्ण की कन्या से विवाह कर सकता था।[439] किन्तु यह भी कहता है कि ब्राह्मण अपने से निम्नवर्ण की कन्या से विवाह नहीं करते थे।[440] इन उद्धरणों से यह प्रतीत होता है कि अनुलोम विवाह प्रथा सोमदेव कालीन समाज मे प्रचलित थी जिसका कि लेखक ने खुलकर वर्णन किया है। जहॉ तक अलबीरूनी के इस कथन का प्रश्न है कि ब्राह्मण अपने से निम्न वर्ण में विवाह नही करते थे इससे यह नही कहा जा सकता है कि इस प्रकार के विवाह ब्राह्मण वर्ण मे नहीं होते थे क्योंकि अलबीरूनी ने शास्त्रो में वर्णित व्यवस्थाओं का ही अधिक जिक्र किया है। ऐसी स्थिति में कहा जा सकता है कि इस समय वे समाज मे इस प्रकार के विवाहो को अधिक प्रशस्त नही माना जाता रहा होगा।

इस काल में प्रतिलोम विवाह भी प्रचलन में थे। इसे हिन्दू समाज मे अत्यन्त हीनता की दृष्टि से देखा जाता था। सोमदेव ने प्रतिलोम विवाहों के दृष्टान्तो को भी दर्शाया है। जिसमें चाण्डाल पुरूष एव राजकुमारी के मध्य विवाह का वर्णन है। यद्यपि यह कहा गया है कि यह चाण्डाल पुरूष अग्निदेव

का पुत्र था जिसको चाण्डालो ने पालन पोषण किया था।[441] इसी प्रकार मछुवा तथा राजकुमारी के विवाह का वर्णन है जिसमे राजा ने अपनी पुत्री को प्रदान किया।[442] परन्तु कथासरित्सागर के इन प्रतिलोम विवाहो मे यह बात अवश्य मिलती है कि चाण्डाल अग्निदेव के द्वारा शुद्ध किया गया जबकि मछुवा गगा क्षेत्र मे मृत्यु होने के कारण शुद्ध होकर राजा की पुत्री को प्राप्त करने के योग्य बना। इनको शुद्ध करके एव उच्च वर्ग का स्थापित करने के उपरान्त वैवाहिक सम्बन्ध कायम किए गए। यह जातियो के उच्चीकरण की प्रक्रिया देखने को मिलती है। इस समय के अन्य टीकाकारो तथा भाष्यकारो ने प्रतिलोम विवाह की निन्दा एव आलोचना किया है। अलबीरूनी ने भी ऐसे विवाह की भर्त्सना की है।[443] इस परिप्रेक्ष्य मे यदि विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि सामान्यत सभी धर्मशास्त्रकारो ने इसे निन्दनीय कहा है। सोमदेव ने भी इसकी असमादृत करते हुए भी इस प्रकार के विवाहो का वर्णन किया है जिसमे निम्नवर्ण के लोगो का शुद्धीकरण करके उच्चीकरण की प्रक्रिया के दर्शन होते है।

प्राचीन काल से हिन्दू परिवार मे एक विवाह का महत्व रहा है। प्राचीन भारत मे सामान्यत. एक ही पुरूष अथवा स्त्री से विवाह की परिपाटी रही है। आपस्तम्ब का कथन है कि धर्म प्रज्ञायुक्त पत्नी के रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह नही करना चाहिए।[444] कथासरित्सागर में भी एक पत्नीव्रता तथा एक पतित्व के दर्शन होते हैं। इसमें यह व्यवस्था सामान्य जन मे देखने को मिलती है। अनेक. ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जिसमें बहुपत्नीकता के विवरण प्राप्त होते हैं। यह बहुपत्नीकता मुख्य रूप से राजाओ, सामन्तो तथा सम्पन्न वर्गो मे दिखलाई पड़ती है। इस प्रथा के प्रचलन का प्रारम्भिक उद्देश्य सम्भवत· पुत्रों की आकाक्षा थी लेकिन आगे चलकर इस उद्देश्य का ह्रास हो गया।[445] परन्तु इस काल में इस प्रथा के अधिक प्रचलन का कारण लोगों में कामलिप्सा तथा सामन्तवादी प्रवृत्ति ही विशेष रूप से उत्तरदायी थी। इस युग मे अधिक से अधिक विवाह करना सम्मान का प्रतीक समझा जाने लगा। जिससे इस काल मे अन्तपुरों में रानियो की संख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई। कथासरित्सागर के मुख्य नायक नरवाहनदत्त एक—एक करके कई स्त्रियों से

विवाह करता है। इनके पिता उदयन ने भी स्वयं कई विवाह किए थे। इसके अलावा अनेको ऐसी कथाए मिलती है जिसमे राजाओ, सेनापतियो, सामन्तो, धनिक वर्गो तथा योद्धा ब्राह्मणो द्वारा भी एकाधिक स्त्रियो से विवाह करने का वर्णन आया है। इस ग्रथ मे राजाओ के पत्नियो की अलग–अलग काम विशेषताओ का वर्णन किया गया है। सोमदेव कालीन इस विवाह व्यवस्था की पुष्टि प्राचीन कालीन एवं तत्कालीन अन्य सक्ष्यो से होती है। ऐतरेय ब्राह्मण का कथन है कि एक पुरूष की कई भार्याए हो सकती है किन्तु एक पत्नी के कई पति नही हो सकते है।[446] बौद्ध साहित्य मे बहुविवाह के साक्ष्य मिलते है जातको मे कई पत्नियो वाले पुरूषो की कथाए विवृत है।[447] पूर्वमध्यकालीन साक्ष्यो मे चेदिराज गागेयदेव की सौ पत्नियों का उल्लेख करता है। अलबीरूनी कहता है कि पुरूष एक से लेकर चार स्त्रियो से विवाह कर सकता था।[448] सुलेमान ने लिखा है कि जो व्यक्ति जितनी चाहे उतनी पत्नियां रखे।[449] इस काल मे युद्ध मे मारे गए तथा पराजित राजाओं की पत्नियो एव स्त्रियो को अन्त पुर मे स्थान मिलता था। सपत्नियों के कारण पारिवारिक जीवन अशान्त तथा कलहपूर्ण हो जाता था।

इस समय विधवा विवाह की प्रथा मौजूद थी। इस ग्रथ मे विधवा विवाह की सूचना मिलती है।[450] यद्यपि इस विवाह को समाज मे मान्यता प्राप्त थी लेकिन समाज मे समादृत नही था। कथासरित्सागर कालीन समाज मे विवाह विच्छेद की भी विवेचना मिलती है। एक राजा की समस्त रानियां पथभ्रष्ट होने के कारण उनका त्याग कर दिया था। वैश्य की पुत्री को उसके क्षत्रिय पति ने इस लिए त्याग दिया कि वह भ्रष्ट हो चुकी थी। इस ग्रंथ में विवाह विच्छेद सामान्यत स्त्रियो के भ्रष्टता के कारण हुए थे। ऐसी स्थिति में प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज मे विवाह विच्छेद की परम्परा कायम थी जिसका प्रमुख कारण स्त्रियो का भ्रष्टाचारिणी होना था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से सूचना मिलती है कि पति पत्नी सम्बन्ध विच्छेद बिना अपराध के नहीं कर सकते थे। यही परिस्थिति इस समय भी विद्यमान थी। इस प्रकार साधारण स्थिति में विवाह विच्छेद की प्रथा मान्य नहीं थी किन्तु विशेष परिस्थितियों में इसकी अनुमति दी जाती थी।

दासप्रथा

दासता वह सस्था है, जिसमे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अधीन हो जाता है। दासप्रथा के उद्‌भव मे मूल कारण युद्ध रहा होगा, जिसमें पराजित व्यक्तियो पर विजेता का अधिकार हो जाता था, परन्तु बाद मे ऋण न चुका सकने के कारण, शर्त हार जाने पर, अकाल की अवस्था मे भरण पोषण के लिए आदि के लिए दास बन जाते थे। कथासरित्सागर मे दास–प्रथा के उल्लेख प्राप्त होते है।[451] वैदिक काल मे ही दासप्रथा चली आ रही है। यद्यपि कि कुछ लोग सिन्धु सभ्यता मे भी दास–प्रथा को मानते है लेकिन निश्चित तौर पर नही कहा जा सकता है। ऐतरेय ब्राह्मण मे उल्लेख आता है कि एक राजा ने अपना अभिषेक कराने के शुभ अवसर पर पुरोहित को दस हजार दासिया भेट मे दिए थे।[452] उपनिषदो मे दास दासियो के अनेक उदाहरण उपलब्ध है। कठोपनिषद् मे नचिकेता द्वारा यमराज से मृत्यु सम्बन्धी प्रश्न पूछने पर कहा था कि यहॉ रथ और बाजों के साथ रमणियां भी है। ऐसी स्त्रिया मनुष्यो के प्राप्ति होने योग्य नही है।[453] छान्दोग्य उपनिषद् मे 'दासी' का उल्लेख हुआ है। दीर्घ निकाय[454] और मज्झिम निकाय[455] में दास–दासियों के उल्लेख समुचित रूप से किया गया है। इसी प्रकार के अन्य उद्धरण महाभारत[456] अर्थशास्त्र[457] आदि ग्रन्थो तथा अशोक के नवे शिलालेख मे भी दासो का उल्लेख तथा उनके प्रति किए जाने वाले व्यवहार की सूचना प्रदान करते है। इन उपरोक्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्राचीन काल से चली आ रही दास प्रथा का प्रचलन कथासरित्सागर कालीन समाज में भी विद्यमान था। जिसका उल्लेख अनेक कथानकों के रूप मे उपलब्ध है।

आलोच्य ग्रंथ मे विभिन्न प्रकार की दासता का उल्लेख प्राप्त होता है। इस समय राजाओ, सामन्तों, धनी व्यक्तियों, ब्राह्मणों के यहॉ दास दासियां होती थी। ये दास दासियां गृह सम्बन्धी कार्यो में लगी रहती थी। ये परम्परागत रूप से दास एवं दासी के रूप में चले आ रहे थे। राजाओं द्वारा पुत्रियों के विवाह में दहेज के रूप में दासियां प्रदान की जाती थी, इसके अलावा पैतृक सम्पत्ति के रूप में भी दासियां होती थी जिसका उत्तराधिकारियों

के मध्य विभाजन होता था। इस सदर्भ मे एक कथा मिलती है कि मालव देश मे दो ब्राह्मण बधु रहते थे परन्तु उनके पारिवारिक सम्पत्ति का बटवारा नही हुआ था बटवारा मे अधिक भाग के लिए झगडने लगे, उन्होने वेदपाठी ब्राह्मण को निर्णायक बनाया। उसने कहा कि तुम दोनो प्रत्येक वस्तु को दो बराबर भागो मे बाट लो। मध्यस्थ की आज्ञा से उन दोनो ने मकान, खाट, बरतन, पशु आदि के दो–दो टुकडे करके बांट लिए अब उनके पिता की एक दासी रह गयी। उसको भी काटकर उन दोनो ने दो टुकडे कर डाले। इस हत्या के अपराध मे राजा ने उन दोनो का सब माल हरण करके दण्ड की आज्ञा दे दी।[458]

इस उद्धरण से स्पष्ट होता है कि सोमदेव कालीन समाज में दास–प्रथा परम्परागत रूप में विद्यमान थी। सम्पत्ति के रूप मे दास होते थे। उन पर मालिक का अधिकार होता था। इनका विभाजन भी होता था। इसके अलावा दासो के ऊपर यदि मालिक अत्याचार करता या मार डालता था तो उसे राजा की ओर से दण्ड भी दिया जाता था। इस ग्रंथ मे ऐसे भी ब्राह्मण दास–दासियों का विवरण है जो अलग–अलग लोगों के यहॉ दास के रूप मे कार्य करते थे। ये क्रमशः वैश्य तथा ब्राह्मण के यहाँ दास थे, उनके द्वारा दिए गए भोजनो से जीवन निर्वाह करते थे। इन दास–दासियों का अपना घर होता था जिसमें उनके घर की विपन्न स्थिति का उल्लेख है। इसमे उल्लेख मिलता है कि इनके घरों में मटका, चारपाई, झाडू यही सम्पत्तियॉ थी[459] जबकि धर्मशास्त्रकारो याज्ञवलक्य और नारद ने मत व्यक्त किया है कि वर्ण के आधार पर और उसके अनुसार ही व्यक्ति अपने स्वामी का दास बन सकता था। उदाहरण के लिए ब्राह्मण के क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दास हो सकते थे। क्षत्रिय के वैश्य और शूद्र, वैश्य के शूद्र। किन्तु ब्राह्मण अपने से निम्न तीनो वर्णो का दास नही हो सकता है। इसी प्रकार न क्षत्रिय अपने से निम्न वर्णो का दास बन सकता था और वैश्य अपने से निम्न वर्ण का[460] परन्तु इस काल मे उपरोक्त वर्जनाएं टूट चुकी थी। ब्राह्मण अपने से निम्नवर्ण के यहाँ दास रूप में कार्य ही नही करने लगा था अपितु उनके यहॉ का भोजन भी खाने लगा था। कथासरित्सागर के वर्णनों से प्रकट होता है कि इस समय वर्ण की

अपेक्षा वर्ग के धर्मो पर अधिक बल दिया गया कि कोई भी वर्ण का व्यक्ति कितना भी निम्न कार्य क्योनकर रहा हो धर्मपूर्वक करते हुए उच्च पद मोक्ष को प्राप्त कर सकता थ। जबकि उच्च वर्ण का होते हुए भी निम्न कार्यो से अध पतन को प्राप्त करता है, ऐसी सोच एव भावना कथासरित्सागर कालीन समाज मे दृष्टिगोचर होती है। दासियो के द्वारा भी सती प्रथा के अपनाने का उल्लेख है।[461] राजा के यहॉ दासिया चेटी होती थी वे राजमहलो मे चोरी भी करती थी।[462] दासिया (चेटिका) राजमहल मे रहकर राजा, महारानिया तथा इनके अन्य परिवार के लोगों की सेवाए करती थी, और ये उनके आदेशो के अनुसार कार्य करती थी।[463] दास या दासी स्वामी की कोई वस्तु चुराते थे तो उन्हे अगच्छेद या भारी जुर्माने की सजा दी जाती थी।[464] जातकों से भी पता चलता है कि दासो को कठोर–दण्ड दिया जाता था। एक विवरण है कि वाराणसी की एक श्रेष्ठि कन्या अपने दासो को अत्यन्त निर्ममता और क्रूरता पूर्वक पीटती थी।[465] इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि राजाओ, सामन्तों के यहॉ रहने वाले दासियो एव दासों की स्थिति उच्च थी जबकि अन्य ब्राह्मण, वैश्यो, साधारण लोगो के यहॉ रहने वाले दास–दासियों की स्थिति कष्ट प्रद थी। उन्हे अत्यधिक कार्य के साथ–साथ उनके साथ पशुवत व्यवहार भी किया जाता था।[466]

कथासरित्सागर में शर्त हारने पर दासता स्वीकार की जाती थी। इस संदर्भ मे यह वर्णन है कि कद्रू ने कहा कि सूर्य के घोड़े काले है और विनता ने कहा श्वेत। इसी बात पर दोनों ने शर्त लगा लिया कि जिसकी बात झूठी होगी, वह सच्ची बात वाली की दासता करेगी जबकि इस प्रकार के दासता की मुक्ति कठिन शर्तो से होती थी।[467] जुए अथवा शर्त मे हारा व्यक्ति जीते का दासत्व स्वीकार कर लेता था।[468] अनेक प्रकार के दास–दासियो का वर्णन मिलता है।[469] इसके अतिरिक्त एक वणिक द्वारा पाटलिपुत्र मे अनेक दासियों को क्रय किया था। क्रय के द्वारा भी दास बनाए जाते थे। इसके अतिरिक्त कोई व्यक्ति या स्त्री आश्रय प्रदान वाले का दासत्व स्वीकार कर लेता था। अशोकमाला नामक क्षत्रिय कन्या हठ वर्मा के डर के भागते–भागते बलवान सेवक वीर शर्मा का आश्रय किया और उसकी दासी होना स्वीकार किया।[470]

इस प्रकार सरक्षण देने वाले व्यक्ति का दासत्व स्वीकार करते थे। इस प्रकार की दासता का वर्णन धर्मशास्त्रकारो ने नही किया है। यद्यपि नारदस्मृति मे स्वय दासत्व ग्रहण करने वाला एक दास वर्ग का वर्णन मिलता है।[471] जो पूर्णतया मेल नही खाता है।

इसके अलावा तुर्कों के आक्रमण के कारण लोगो को पकडकर दास बनाने का उल्लेख है। जिसमे यात्री वैश्यपुत्रो को एक ताजिक द्वारा पकडकर दूसरे तानिक को बेच दिया और उसने स्वामी मुरवार तुर्क के लडके को भेट मे दिया।[472]

इन विवेचनाओ से स्पष्ट है कि कथा-सरित्सागर कालीन समाज मे दासप्रथा विद्यमान थी। जिसका सोमदेव ने यथार्थरूप मे वर्णन किया है। इन्होने शास्त्र विहित नियमो को एक किनारे करके समाज मे जैसा घटित हो रहा था, उसका सही चित्रण किया है। फलस्वरूप वास्तविक सामाजिक प्रतिबिम्बन इस विशाल ग्रंथ में हुआ है।

———

सन्दर्भ

1 एस एन प्रसाद कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ. 98

2 वही पृ 63

3 वही पृ 63

4 ऋग्वेद 10 90 2

5 ओमप्रकाश प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ. 16

6 ऋग्वेद 8,35, 16–18

7 जातक षष्ठ गा 870 पृ 201

8. फूले चाल्स एच– सोशल आर्गनाइजेशन पृ 239

9 पी एन प्रभु हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन पृ. 294

10 क स सा खड 1 पृ. 294/134–135

देवब्जिसपर्या हि कामधेनुर्मता सताम्।

कि हि न प्राप्यते तस्या शेषा सामादिवर्णनाः।।

11 तैत्तरीय संहिता 1.7 31

12 अथर्ववेद 5 19.8 15

13. जयशकर मिश्र ग्यारही सदी का भारत पृ. 102

14. क स.सा. खंड 3 पृ 292/6

15 वही, खण्ड 1 पृष्ठ 292/134

16 वही, खण्ड 1 76/25

17 वही, खण्ड 1 390/115–16

18 वही, खण्ड 2 406/157–158

19 जातक, प्रथम, पृ. 436, 447, 448

20 1 जातक, षष्ठ पृ. 208

20.2 क.स. सा., खण्ड 1 102/42

21. क स. सा. खण्ड 3, 692/19

22 अर्थशास्त्र 1 3

स्वधर्मो ब्राह्मणस्वाध्ययनमध्यापन यजन दान प्रतिगृहश्चेति।

23 मनुस्मृति– 1 88

24 याज्ञवलक्य स्मृति– 5 188

25 जयशकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 114

26 एस एन प्रसाद कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ 64–65

27 कृत्यकल्पतरू दान खण्ड, पृ 26–30

28 क स सा खण्ड 2, 970/16

29 वही खण्ड 1, 634/37

30 जातक, षष्ठ, पृ 576

31 क स सा खण्ड 1, 72/131

32 वही खण्ड 1, 70/121, 122

33 वही, खण्ड 1, 616/123

34 वही खण्ड 1, 316/108

35 1 वही खण्ड 1, 393/130

35 2 वृहत्कथामञ्जरी 5, 193

35 3 समय यात्रिका – 2,77

35.4 एस.एन. प्रसाद वही पृ. 70

36 जयशकर मिश्र प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ. 124

37 क.स सा. खण्ड 1 698/111–112

38 क स.सा खण्ड 1 830/198

39 हर्षचरित पृ. 89, 111, 121

40 1 जयशंकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ 109

40 2 कृत्यपकल्पतरू पृ. 176

40.3 क स सा. खण्ड 3, 184/200

41 क स.सा. खण्ड 1 381/45–47

42. मिश्र · प्रा भारत का इतिहास पृ 125, काय नैस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इंडिया 1, पृ 516–18, 521, 524–25।

43 जयशंकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ 109

44 जातक, तृतीय पृ 343

45 क स.सा खण्ड 2, – 98/157

46 वही खण्ड 1, पृष्ठ 341

47 अथर्ववेद 5 17 8 9

48 जयशंकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ 146

49 जातक, तृतीय पृ 342, षष्ठ, पृ 521

50 एस एन प्रसाद वही, पृ 67

51 क स.सा भाग 1, 376/11

52 'वही, खंड 1,545

53 भण्डारकर, ए इ 1911 पृ 35

54 मनुस्मृति 10.81 –

आजीवंस्तु यशोक्तेन ब्राह्मणः स्वेनकर्मणा।

जीवेत्क्षत्रिय धर्मेण स ह्यास्य प्रत्यनन्तर।।

55 वही 8 348–49

56 महाभारत– शल्यपर्व 65.42

57. कृत्यकल्पतरू पृ. 214–21

58. शब्दानुशासन, 7.1.184

आयुध जीवी ब्राह्मण एव ब्राह्मणक इत्यन्ते।

59. राजतरंगिणी 7.1480

60 क स.सा खण्ड 1, 132/15–7

61 बृहत्कथा मञ्जरी 1,5, 610, 1, 62–88

62 राजतरगिणी– 8, 1071/8, 3018/8, 1345।

63 क.स सा. खण्ड 2, 312/19

64 क.स.सा. खण्ड 2, 406/149

65. राजतरगिणी 8, 2383

66 क स.सा खण्ड 1, 376/23

67 वही खण्ड 3, 42/41

68 1 पी वा काणे, हि घ शा ,जि 2, अ 3, पृ 124–26

69 गार्हस्थ्य काण्ड पृ 193–194

70 कृत्यकल्पतरू गृहस्थकाण्ड पृ 194

71 जयशंकर मिश्र : ग्यारहवी सदी का भारत पृ. 115

72 क स सा खण्ड 3,, 42/41–42

73 जयशंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 132

74 एस एन प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ 71

75 क स सा खण्ड 2, 336/165

76 एस एन. प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ 72

77 साचो जि 2 पृ 162

78 क स सा खण्ड 3, 186/206

79 वही, खण्ड 3, 190/231–32

80 वही, खण्ड 3, 582/195–196

81. वही, खण्ड 1, 318/129–131

82 वही, खण्ड 1, 376/14,17

83. वही, खण्ड 1, 614/118–19

84. वही, भाग 1, 765/133

85 राजतरगिणी 8, 1013, 8, 2060, 7, 1229

86.1 मनुस्मृति 1. 89

86 2 विजयशंकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ. 113

86.3 सांचो, जि. 2, पृ 136

86 4 कृत्यकल्पतरू, दानकाण्ड पृ 37

86.5 गौतम धर्म सूत्र : 11.3, 11.9

87 क.स.सा 44, 26.59, 70

88. एस.एन. प्रसाद– कथा. स.सा और भा सं. पृ. 74 वासुदेव उपाध्याय सो. हि क. ना इ पृ. 58

89 सेठ, इडियन कल्चर जि 14, पृ 52—53

90 अष्टाध्यायी 4, 2, 41

91 वासुदेव उपाध्याय, सा रि क ना ई पृ 59

92 क स सा खण्ड 2, 498/114

93 एस एन प्रसाद क.स सा और भारतीय सस्कृति पृ 74

94 ए इ 19, 17

95 एस एन प्रसाद कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ 74

96 क.स.सा खण्ड 1, 128/72

97 वही, खण्ड 1, 532/125

98 वही, खण्ड 1, 90/118

99 ए ई.जि. 18, पृ 98

100 क.स.सा. खण्ड 2, 168/79,83

101 वही खण्ड 2, 168/84

102. वही खण्ड 2, 97/132

103 वही खण्ड 1, 158/211

104 वही, खण्ड 2, 132/240

105 वही, खण्ड 2, 734/108—109

106 वही, खण्ड 1, 416/59

107 एस.एन. प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति पृ. 74

108 क.स.सा. खण्ड 2, 184/194

109 वही,

110 ए ई.जि 4, धर्मपाल का खलीमपुर दानलेख।

111 वही, जिल्द 18, पृ. 98

112 इलियट, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया जि. 1, पृ. 16

113 राजतरंगिणी 7.458

114 क स सा. 38/74, द्रटव्य राजतरगिणी— 7, 458

115 वही, 2 50/51

116 एइजि 15, पृ0 308

117 एस एन प्रसाद क स सा और भारतीय सस्कृति पृ 77

118 एईजि 2, पृ 4

119 एस एन. प्रसाद कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ 78

120 एइजि 14, पृ 218

121 अर्थशास्त्र–2, 1, द्रटव्य काणे. हि घ शा, जि 3, पृ 152।

122 एइजि, 16, पृ 275

123 एम एन प्रसाद · कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ 74

124 गौतम धर्मसूत्र 7 26

125 मनुस्मृति 10 83

126 कृत्यकल्पतरू, दानकांड, पृ 37

127 जयशकर मिश्र . प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 138

128 अर्थशा 3 7

129 शाकुन्तलम् अंग, मालविकाग्निमित्रम् 1 7

130 बौधायन धर्मसूत्र 1.11 4

131. जयशंकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ 117

132 ज ए जनरल 1865, इब्नखुर्दादब्द की जीवनी के लिए दृष्टव्य।

133 जयशकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 140

134 क स.सा खण्ड 1, 78/32, 39

135. वही, खण्ड 1, 76/27

136 वही, खण्ड 1, 78/33 39

137. वही, खण्ड 1, 42/43

138 वही, खण्ड 2, 592/190–191

139. वही, खण्ड 2, 198, 200/71, 76, 92

140. डॉ. उदयनारायण राय, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगरीय जीवन पृ 16

141 क स सा. खण्ड 1, 210/93

142 वही खण्ड 2, 50/48–51

143 क स.सागर वैश्यो को ताजिक द्वारा दास बनाने का सदर्भ

144 डा उदयनारायण राय वही पृ 16

145 क स सा खण्ड 2, 640/38

146 वासुदेव शरण अग्रवाल, सार्थवाह, भूमिका, पृष्ठ 2, द्रष्टव्य डा पी के केसरवानी – प्राचीन भारत मे वैश्य समुदाय की स्थिति और उसकी भूमिका पृ 185

147 कुबलयमाला, भूमिका पृ 91

148 यशस्तिलक पृ 1/345

149 क.स सा खण्ड 1, 176/27

150 पी के. केसरवानी प्राचीन भारत मे वैश्य समुदाय की स्थिति आर उसकी भूमिका पृ 182

151 शब्दानुशासन 6/4/158, द्रटव्य उपरोक्त

152 वही पृ 6/4/158

153 क.स.सा खण्ड 1, 672/117

154 वही, खण्ड 1, 674/135

155 वही, खण्ड 1, 670/105

156 वही, बहुशुल्कभयत्यक्तमार्गान्तर जनाश्रितम्।

157 वही, खण्ड 2, 202/105

158 वही, 13/164

159. वही खण्ड 2, 642/61

160 वही 571/19

161 वही खण्ड 2, 642/57

162 वही खण्ड 643/61

163 वही, खण्ड 2, 642/61

164 वही, खण्ड 3, 1142/105, खण्ड 1 208/74

165. वही, 61/113

166 एस.एन प्रसाद कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ 80

167 क स सा 61/4

168 चाओ–जु–कुआ–पृ 78, द्रष्टव्य डॉ पी के केसरवानी प्राचीन भारत मे वैश्य समुदाय की स्थिति और उसकी भूमिका पृ 207

169 जे आर ए.एस बी, 1935 खण्ड 1 पृ 5, द्रष्टव्य डॉ. पी के. केसरवानी वही, पृ 206

170 क स सा खण्ड 2 198/75

171. वही 29/106

172 वही 29/107, 108

173 वही 29/107/108

174 वही 29/119

175 एस एन. प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ 82

176 क.स.सा खण्ड 1, 42, 44/ 44, 45, 72

177 वही खण्ड 3, 418/5

178 मनुस्मृति, 10, 121

179 वायुपुराण, 2.2.90

180 ब्राह्मण्ड पुराण 3 10.96

181 एस.एन. प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति पृ 87

182 गृहस्थकाण्ड, पृ. 427

183. ज.ए.जन 1865, इब्नखुर्दाब्द की जीवनी के लिए द्रष्टव्य

184 काणे, वही, नि 2, खण्ड 1, पृ. 154–64

185 मनुस्मृति 10.100

186 1 वाटर्स, जि. 1 पृ. 168

186.2 क स.सा. खण्ड 1, 600/20

187. क स.सा. खण्ड 2, 500/129–30, 140, 141

188. मेघातिथि 3, 153.8, 417

189 गृहस्थकाण्ड, पृ 86

190 क.स सा खण्ड 1, 600/19,20

191 एस.एन प्रसाद कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ 90

192 क स सा ; खण्ड 1, 616/123-25

193 काणे, वही, जि 2, पृ 170

194 अपराजित पृच्छा 1177—79

195 एस एन प्रसाद कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ. 64

196 राजतरगिणी 8, 2407

197 मिताक्षरा, याज्ञवलक्यस्मृति 1, 335 कायस्थ गणका लेखकाश्च।

198 एपि ई. 15, दामोदरपुर ताम्रपत्र।

199 क.स सा खण्ड 2 170/90

200 एपि इ. 11, पृ 53

201 नैषधचरित, 14, 66

202 एपि इ. 28, 100

203 मनु 8 51—52

204. जयशकर मिश्र प्रचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 198, स्टडीज इन द सोसाइटी ऐड ऐडमिनिस्ट्रेटिव ऑफ एशियन्ट एण्ड मेडिकल इंडिया पृ 158—59

205. एपि. इ. 14, पृ. 14, विरचित शुभ कर्मान्नाम वंशः।

206. राजतरंगिणी — 4, 621, 29, 30, 5, 175, 180—181, 184

207. एस.एन. प्रसाद कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति पृ 85

208 क स सा खण्ड 3, 149/323— कायस्थो हि करोत्येको व्यापारं ब्रह्मरूद्रयोः लिखत्युत्पुंसयति च क्षणाद्विश्वं करस्थितम्।।

209. एपि ई. 19, 209 एव 213

210 वही 1, 123

211. वही 1, 147

212 एपि ई., पृ. 68

213 रामशरण शर्मा : पूर्वमध्यकालीन भारत में सामाजिक परिवर्तन पृ 23

214 वही पृ 20

215 महाभारत, वनपर्व 80, 31–33

216 हिस्ट्री ऑफ बगाल 1, पृ 567

217 क स सा खण्ड 1, 676/154

218 नेमिचन्द्रशास्त्री, आदि पुराण मे प्रतिपादित भारत। दृष्टव्य सोमदेव सूरि के ग्रथो मे प्रतिबिम्बित डॉ पी के केसरवानी।

219 यशस्तिलक– पूपृ 56

220 जातक तृतीय पृ 149

221 क स सा खण्ड 2, 804/17–18

222 यशस्तिलक उत्तरार्द्ध, पृ 220

223 जातक, चतुर्थ, पृ 250

224 क.स सा खण्ड 1, 82/73

225 वही, खण्ड 1, 426/134

226 जातक, द्वितीय 2, पृ 79

227 क.स सा, खण्ड 1, 736/148–149

228. वही, खण्ड 1, 736/137

229. समयमात्रिका, 1, 8

230. क.स.सा, खण्ड 2, 192/22, 864/104

231. जातक प्रथम पृ. 247

232. क.स.सा, खण्ड 2, 852/19

233. जयशकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ 122

234. क.स.सा., खण्ड 2, 497/99

235 जयशकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ 125

236. क.स.सा. से

237. मनुस्मृति 9, 292

238. विष्णु पुराण 1,15,120

239. क.स सा. खण्ड 2, 50/56 तत्र चाग्रागताः केचितमूचु काष्ठभारिका·।

240 वही, खण्ड 2, 122/176–78

इत्युक्त्वा काण्ठिक चात्र दार्वर्य वनमागतम्।

241 वही, खण्ड 1, 16/35

242 यशस्तिणक उ, पृ 228

243 क स सा, खण्ड 1, 16/35

244 क.स सा, खण्ड 1, 616/126

245 खण्ड 2, 742/24–25

246 जयशकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ 124

247. क स सा, खण्ड 1, 128/75

248 वही, खण्ड 1, 128/76

249 वही, खण्ड 1, 176/45–46

250 वही, खण्ड 1, 176/45–46

251. वही, खण्ड 2, 744/26–27

प्रविशत्विति राज्ञोक्ते प्रतिहार निदेशत ।

भिल्लकन्या नृपास्थानप्राङ्गण प्रविवेश सा।।

252. वही, खण्ड 2 742/24–25

तमेकदास्थानगत प्रतिहारो व्यजिज्ञपत्।

देवमुक्तालता नाम निषादाधिपकन्यका।।

253. द्वयाश्रय महाकाव्य 1, 179

254 क.स सा, खण्ड 1, 518/33–36

255 मनु, 10.48

256 जयशंकर मिश्र . प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ. 178

257 महाभारत, अनुशासनपर्व, 4,8,5, जातक, द्वितीय, पृ 26

258. क.स.सा., खण्ड 1, 410/11, खण्ड 2, 858/66

259. क.स.सा., खण्ड 1, 118/24,25, 150/153

260 वही, खण्ड 2, 660/183

261 वही, खण्ड 2, 660/190

262 वही, खण्ड 1, 211/96, अनुवादक की पाद टिप्पणी खण्ड 1, पृ 211

263 वही, खण्ड 1, 502/152

264 वही, खण्ड खण्ड 1, 616/123–125

265 मनुस्मृति, 10 12

266 छान्दोग्य उपनिषद्, 5 10 7

267 जातक, 4, पृ 323

268 वही 4, पृ 376

269. क स.सा, खण्ड 3, 898/183

270. गाइल्स, पृ 21

271. कादम्बरी पृ. 21, 25

272 देशीनाम माला 2, 77, यशस्तिलक पृ 281

273 जयशंकर मिश्र ग्यारही सदी का भारत पृ 127

274 वाटर्स 1, पृ 147

275. क स.सा, खण्ड 1, 616/123–125

276 वही, खण्ड 3, 898/181

277. वही, खण्ड 2, 48/36

278. वही

279 वही खण्ड 2, 48/36, 37, 38–40, 50/51

280. एस.एन. प्रसाद कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ. 98–99

281 सांचो जि. 2 पृ., 262–63

282. काणे, वही, खण्ड 1, पृ. 264–65

283. चारी आश्रमो का क.स.सा

284 वासुदेव अग्रवाल – पाणिनि कालीन भारत पृ 81

285. मनुस्मृति 6.87 ब्रह्मचारी, गृहस्थश्च वानप्रस्थी यतिस्तथा। एते गृहस्थ प्रभ वाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः।।

286. ग्यारहवी सदी का भारत पृ. 130

287 काणे, वही, खण्ड 1, पृ 264–265

288 पी एच बाल्वाकर, हिन्दू सोशल इन्सटक्शन पृ 64 द्रष्टव्य पी के केसरवानी सोमदेव सूरी के ग्रथो मे प्रतिबिम्बित भारतीय समाज एव सस्कृति का आलोचनात्मक अनुशीलन।

289 क स सागर खण्ड 1, 22/74

290 वही खण्ड 1 22/77

291 वही खण्ड 1, 22/78

292 वही खण्ड 1 22/79

293 जयशकर मिश्र . प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 226

294. काशिका 8 3 86 द्रष्टव्य वही पृ 226

295 गौ गृ सू 1–3 4–5,8

296 आदि पुराण 38/104–112

297. वही 38/115–117

298 अलबीरूनीज इण्डिया, जि. 2, पृ 131

299 बौ गृ सू. 1.2, 21–22, 25

300 क स.सा. खण्ड 1 390/117/125

301 वही, खण्ड 1 36/14

302 वही खण्ड 1, 48/93

303 वही खण्ड 1, 502/152

304 मनुस्मृति– 3.78

305 क.स सा. खण्ड 1, 502/156

306 नीतिवाक्यामृतम् 5.19

307. यशस्तिलक 8.416

308 क स.सा , खण्ड 1 502/151

309 महाभारत, शान्तिपर्व 12 6

310 वही 12.18

311 मनुस्मृति 3.69

336 महाभारत, उद्योगपर्व, 8.18

337 मनुस्मृति, 2 224

338 क स सा , खण्ड 1, 222/179—180

339 वही, खण्ड 1, 78/27

340 वही, खण्ड 2, 202/98

341 मनुस्मृति 4. 176

342 नीतिवाक्यामृत 3/1

343 अर्थशास्त्र 1 7

344 क स सा खण्ड 2, 454/31

345 वही, खण्ड, 454/336

346 जयशकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ. 227

347 नीतिवाक्यामृत 3/7

348 क.स सा., खण्ड 1, 40/29, 30, 42/46

349. नीतिवाक्यामृत 3/13

350 मत्स्यपुराण 241.48 —

धर्महीनस्थ कायार्थो वन्ध्यासुतसमौ धुव्रम् ।

351 क स सा., खण्ड 1, 606/53

352 वही, खण्ड 606/51—52, 604/49

353 वही, खण्ड 1, 604/40

354 वही, खण्ड 2, 76/242

355 वही, खण्ड 2, 268/81

356 मनुस्मृति— 6.60

357 जयशंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ. 283

358 ओमप्रकाशः प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 118

359 मनुस्मृति 9, 45

360 वही 9, 26

361 क.स.सा., खण्ड 1, 502/151

362 जयशकर मिश्र प्राचीन भारत का सामाजिक इति पृ 310

363 मनुस्मृति 3/20,

364 नीतिवाक्यामृत 31/2

365 याज्ञवलक्य स्मृति · 3/5

366 क स सा , खण्ड 1, 38/18

367. मनुस्मृति 9/28

368 ऋग्वेद 8/30

369. अलबीरूनीज इण्डिया, खण्ड 4, पृ 155

370 मनुस्मृति 3/25

371 याज्ञवलक्य स्मृति 1/58–61

372 क स सा., खण्ड 1, 124/41

373 क स.सा खण्ड 2, 470/146 यशस्तिलम उ पृ 337–39

374. यशस्तिलक उ., पृ 337–39

375. क स सा., 2, 50/141, खण्ड 3, 594/118

376 वही, खण्ड 3, 676/171, खण्ड, 2, 316/9

377. वही, खण्ड 2, 614/94

378 वही, खण्ड 1, 744/3

379 वही, खण्ड 3, 332/27

380 वही, खण्ड 3, 678/190

381. वही, खण्ड 3 678/191

382. वही, खण्ड 3, 678/193

383. वही, खण्ड 1, 268/75–76

सनाथं पतिपत्नीभि कौतुकागरिमा ययौ।

384. वही, खण्ड 2, 248/133

385. वही, खण्ड 1, 154/85

386. वही, खण्ड 2, 246/131–132

387. वही, खण्ड 2 240/79

388 वही, खण्ड 3 730/49–50

389 वही, खण्ड 3, 656/18

390 वही, 668/111

391 अलबीरूनीज इण्डिया, खण्ड 2, पृष्ठ 155

392 क स सा, खण्ड 3, 1032/55

393 आ घ सूत्र 2 20

मिथ कामात्सावर्तेत सा गान्धर्वा ।

गौ ध सूत्र 1 4 8 इच्छत्या स्वय संयोगो गान्धर्व ।

394 नीतिवाक्यामृत 31 9

395 क स सा खण्ड 1, 108/82

396 वही, खण्ड 1, 234/67

397 जातक 1, पृ 300

398 भवभूति : मालती माधव अक 2

399 क.स.सा, खण्ड 2, 286/216

400 मनुस्मृति– 3 23

401 कामसूत्र 3, 5, 30

402 क.स सा. खण्ड 1, 446/133

403 क.स.सा खण्ड 1, 198/9

404 आर.एस त्रिपाठी : हिन्दी ऑफ कन्नौज पृ 325–26

405 क.स.सा खण्ड 2, 236/56, 57, 238/64

406 महाभारत 121, 21–23

407 जातक 1, पृ 297, 5, पृ 425–26

408 क.स सा, खण्ड 2, 266/74

409 वही, खण्ड 2, 672/277

410 पद्मपुराण 110/2

411 यशस्तिलक उत्त (हि.टी) 63/8

412 क.स.सा., खण्ड 2, 106/67, 68, 108/82

413 रामायण 1 66 67

414 महाभारत

415 धम्मपद टीका पृ 278—79

416 रघुवश 6—7

417 विक्रमाक देव चरित सर्ग 9, 130, 148

418 क स सा. खंड 2 486/37-38

419 वही, खण्ड 1, 627/180

420 वही, खंड1,486/80

421 वही

422 हरिदत्त वेदालंकार, हिन्दू विवाह का सक्षिप्त इतिहास, पृ. 306—335

423 याज्ञवलक्य स्मृति 1/13

424 सुश्रुत 10 54.55

425 अलबीरूनीज इडिया, जि. 2, पृ 155

426 बीसल देवरासौ 2—7

427 सी वी. वैध हिन्दू मिडिवल इडिया खण्ड 3 बुक 8 से 2

428 राजबली पाण्डेय · हिन्दी साहित्य की पीठिका, जि. 1, पृ 19

429. अल्टेकर, पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ. 59—61

430 क.स सा. खण्ड 2, 284/195—196 सनीथस्यैक गोत्रत्वाद्वातु चैषां न युज्यते ।

431. गौ. ध. सू 4/2 आ ध. सूत्र 2/15

432 अलबीरूनीज इण्डिया खण्ड 2, पृ 155

433 क स सा खण्ड 1 538/170

434 वही, खण्ड 1, 416/59

435 वही, खण्ड 2, 120/159

436. वही, खंड 2, 486/36

437 मिता 1—4

438 राजतरगिणी 7 11—12

439 जयशकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ 141

440 वही, पृ 143

441 क स.सा खण्ड 3, 888/108

442 वही, खण्ड 1 894/144

443 जयशकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ. 143

444 आ.ध सूत्र 2 5 12

445. डी सी सरकार, सम आस्पेक्ट्स ऑफ दी अर्लियेस्ट सोशल हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ 88

446. ऐतरेय ब्राह्मण 12 11

447. जातक, 2, पृ 138

448. ग्यारहवी सदी का भारत पृ 146

449. सिलसिल तुत तवारीख, पृ 54

450. क स.सा , खण्ड 2, 980/84

451. वही खण्ड 1, 454/182

452. ऐतरेय ब्राह्मण 39.8

453. कठोपनिषद् 1 1 25

454. दीर्घ निकाय 1.64

455. मज्झिमनिकाय, 1 452

456. महाभारत सभापर्व 52.45—46

457 अर्थशास्त्र 3 13

458. क स.सा., खण्ड 2, 874/173—74

459. वही खण्ड 1, 610/87—91

460. अर्थशास्त्र 3.13

461. वही खण्ड 1, 612/98

462. वही खण्ड 1, 698/114

463. वही, खण्ड 1, 734/128

464 ओमप्रकाश, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ. 168

465 तक्क, जातक पृ 63

466 अगुत्तर निकाय, 2, पृ 207–8

467 क स सा., खण्ड 1, 454/182, 456/196

468 नारद स्मृति, 5 38–39

469 त्रिषष्ठिशलाकापुरूषचरित 3 248

470 क स सा , खण्ड 2, 488/43

471 नारद स्मृति 5, 38–39

472 क.स सा., खण्ड 2, 48/36–37

स्त्री—दशा

किसी देश के सास्कृतिक विकास के अध्ययन मे तत्कालीन समाज मे स्त्रियो की स्थिति से पर्याप्त प्रकाश पडता है। क्योकि किसी राष्ट्र की सभ्यता एव सस्कृति के निर्माण तथा विकास मे नारी का योगदान महत्वपूर्ण होता है। ऐसी स्थिति मे भारतीय स्त्रियो का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसी योगदान के कारण प्राचीन काल से ही उनका सम्मान एव आदर आर्दशात्मक एव मर्यादायुक्त था। अथर्ववेद मे उसे गृह की सम्राज्ञी के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया है तथा घर के अन्य सदस्यो को उसके शासन मे रहने के लिए निर्देशित किया गया।[1] भारतीय धर्मशास्त्रकारो ने नारी को परम इष्ट की श्रेणी मे रखा। इसी सदर्भ मे मनु का कथन है कि जहॉ नारी की उपासना होती है वहॉ देवता निवास करते है।[2] शतपथ ब्राह्मण की मान्यता थी कि पुरुष स्त्री के बिना अकेला और अधूरा है। उसे पुरुष का शरीरार्ध माना गया है।[3] स्त्रियों की दशा के संदर्भ मे यह सिक्के का एक पहलू है जब कि दूसरी ओर उत्तर वैदिक काल से इनकी दशा मे क्रमिक ह्रास दिखलाई पडने लगता है। पूर्वमध्यकाल तक आते—आते स्त्रियो की दशा मे पर्याप्त परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

कथासरित्सागर कालीन नारी समाज में अपना विशिष्ट सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक स्थान रखती थी। कथासरित्सागर मे स्त्रियो की स्थिति का पर्याप्त चित्रण मिलता है। इसकी अधिकांश कहानियो मे स्त्रियो को ही आधार बनाकर सोमदेव ने कथा को गढ़ा है। इसमें पतिव्रता स्त्रियो राजकुमारियो, कुट्टनियों, पथभ्रष्ट रानियो, वेश्याओ, यक्षणियो, देवदासियों, भील एवं चाण्डालादि कन्याओ का वर्णन समाया हुआ है।

कथासरित्सागर कालीन समाज मे कन्या अपना बचपन माता—पिता तथा भाई के सरक्षण में व्यतीत करती थी। कन्या का जन्म घर में पुत्र की

अपेक्षा प्रसन्नता का सूचक नही था। एक राजा के पुत्री रत्न की प्राप्ति पर एक बूढे ब्राह्मण ने कहा कि कन्या रत्न के जन्म मे से क्यो इतना सन्तप्त हो रहे हो।[4] कन्याएँ कुल के अलकार रूप होने पर भी महान लोगो के लिए भी अत्यन्त दुःखदायिनी होती है।[5] अथर्ववेद मे गर्भस्थ कन्या को पुत्र मे परिवर्तित कराने के लिए कई मत्र एव विधि-विधान दिए हुए है।[6] अलबीरूनी ने भी लिखा है कि, परिवार मे कन्या के आगमन को खुशी का प्रतीक माना जाता था।[6ए] सामान्यत. इस समय कन्याओ के जन्म से पुत्र को ज्यादा महत्व प्रदान किया जाता था। परन्तु इस ग्रथ मे ऐसे भी उद्धरण मौजूद है जिनसे पता चलता है कि पुत्रियो के जन्म को भी महत्व दिया जाता था। इसमे वर्णन है कि राजा हेम प्रभु ने पुत्री के जन्म लेने पर उस कन्या का जन्मोत्सव मनाया।[7] इसके अलावा यह भी वर्णन है कि कन्याएँ तो पुत्र से उत्तम होती है, और इहलोक तथा परलोक मे भी कल्याण देने वाली होती है। यदि भोज आदि राजा, कुन्ती आदि कन्याओ के कारण ही दुःसह दुर्वासा आदि के क्रोध से बच सके थे।[8] इस काल मे पुत्रियों को भी पर्याप्त महत्व दिया जाता था। यदि पुत्री जन्म लेती थी तो उसका लालन-पालन तथा उत्सव आदि भी पुत्रो के समान ही होता था। महावेस्सन्तर जातक से भी पता चलता है कि कृष्णार्जिना अपने माता-पिता से अपने भाई जालि के समान ही प्रेम पाती थी। गाथाओ में माता माद्री अपने दोनो बच्चो कृष्णार्जिना और जालिपुत्र दोनों के लिए समान रूप से तडप रही है। बचपन में जिस परिवार मे पुत्र नही होता था, वहाँ कन्या पुत्र से अधिक लाड़ प्यार पाती थी।[9] एक अन्य विवरण है कि महानारद कश्यप जातक के अग नामक राजा की अग्रमहिषी से उत्पन्न केवल एक कन्या थी। अन्य रानियॉ बॉझ थी। राजा उसके लिए नाना प्रकार के पुष्पों के 25 टोकरे और सूक्ष्म वस्त्र रोज भेजता था कि वह इनसे अपने आपकों अलंकृत करे। दान देने के लिए प्रतिपक्ष एक हजार कार्षापण भेजता था। अतः स्पष्ट है कि जिन परिवारों मे पुत्र नही होता था वहॉ कन्या लड़के से अधिक प्यारी एवं सम्मानित होती थी। बृहदारण्यक उपनिषद मे उल्लिखित है कि विदुषी तथा आयुष्मती पुत्रियो को पाने के लिए घी में तिल और चावल पकाकर खाना श्रेयस्कर है।[10] कन्या की उत्पत्ति के बाद

उसके माता–पिता का यह कत्तर्व्य हो जाता था कि वह उसे शिक्षित करे तथा उसके लिए योग्य वर का चयन करे और जब तक वे ऐसा नही कर पाते थे तब तक उन्हे चिन्ता बनी रहती थी।

कथासरित्सागर से विदित होता है कि इस काल मे पुत्रियो को शिक्षा, दीक्षा आदि भी प्रदान की जाती थी। बालिकाओ के लिए विद्यालय नही थे इन्हे घर पर ही शिक्षा दी जाती थी। इन्हे अक्षर ज्ञान के साथ–साथ संगीत की शिक्षा दी जाती थी। राजाओं के यहॉ राजकुमारियो आदि को सगीत सिखाने के लिए संगीत शालाएँ होती थी। इसमें वर्णन मिलता है कि उदयन चण्डमहासेन की पुत्री वासवदत्ता को सगीत शाला मे शिक्षा देता था। जिसमे उदयन द्वारा वासवदत्ता को वीणा बजाने की शिक्षा देने का उल्लेख है।[11] दर्दुरक नामक सगीताचार्य के हसावली नामक राजकुमारी को नृत्य की शिक्षा प्रदान करने का वर्णन है जिसने राजा के सामने तबले की थाप पर नृत्य का प्रदर्शन किया।[12] सोमदेव ने नृत्य, वाद्य आदि संगीत कलाओं के साथ–साथ उच्चकोटि की विदुषी कन्याओं का वर्णन सोमदेव ने किया है जो तर्कशास्त्र मे निपुण थी। जिसने अनेक विद्वानों को शास्त्रार्थो मे पराजित किया था।[13] यह समस्त प्रकार की विद्याओं की ज्ञाता थी।[14] इस प्रकार की जानकारी जातकों से भी मिलती है। इसमें बहुत सी तरूण शिक्षित कन्याओ क उल्लेख हैं। महाउम्मग जातक की रानी उदुम्बरा देवी अप्सरा–सदृश्य सुन्दर और लिखना पढ़ना जानती थी तथा दूसरी नारीपात्र अमरादेवी व्यवहार कुशल और विदुषी नारी थी। अमरादेवी पण्डित द्वारा पूछे गए मौन हस्त मुद्रा प्रश्न का सही उत्तर देती थी तथा अन्य प्रश्नों का जवाब अप्रत्यक्ष रूप से उपमाओं द्वारा देती थी।[15] हर्षचरित मे भी वर्णन आता है कि राजश्री नृत्य आदि मे विदग्ध सखियों के बीच सकल कलाओ का प्रतिदिन अधिकाधिक परिचय प्राप्त करती हुई शनैःशनै बढ रही थी।[16] कविवर राजशेखर की पत्नी अवन्ति सुन्दरी, उत्कृष्ट कवयित्री और टीकाकार थी।[17] मडन मिश्र और शंकर के बीच हुए शास्त्रार्थ की निर्णायिका मंडन मिश्र की विदुषी पत्नी थी जो तर्क, मीमासा, वेदान्त और साहित्य में पूर्ण पारंगत थी।[18] इन साक्ष्यों आदि से प्रकट होता है कि कथासरित्सागर कालीन समाज

में कन्याओ का शिक्षण संस्थाओ तथा गुरुकुलो मे जाकर ज्ञान प्राप्त करना उस के लिए अतीत की बात हो गयी थी। जैसा कि सस्कार प्रकाश से भी प्रकट होता है कि वह केवल माता, पिता, भाई, बन्धु आदि से अपने घर पर ही शिक्षा प्राप्त कर सकती थी। इस प्रकार से इस काल मे सामान्य कन्याओ के मध्य शिक्षा का प्रसार अवरूद्ध हो गया था। परन्तु उच्च घरो, राजाओ तथा सामन्तो के घरो की कन्याओ को संगीत, नृत्य एवं चित्रकला तथा अन्य ललित कलाओ की शिक्षा दी जाती थी। इसमें प्रवीण अनेक लडकियो के उल्लेख है। सोमदेव भट्ट ने लिखा है कि, वावसदत्ता कभी न मुरझाने वाली माला बनाने मे सिद्धहस्त थी।[19] इस समय नाचने गाने मे कुशल होना नारियो का सद्गुण माना जाता था। इसके अलावा यह भी प्रतीत होता है कि खिलौने बनाना, चित्रकारी करना, सिलाई, कढाई, बुनाई आदि की शिक्षा लडकियो को दी जाती रही होगी। इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि जनसामान्य में नारी शिक्षा का अभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि उच्च परिवारो की कन्याओं को शिक्षा दी जाती थी। कुछ ऐसी भी विदुषी नारियॉ थी जो अपने ज्ञान से चमत्कृत कर देती थी, परन्तु ऐसी लडकियों की सख्या अत्यल्प थी।

कथासरित्सागर में विषकन्याओं[20] का वर्णन मिलता है। विषकन्याऍ दो प्रकार की होती थीं एक ऐसे लग्न या नक्षत्र मे उत्पन्न होती थी कि, जिनके सहवास से व्यक्ति तुरन्त मर जाता था, दूसरी प्रारम्भ से ही विष खिलाकर कृत्रिम विषकन्याऍ बनायी जाती थीं, जिनके सम्पर्क मे आते ही पुरुष की मृत्यु हो जाती थीं।[21] इस समय कन्याओ को देव मदिरों में भी अर्पित किया जाता था। उन्मादिनी की कथा में विवरण मिलता है कि इसका पति एवं राजा का सेनापति मंदिर मे छोड़ने की बात कहता है जहॉ से राजा उन्मादिनी को अपनी पत्नी के रूप मे स्वीकार कर लें। परन्तु राजा ने इसको अस्वीकार कर दिया।[22] एक वैश्य कन्या की सुन्दरता देखकर एक धूर्त साधु उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। परन्तु उसे वैश्य कन्या के स्थान पर बदर की प्राप्ति होती है। इससे साधु की सुन्दर कन्या प्राप्त करने की दुष्टता प्रमाणित होती है।[23] कथासरित्सागर में कुछ ऐसी वैश्य कन्याओं का वर्णन है जो घर के नौकरो के साथ रमण

करती थी। एक वैश्य कन्या का वर्णन मिलता है जो कि एक ब्राह्मण पुरुष के साथ भाग गई।[24] सोमदेव के बेवाक वर्णनो से स्पष्ट है कि, एक ओर जहाँ सुन्दर कन्याओ के ऊपर समाज के धूर्त व्यक्तियों की दृष्टि लगी रहती थी, वही दूसरी ओर कुछ ऐसी समाज मे कन्याएँ थी जो विवाह पूर्व ही प्रणय व्यापार मे लिप्त रहती थी। यहाँ तक कि वे अपने पुरुष मित्र के साथ पितृ गृह से भी चुपके से भाग जाती थी। कथासरित्सागर मे जगली जातियों की कन्याओ का मनोरम वर्णन मिलता है। जो किसी नागर बालिकाओ से सुन्दरता मे कम नही होती थी। सुमना नामक राजा के यहाँ भिल्ल कन्या के राजभवन के ऑगन मे पहुँचने का वर्णन है जिसके आश्चर्यजनक रूप को देखकर सभी सभासद सोचने लगे कि यह मानुषी अथवा दिव्य स्त्री है। इस तरह से लेखक ने भिल्ल आदि कन्याओ का भी वर्णन किया है।

नारी के जीवन का मुख्य पक्ष उसका गृहस्थ धर्म था। राजा, सामन्त आदि अपनी कन्याओं के विवाह के लिए चिन्तित रहते थे। कुछ स्थानो पर कन्याओ का विवाह अल्पकाल में करने का सिद्धात प्रतिपादित किया गया है। कहा गया है कि ऋतुमती होने पर उसके बंधु बांधव अधोगति को प्राप्त होते हैं। यदि वह कन्या वृषली हो जाती थी तो उसका पति वृषलीपति कहलाता था।[25] लेकिन अन्य अनेक विवरणों से पता चलता है कि कन्याओं का विवाह वयस्क हो जाने पर भी होता था। ऐसे उदाहारण मिलते हैं जिसमें कन्याएँ स्वय पतियो को चुनती थी यही नहीं, वे गान्धर्व विवाह भी करती थी। उनकी इच्छा के विपरीत पिता द्वारा विवाह कर देने पर कभी—कभी दूसरे पुरुषों का आश्रय भी लेती थी, जो उनके वयस्कता को प्रमाणित करता है। इससे सामान्यतः यह प्रतीत होता है कि तत्कालीन समाज मे अल्प आयु तथा वयस्क दोनों अवस्थाओं में विवाह किए जाते थे।

सोमदेव भट्ट ने समाज में ऐसी भी स्त्रियों का वर्णन किया है जो पति की अनुपस्थिति मे सच्चरित्रता और सदाचरण के साथ रहती थी जो विदेश गए पति द्वारा की गई व्यवस्था पर अपना भरण—पोषण करती थीं। पुरुष कभी—कभी व्यापार आदि कार्यो से दूसरे प्रदेशो में जाता था, जहाँ उसे कई वर्ष

लग जाते थे। ऐसी स्थिति मे पुरुष अपनी पत्नी की जीविका आदि व्यवस्था करके परदेश गमन करता था। कथासरित्सागर के अध्ययन से पता चलता है कि ऐसी पोषित भृर्तका स्त्री पर समाज के गन्दे लोगो की दृष्टि लगी रहती थी जो अपने चतुराई एवं शुद्ध आचरण से अपनी रक्षा करती थी। उपकोशा की कथा से पता चलता है कि उसके पति को तपस्या पर चले जाने के बाद मॅगा स्नान के दौरान उसके नयन–मधुर आकृति को राजपुरोहित, नगरपाल तथा युवराज के मत्री ने देखा। उसे देखकर तीनो कामबाण के लक्ष्य बन गए। तद् उपरान्त बनिये ने कहा कि यदि तुम मेरी सेवा करो तो मैं तुम्हारे पति का रखा हुआ धन तुम्हे दे दूॅगा।[26] ऐसी ही कथा देवस्मिता वैश्य पत्नी की मिलती है। जिसके सच्चरित्रता को नष्ट करने के लिए वैश्य पुत्रों ने दुष्ट परिव्राजिका का आश्रय लिया। परन्तु देवस्मिता अपने बुद्धि बल से अपने सतीत्व की रक्षा की।[27] इस प्रकार सोमदेव ने पति की अनुपस्थिति मे पोषित पतिका के अत्यन्त कठिन एवं संघर्षपूर्ण जीवन का उल्लेख किया है। प्राचीन धर्मशास्त्रकारो ने भी ऐसी स्त्री के लिए कतिपय नियम निर्धारित किए हैं। याज्ञवलक्य का मत है कि, पोषित पतिका को क्रीड़ा, शरीर संस्कार, समाजोत्सव दर्शन, हास्य और दूसरे के घर सवारी से जाना त्याग देना चाहिए।[28] वेद व्यास का भी कथन है कि पति के प्रवासी होने पर पतिव्रता स्त्री विवर्णा, दीन मुखवाली, शरीर के संस्कारों से रहित और निराहार होकर अपने को शोषित करती थी।[29]

लेखक ने ऐसी स्त्रियों का वर्णन किया है जिन्हांने अपने पतियों को मृत्यु दण्ड से मुक्ति दिलाई। एक सेठ समुद्रगुप्त नामक बनिये का उल्लेख है जो कि मणिभद्र एक महायक्ष के मंदिर मे दूसरे स्त्री के साथ कोतवाल के द्वारा पकडा गया। जिसे सुबह राज्य सभा ले जाकर मार डालने का दण्ड दिया जाने वाला था। जब उसकी अत्यन्त बुद्धिमती एव पतिव्रता पत्नी ने यह समाचार सुना तो वह साथियों के साथ पूजा सामग्री आदि उपहार लेकर वह मदिर गई। पुजारी ने लम्बी दक्षिणा लेकर कोतवाल को कहकर उसकी शक्तिमती पतिव्रता स्त्री को मंदिर के गर्भगृह मे जाने दिया। वहॉ जाकर उसने किसी स्त्री के साथ अपने पति को देखा। उद् उपरान्त अपने वेष मे उस स्त्री को बाहर निकाल

दिया स्वय पति के पास रह गई। प्रातः काल वह बनिया अपनी स्त्री के साथ पाए जाने के कारण मुक्त कर दिया गया। प्रमोद करने के कारण कोतवाल को दण्ड दिया गया।[30] इसके अलावा राजा की पत्नियॉ अपने पति के अभ्युदय के लिए स्वयं कष्ट सहती थी। इस प्रकार का कष्ट रानी वासवदत्ता ने अपने पति उदयन के लिए न केवल दूसरा विवाह मगध राजा की पुत्री पद्मावती के साथ करवाया बल्कि इसके लिए अपने को लम्बे समय तक अज्ञातवास मे रखा।[31] नरवाहन दत्त की पत्नी वेगवती ने अपने पति की रक्षा के लिए अपने भाई विद्यावल से भयकर युद्ध किया था।[32] स्त्रियों के लिए पतिदेव प्राण होते हैं बन्धु बान्धव नही। एक पतिव्रता वैश्य पत्नी का वर्णन मिलता है जिसके रूप को देखकर राजा आशक्त हो गया। राजा के बलात्कार करने की चेष्टा करने पर शील नाश होने के भय से उस वैश्य वधू का हृदय तुरन्त फट गया।[32ए] इन विवरणों से स्पष्ट है कि सोमदेव ने सच्चरित्र स्त्रियो का वर्णन किया है जिन्होने समय–समय पर अपने पतियों की सहायता की। ये स्त्रियॉ साधारण घरो की तथा राजकीय परिवारो से सम्बन्धित थी। सच्चरित्र स्त्रियों की प्रशंसा जातको के उद्धरणों से भी प्राप्त होता है सुच्चज जातक की गाथा में जो स्त्री दरिद्र पति के साथ दरिद्री बनकर रहती थी और धनी होने पर धनवान बनकर रहती है वही शक्तिमान नारी ही उसकी श्रेष्ठ भार्या है।[33] ऐसी श्रेष्ठ स्त्रियों की प्रशंसा करते हुए महावेस्सन्तर जातक में उल्लेख है कि उस नारी की उपासना देवता भी करते है जो अपने पति की अनुगामिनी होती है।[34] इससे स्पष्ट है कि सोम देव ने केवल इसे भोग की सामग्री के रूप मे नहीं प्रस्तुत किया है अपितु श्रेष्ठ मित्र तथा विपत्ति के उद्धारक के रूप में भी चर्चा की है। पतिव्रता स्त्री अपने जीवन को तभी सार्थक समझती थी जब उसका पति खुश हो। कथासरित्सागर मे राजाओ, सामन्तों आदि मे बहुपत्नित्व की प्रथा थी। एक कथा में अन्तःपुर की रानियो का संवाद अत्यन्त रोचक प्रतीत होता है इससे उस युग के राजाओ के विलासमय पक्ष का भरपूर चित्रण प्रस्तुत होता है एक रानी कहती है कि आर्य पुत्र इतने लम्पट क्यो है।[35] यह सुनकर एक चतुरा रानी मानवती बोली कि राजा लोग बहु पत्नियो वाले इस लिए होते हैं कि देश, रूप, अवस्था, चेष्टा,

विज्ञान आदि के भेद से अच्छी स्त्रियॉ भिन्न–भिन्न गुणो वाली होती है एक ही स्त्री सर्वगुण सम्पन्न नही हुआ करती। कर्नाट, लाट, सौराष्ट्र, मध्यदेश आदि की स्त्रियॉ अपने–अपने विशेषताओ से पतियो का मनोरजन करती है। कुछ सुन्दर स्त्रियॉ शरत्कालीन चन्द्रमा के समान मुख से मन हरण करती है, कुछ सोने के घडे के समान उठे हुए और घने स्तनो से चितरजन करती है कुछ स्त्रियॉ काम के सिहासन के समान जघन स्थल से आकर्षण करती है और कुछ दूसरे–दूसरे सौन्दर्य से तथा आकर्षक अंगों से मनोहरण करती है। कोई तपे हुए स्वर्ण के समान वर्ण वाली होती है, कुछ प्रियगु पुष्प के समान सॉवले वर्ण की होती है और कुछ ललाई लिए हुए गौरवर्ण की होती है जो देखते ही मन को मोहित कर लेती है। कुछ नई अवस्था के कारण सुन्दर होती है तो कुछ यौवन के पूर्व विकसित होने पर मनोरम हो जाती है। कुछ स्त्रियॉ प्रौढता के कारण सरस होती है और कुछ अपने हाव–भाव विलास से अपने सौन्दर्य की छटा दिखाती है। कोई हॅसती हुई प्यारी लगती हैं तो कोई क्रुद्ध होने पर मनोहरण करती है। कोई गजगामिनी होती है तो कोई हंसगामिनी होने के कारण मनोहर लगती है कुछ स्त्रियॉ मधुर सम्भाषण के अमृत से कानो को सिक्त करती है, और कोई भ्रूविलास से देखती हुई प्यारी लगती है। कोई नाचने में निपुण होती है तो कोई गाने में कुशल होती है, कोई वाद्य–कला मे पारंगत होने के कारण संभ्रान्त होती है। कोई स्त्री बाहरी रति विलास मे दक्ष होती है तो कोई अंतरग रति–विलास मे चतुर होती है। कोई श्रृंगार करने मे निपुण होती है तो कोई बात करने मे चतुर और कोई पति के चित्त को वश में करके सौभाग्य प्राप्त करती थी, भिन्न–भिन्न स्त्रियों मे भिन्न–भिन्न प्रकार के गुण होते हैं। इन सब गुणो में से किसी मे कोई और किसी में कोई अपना विशिष्ठ गुण होता है। किन्तु तीनो लोगो मे भी कोई स्त्री सर्वगुण सम्पन्न नहीं मिलती है। इसलिए भिन्न–भिन्न रसो के आस्वादन लेने के लोभी राजा लोग सदा नई–नई स्त्रियों से विवाह किया करते हैं।[36] इसके अतिरिक्त यशस्तिलक में बहुपत्नी का उल्लेख उपलब्ध है जिसमे सारिदत्त के अन्तःपुर मे आन्ध्र, चोल, केरल, सिंघल, कर्णात, सौराष्ट्र, कम्बोज, पल्लव, कलिग आदि देश की कामनियोंके साथ राजा

मारिदत्त द्वारा विलास करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[37] कथा सरित्सागर मे राजाओ, सामन्तो पराक्रमी व्यक्तियो आदि के कई पत्नियो के होने के वर्णन मिलते है। इससे पता चलता है कि इस समय उच्चवर्ग मे बहुपत्नी प्रथा विद्यमान थी। जबकि सामान्य वर्ग के लोग एक पत्नी रखते थे।

कथासरित्सागर कालीन समाज मे सच्चरित्र स्त्रियो के साथ–साथ दुश्चरित्र तथा व्यभिचारिणी स्त्रियॉ भी थी। सोमदेव ने ऐसी विश्वासघातिनी, कृतघ्न, कपटी, पर पुरुषगमन करनेवाली एव अविश्वासिनी स्त्रियो का वर्णन बहुतायत रूप से किया है। इसी प्रकार का विचार तत्कालीन जैन कवि सोमदेव सूरि का भी है जो इस प्रकार के चरित्र वाली स्त्रियों का वर्णन अपने ग्रंथों मे किया है। इन्होने लिखा है कि जिस प्रकार मगर की डाढे स्वभाव से कुटिल होती है। उसी प्रकार स्त्रियॉ भी स्वभावतः कुटिल होती है।[38] प्रतिकूल स्त्रियो को वश मे करने का उपाय देवताओ के लिए भी दुर्लभ है।[39] कथासरित्सागर मे दुष्टा स्त्रियो के चरित्र का सुन्दर चित्रण मिलता है कि जिस प्रकार अथाह एवं अन्दर से विषैले तालाब बाहर से स्वच्छ खिलाई पड़ता है उसी प्रकार स्त्रियो का चित्त भीतर से विषमय और बाहर से स्वच्छ दिखता है।[40] इसी प्रकार की जानकारी यशस्तिलक से प्रात होती है जिसमें कहा गया है कि स्त्रियों की प्रवृत्तियाँ प्रायः वैसी होती है जैसे वर्षा ऋतु में नदियों की प्रवृत्तियॉ प्रायः मलिन होती है।[41] राजा की सभी रानियो के भ्रष्ट होने का वर्णन है, राजा के निवास में अनेक पुरुष स्त्रियो के वेष धारण करके रह रहे थे।[42] रनिवास से गर्भवती रानी भय से परपुरुष के साथ भाग गई। बाद में सिपाहियो ने स्त्री रूप धारण किए हुए पुरुष के साथ उसे पकडा।[43] एक रत्नाधिपति राजा का उल्लेख मिलता है जिसके श्वेत हाथी के गिर पडने पर आकाशवाणी हुई कि पतिव्रता स्त्री के छूने से उठ जाएगा, यह सुनकर प्रसन्न होकर राजा ने अमृत लता नाम की सुरक्षित प्रधान रानी को बुलवाया। जब उसके छूने से हाथी नहीं उठा तो अपनी अस्सी हजार रानियो से क्रम से हाथी को छुवाया परन्तु हाथी नही उठा तद्उपरान्त अपने नगर की समस्त स्त्रियों को बुलाकर क्रमशः हाथी को छुवाया परन्तु हाथी नही उठा तो राजा को लज्जा हुई कि हमारे नगरी मे कोई एक भी

स्त्री सच्चरित्र नही है।[44] इन विवेचनाओ से स्पष्ट है कि राज परिवार के सच्चिरित्र स्त्रियो के अभाव का वर्णन सोमदेव ने किया है। इस समय कोई बिरली स्त्रियो के सच्चरित्रता का वर्णन है। सम्भवत. इस समय के राजपरिवारो मे सैकडो रानियॉ होती थी जिनकी शारीरिक भूख सम्भवत· शान्त न होने के कारण उनमे अनैतिकता व्याप्त थी। जातको से भी पता चलता है कि जब नारियो की शारीरिक भूख शान्त न हुई तो वे स्त्रियॉ समाज मे अनैतिकता फैलाने लगी।[44] यशस्तिलक से भी पता चलता है। स्त्रियॉ दुष्ट सेवक तथा महावत आदि मे अनुरक्त होती है।[45] कथासरित्सागर मे अशोकवती रानी वीणा शिक्षक को आकृष्ट करने के लिए सदैव कामुक चेष्टाऍ किया करती थी। एक बार एकान्त मे नाखूनो को गडाती हुई कामातुरा रानी गुणशर्मा द्वारा रोके जाने पर बोली, हे सुन्दरक ! वीणा बजाने के बहाने मैने तुम्हे पाया है। तुम्हारे प्रति मेरा घनिष्ठ प्रेम हो गया है। अतः मेरा उपभोग करो। उसके मना करने पर उसने कहा – हे नीरस ! तुम्हारे इस सुन्दर स्वरूप और कला कौशल का क्या महत्व, जब तुम मुझ जैसी कामातुरा प्रेयसी की उपेक्षा कर रहे हों।[46] हरिवर की प्रधानरानी अनंगप्रभा नाट्याचार्य के सम्पर्क से और नृत्य की शिक्षा के रस से वह उस नाट्याचार्य के प्रति प्रेम से आसक्त हो गई यह रानी नाट्यशाला मे नाट्याचार्य द्वारा भ्रष्ट की गई और नाट्यचार्य के साथ भाग गई। विलासिनी वाराङ्गनाऍ, संसार की स्थिति के समान अंत में नीरस दुःखदायिनी प्रत्येक क्षण मे बदलने वाली और अनित्य सम्बन्ध वाली होती है। अनंगप्रभा रानी ने क्रमश खड्ग सिद्ध, हरिवर, लब्धवर नाट्यचार्य, सुदर्शन, जुआरी, वैश्य सागरवीर धीवराधिपति, विजय वर्मा क्षत्रिय पुत्र, और अन्त में राजा सागर वर्मा का आश्रय ग्रहण किया।[47]

राजपरिवार के अलावा जनसामान्य वर्ग के स्त्रियो के दूषित चरित्र की जानकारी भी प्राप्त होती है। सोमदेव ने नारी चरित्र का अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक का अध्ययन किया है। इनका कहना है कि पतियों वाले स्त्रियो का भी वेश्याओ के समान विश्वास नही करना चाहिए।[48] पति के प्रति विरक्त और पर पुरुषों पर आसक्त एव वैराग्य रूपी विष से भरी हुई स्त्री नागिन के समान अपने पति का

विनाश कर देती है।[49] एक दुष्टा एव कामासक्त पत्नी को उसके पति ने अपने प्रेमी से मिलते देखा उसकी हत्या करके उसकी लाश को कुँए मे फेकने के दौरान उसकी पत्नी अपने पति को कुँए मे धकेल दिया। इस प्रकार की दुष्टा स्त्रियॉ अनेको प्रकार के साहसिक कार्यों को करने मे सकोच नही करती है।[50] कथासरित्सागर के शक्तियशा लम्बक के दूसरे तरग मे कई दुश्चरित्र स्त्रियो का वर्णन मिलता है जिन्होने अपने पति को छोडकर पर पुरुष के साथ रमण ही नही किया अपितु अपने पति तक की हत्या करवा दी। इसमे दु शीला और देवदास की कथा, राजसिह बल–रानी कल्याणवती आदि की कथाएँ सग्रहीत है जो रात मे खिडकी के मार्ग से रस्से के सहारे ऊपर चढाकार अपने घर मे बुलाकर पर पुरुष के साथ रमण करके सुख प्राप्त करती थी।[51] मद और काम से उन्मत्त राजादत्ता ने एक वणिक को पलग पर बैठाकर उसे लिपटा लिया।[52] सोमदेव ने बताया है कि स्त्रीत्व, मद्य, एकान्त में पुरुषो का मिलन और पूर्ण स्वतंत्रता जहॉ ये अग्नियॉ एकत्र हो वहॉ चंरित्र रूपी तृण स्वत· स्वाहा हो जाता है।[53]

सोमदेव ने वर्णित किया है कि काम के वशीभूत नारी मे विवेक नही रहता है। ऐसी चंचला स्त्री की रक्षा किसी भी प्रकार से नहीं की जा सकती है।[54] धनदेव वैश्य की पत्नी जहॉ तहॉ नए पुरुषो के साथ रमण करती थी। उसकी खिडकी मे रस्सी मे बॅधी पिटारी लटकती रहती थी। रात में जो भी पिटारी मे घुसता था उसे अन्दर बुला लेती थी रात के अन्त मे उसी प्रकार बाहर निकाल देती थी। मद्यपान से उन्मत्त वह कही कुछ देखती नही थी।[55] इसके अतिरिक्त रुद्रसोम ब्राह्मण की स्त्री प्रतिदिन ग्वाले के साथ रमण करती थी। उसकी दासी उसे स्त्रीवेश मे घर ले जाती थी। ग्वाले के भ्रम में ले गए रुद्रसोम ने अपनी पत्नी को देखा और उसकी पत्नी ने उठकर उसका आलिगन किया। तद्उपरान्त रुद्रसोम सोचने लगा कि अत्यन्त खेद की बात है कि पास रहने वाले नीच व्यक्ति से भी दुष्ट स्त्रियॉ प्रेम करने लगती हैं।[56] धनदेव वैश्य के मित्र शशी की दुश्चरित्र पत्नी के बारे मे उल्लेख है शशी अपने पत्नी को गर्भगृह मे सुरक्षित रखा हुआ था। शशी ने एक सजे और गाते हुए कोढी पुरुष

से पूछा तुम कौन हो उसने उत्तर दिया कि मै कामदेव हूँ। उसने बताया कि धूर्त्त शशी अपनी पत्नी के लिए एक दासी को छोडकर ईर्ष्या के साथ अपनी स्त्री को गर्भगृह मे रखकर दसूरे देश मे चला गया है। उसकी दासी मुझे प्रत्येक रात्रि को अपने पीठ पर बैठाकर रमण के लिए ले जाती है।[57] इन विवरणो से स्पष्ट है कि दुष्ट स्त्रियॉ रमण के लिए केवल पुरुष का सानिध्य चाहती है चाहे वह जैसा हो। इसी प्रकार का विवरण यशास्तिलक में भी प्राप्त होता है जिसमे कहा गया है कि – ये स्त्रियॉ सुन्दर रूप की प्रतीक्षा नही करती, युवावस्था आदि मे आदर नही करती, किन्तु पुरुष है ऐसा मानकर उसे भोग लेती है, चाहे वह रूपवान हो अथवा कुरूप।[58]

कथासरित्सागर मे वैश्य स्त्रियो के उल्लेख है जो पति गृह से पिता गृह आने पर भी पराए पुरुष के साथ संबन्ध स्थापित किए। काम से विह्वल वैश्य पुत्री सोमस्वामी के साथ प्रतिदिन अपने सहेली के घर मे सम्बन्ध स्थापित किया। बाद मे अपने पति के घर ले जाने एवं उसके साथ रमण करने की लालसा से उसके समर्थन के उपरान्त मंत्रबल से उसे मर्कट बना दिया।[59] एक वैश्य की पुत्री अपने पितृगृह मे रहकर ग्राम के बाहर धर्मशाला मे पर पुरुष के साथ विहार करते हुए उसके पति ने देख लिया।[60] इन कथानकों से प्रकट होता है कि सोमदेव ने तत्कालीन समाज का नग्न चित्रण करते हुए कहते है कि स्त्रियों का कोई भी ऐसा क्षण नही जाता, जिसमें वे अपनी या किसी अन्य स्त्री की चर्चा न करें।[61] किसी अवसर पर एकत्र और वार्तालाप मे निमग्न स्त्रियॉ आपस मे समस्त गोपनीय से गोपनीय बाते कह डालती है।[62]

स्त्रियों को चंचल पारे की भॉति स्त्रियों पर नियंत्रण करना कठिन है।[63] स्त्रियो तथा लक्ष्मी को सोमदेव ने क्षणिक बताया है जो कि सन्ध्या के समान क्षणिक राग देने वाली होती है,[64] तथा नदी के समान इसका हृदय कुटिल होता है।[65] ऐसे दृष्टान्तो की इस ग्रथ में कमी नहीं है एक कथानक में वर्णन है कि राजकुमारी कर्पर द्वारा भ्रष्ट की गई उसके मरने पर घट के साथ भाग गई। मार्ग मे ही साधु के साथ मिलकर घट को विष दे दिया तद्उपरान्त

वैश्य पुत्र का आश्रय लिया। इससे स्पष्ट है कि ऐसी स्त्रियो मे चचलता, के सिवा न स्नेह है न सज्जनता है।[66]

जहाँ एक स्त्रियों के दूषित चरित्र के कारणों का प्रश्न है इसमे इस समय तत्र के बढते हुए सिद्धातो एव प्रभावों का योगदान था। इस तत्र सम्प्रदाय मे पच मकारो की प्रधानता थी। जिसमें एक मकार मैथुन भी था जिससे स्त्रियो को और अधिक दूषित होने मे योगदान दिया होगा। कथासरित्सागर के एक कथानक से पता चलता है कि राजा की पत्नी नग्न होकर तत्र साधना मे सलग्न थी। राजा के अकस्मात पहुँचने पर उसके द्वारा किए जाने वाले अनुष्ठान को सफलता प्राप्ति उसके लिए बताई। इस काल में हमे तंत्र का प्रभाव समाज में प्रभूत मात्रा मे दिखलाई पडता है। जिसका प्रतिबिम्बन साहित्य एव कलाओ में देखने को मिलता है।

सोमदेव ने परिव्राजिकाओं का भी उल्लेख किया है। कुछ स्त्रियाँ घर के कष्टो एव यातनाओं से सन्यास ग्रहण कर लेती थी जैसे एक कन्या का पिता उसे ठीक से पैर न दबाने के कारण पिता के द्वारा पैर से ठोकर मारने के कारण क्रोध से घर के बाहर निकलकर सन्यासिनी हो गई।[67] एक राजा की कन्या हेम प्रभा राजा के द्वारा एक थप्पड़ मारने से अपना अपमान समझा और जगल में जाकर सन्यासिनी होकर व्रत धारण करने लगी।[68] कथासरित्सागर में कुछ दुष्ट सन्यासिनी होती थी जो माया कुशल होती थी तथा नकली साधुनियाँ अपने अप्रतिहत गति से घरो में घुसकर यह सब मायाजाल रचा करती थी। वे क्या—क्या नहीं करती थी।[69] इससे प्रतीत होता है कि इस समय उच्चकोटि की सन्यासिनी जगल में रहकर तपस्या करती थी, जबकि दुष्ट एवं मायाकुशल नकली सन्यासिनी घरो मे घुसकर भेद लेती थी तथा घर की स्त्रियों को भ्रष्ट करने का भी कार्य करती थी।

कथासरित्सागर के अध्ययन से पता चलता है कि इस समय विद्यार्थी विद्याध्ययन हेतु गुरुगृह जाते थे जहाँ वे गुरु की सेवा करते हुए शिक्षा अर्जित करते थे। परन्तु इस समय कतिपय गुरु पत्नियो के चरित्र—हीनता के दृष्टान्त उपलब्ध है। जो अपने पति के शिष्यों के साथ अनुचित एवं अनैतिक प्रस्ताव

करती थी। एक शिक्षक विष्णुदत्त के शिष्य सुन्दरक के साथ गुरु की पत्नी कालि रात्रि ने एकान्त मे प्रणय प्रस्ताव किया। परन्तु प्रार्थना करने पर भी सुन्दरक ऐसा कुकृत्य करने से इंकार किया। इससे कुपित होकर काल रात्रि ने सुन्दरक के ऊपर अभियोग लगाया कि, बलात्कार करने की चेष्टा मे उसने मेरा यह रूप बिगाडा है। तत्पश्चात गुरु ने उस दुष्टा के ऊपर विश्वास करके अन्य शिष्यो के साथ उसे दौडाकर मुक्को, लातों और डण्डो से खूब पीटा।[70] इसी प्रकार एक दूसरी कामातुरा गुरु पत्नी ने हठपूर्वक अपने पति के शिष्य देवदत्त का वरण कर लिया था।[71] सोमदेव ने स्त्रियों का वर्णन किया है जो मद्यपान करती थी। सामान्यतः उच्च वर्ग की स्त्रियॉ ही मद्यपान करती थी। राजा की एक पत्नी राजदत्ता का उल्लेख है जो मद्यपान से मदोन्मत्त हो गई थी।[72] नरवाहन दत्त ने मद्यपायी न होते हुए भी विद्याधरी के साथ मद्यपान किया।[73] सोमदेव ने मद्यपान की निन्दा भी किया जिससे स्त्रियाँ उन्मत्त होकर परपुरुष गामिनी हो जाती है। यह एक बुराई थी, परन्तु उच्चवर्गों में इसे मान्यता प्राप्त थी।

कथा सरित्सागर कालीन समाज मे सासों का भी उल्लेख मिलता है जिसकी परिवार में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। ये पुत्रों के बाहर रहने पर वधू के संरक्षक के रूप मे कार्य करती थी। विपत्ति के समय स्त्रियों को उचित सलाह देती थी। जातको से जानकारी मिलती है कि स्त्रियॉ अपने कर्त्तव्यो को भली भॉति पूरा करने का प्रयत्न करती थी। रानी माद्री ने सास–ससुर के चरणो मे सिर झुकाकर अभिवादन किया। एक वधू अपनी सास की सेवा अपनी मॉ के समान करती थी, एक अन्य वधू अपनी सास की सेवा करतें हुए उसकी पीठ मलते हुए, उसके कष्टों को जानने का प्रयत्न कर रही थी।[74] इससे तत्कालीन सास–वधू के सम्बन्धों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। देवस्मिता ने वैश्यपुत्रों की घटना की जानकारी सास को दिया जिसका सास ने समर्थन किया और कहा कि इस कृत्य से तुम्हारे पति को हानि हो सकती है। यह सुनकर सास से देवस्मिता ने कहा कि उनकी रक्षा का उपाय करूँगी।[75] सोमदेव ने कुछ ऐसी सासों का भी वर्णन किया जो अपनी वधुओं को प्रताड़ित

करती थी। एक सास अपनी वधू कीर्तिसेना से जलती रहती थी तथा उसके पति की अनुपस्थिति में कष्ट भी देती थी। इसके पति के लाने के बाद उसे तहखाने मे बद करके एकबार मिट्टी के पात्र मे भात खाने को देती थी उसने सोचा कि इससे वधू स्वय मर जाएगी और कुछ दिनो बाद कहूँगी कि वह कही भाग गई।[76] इन कथानको से पता चलता है कि तत्कालीन परिवारो मे सासो का पर्याप्त प्रभाव था, और स्वय एक स्त्री होकर दूसरे स्त्री का शोषण एवं प्रताडित करने मे कोई सकोच नहीं करती थी। शोषण एव प्रताडना के साथ–साथ उसे जान से मारने का भी प्रयत्न करती थी। इसलिए कुछ लोग ऐसे घर मे अपनी पुत्री का विवाह करना चाहते थे, जहाँ पापिन सास एव दुष्ट ननद न हो।[77]

इस समय कुछ ऐसी स्त्रियों के बारे मे जानकारी प्राप्त होती है जो अपने सौतेले पुत्रों को मरवाने का षड्यत्र रचा था। राजा ने नीच कार्य करने वाली पुत्र घातिनी पत्नी काव्यालंकारा को भी गड्ढे मे डलवा दिया।[78] इस काल मे भी समाज मे कुछ स्त्रियों के ऐसे उल्लेख है जो अपने सौतले पुत्रो को उपेक्षा करती थी। वह अपने सगे पुत्रों का भली भॉति लालन–पालन करती थी जब कि सौतेलों पुत्रों को सदा कष्ट देती थी।[79] इस प्रकार की प्रवृत्ति सामान्यतः स्त्रियो मे आज भी देखने को मिलती है।

वेश्यावृत्ति

प्राचीन काल से पुरुष ने अपनी भोगवादी प्रवृत्तियो के कारण स्त्रियों को वेश्या के रूप मे प्रयोग किया है। प्राचीन काल से ही गणिकाओ एवं वेश्याओं के उल्लेख मिलते है। कथासरित्सागर में वेश्याओं के लिए वेश्या,[79ए] गणिका तथा विलासिनी[79बी] आदि नाम मिलते हैं। नगर जीवन के आमोद–प्रमोद और आह्लाद–उल्लास मे इस वर्ग का बहुत बड़ा योगदान था। यह नगर की शोभा एवं आकर्षण का मुख्य केन्द्र बिन्दु थी। दूसरी ओर ये राजाओ और उच्चघराने के लोगो का मनोरजन करती थी। इस प्रकार समाज मे वेश्या का

प्रमुख स्थान था।[80] भारत मे इनका एक अलग वर्ग था जो इस प्रथा को अपनाकर जीवन यापन करता था। पूर्वमध्य कालीन भारत मे प्राय: सभी नगरो मे वेश्याएँ रहती थी। क्षेमेन्द्र के वर्णन से ज्ञात होता है कि धनी व्यक्तियो के इकलौते पुत्र, ऐसे नवयुवक जिनके पिताओ की मृत्यु हो गई थी, राजाओ के आमात्य, व्यापारियो के पुत्र, वैद्य, कामुक तपस्वी और राजकुमार, सगीतज्ञ, विद्वान और शराबी ये सभी वेश्याओ के पास आते थे।[81] कथासरित्सागर से भी ज्ञात होता है कि इनके पास राजा, राजकुमार, वेदपाठी ब्राह्मण एव ब्राह्मण पुत्र वैश्य पुत्र आदि आते थे। जिनेश्वर सूरि के वर्णन से पता चलता है कि समाज मे गणिकाओ का पर्याप्त आदर एव सम्मान था। संत और जैन श्रावक भी उनके साथ सहवास करने मे अपनी मानिहानी नही समझते थे।[82] इसी प्रकार की प्रवृत्ति हमे कथासरित्सागर में भी देखने को मिलती है। इसमें एक मूर्ख सामवेदी ब्राह्मण का वेश्या के घर जाकर चतुराई सीखने का वर्णन है। वह ब्राह्मण चतुरिका वेश्या के घर गया और उसके द्वारा अभ्युत्थान सत्कार करने पर भीतर जाकर बैठ गया।[83] इससे प्रतीत होता है कि इस काल मे भी गणिकाओ के यहॉ ब्राह्मण एवं साधु जाने को अनुचित नही मानते थे।

गणिकाएँ केवल अपने घरों में ही नहीं अपितु सांस्कृतिक तथा अन्य गतिविधियो में भी भाग लेती थीं। कथासरित्सागर में उल्लिखित है कि, वेश्याएँ राजकुमारियो के विवाहोत्सव मे नृत्य करती थीं।[84] इसके अतिरिक्त अन्य साक्ष्यों द्वारा गणिकाओं के सामाजिक कृत्यो एव अन्य दायित्वों के सम्पादन की सूचना मिलती है महाकाव्यकालीन समय मे वेश्याओं को समाज तथा परिवार मे प्रतिष्ठा प्राप्त थी। महाभारत से पता चलता है कि जिस समय गान्धारी गर्भवती थी उस समय इसकी परिचर्या मे वेश्याओ को लगाया गया था। इसके अतिरिक्त श्री कृष्ण पाण्डवो के दूत बनकर वार्ता के लिए जब हस्तिनापुर आये थे तो वेश्याओ ने इनका स्वागत किया था। यही नहीं ये युद्ध के दौरान पाण्डव की सेनाओं में भी वेश्याएँ रहती थी।[85] इसके अलावा जातकों से भी पता चलता है कि ये राजा और उच्चधराने के लोगो का सगीत, गायन, वादन ओर नृत्य द्वारा भी मनोरजन करती थी। गणिका राजा के दरबार मे भी नियुक्त होती थी

जो राजा का मनोरजन करती थी। राजकीय सेवाओ के अलावा कुछ स्वतंत्र रूप से लोगो का मनोरंजन करती थी। इन्हे 'रूपजीवा' कहते थे। इनका प्रमुख कार्य नृत्य, नाट्य, संगीत आदि के द्वारा लोगों का मनोरजन करना होता था। यद्यपि वे भोगो के लिए अपने शरीर को अर्पित किया करती थी।[86] राज्य की ओर से सगीत विद्या को पर्याप्त सरक्षण मिलता था। कथासरित्सागर मे सगीत शालाओ का उल्लेख मिलता है। राज दरबार में गायक स्त्रियो की नियुक्ति होती थी। इसके अतिरिक्त चामरधारिणी, अगरक्षिका, केशससाधिका, ताम्बूलिका आदि राजकीय सेवाओ में रखी जाती थी, राजा के सास्कृतिक मनोरंजन का प्रबन्ध वेश्याएँ करती थी। ऐन्द्रिक क्रियाकलापो के अतिरिक्त शासन उनका उपयोग जासूसी के कामो मे भी लेता था।[87] 'मानसोल्लास' से भी स्पष्ट होता है कि राजाओ द्वारा जब कवियो और विद्वानो की गोष्ठियो का आयोजन होता था उस समय गणिकाओं को भी आमत्रित किया जाता था।[87ए] पूर्व की भॉति कथासरित्सागर कालीन समाज मे भी वेश्याओ के द्वारा विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियो मे भाग लिया जाता था।

कथा सरित्सागर से तत्समय की वेश्याओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश पडता है। वेश्याएँ चालाक और धन की लालची होती थीं। सुन्दर गणिकाओं से रमण करने के लिए पुरुषों को अधिक धनराशि व्यय करनी पडती थी। इस ग्रंथ से वर्णन मिलता है कि वेश्याएँ ठगने में लगी रहती थी।[80] इसके अलावा सोमदेव का यह भी कहना है कि वेश्या अर्थ लोलुप होती हैं। अर्थ के बिना वह कामदेव पर भी प्रसन्न नहीं होती हैं। ब्रह्मा ने भिक्षुओं का निर्माण करके और उनसे लोभ को लेकर वेश्याओं को दे दिया।[89] जातक कथाओ से भी पता चलता है कि वेश्याएँ चालाक और अर्थ की लालची होती थीं। इसमे वर्णन है कि वेश्या राजा के मित्र और नगर श्रेष्ठी से प्रति दिन हजार कार्षापण लेती थी। एक दिन राजमहल से आने मे देर होने से वह खाली हाथ चला गया तो वेश्या धूर्तता से बोली, स्वामी हम वेश्याएँ हैं, हमारे लिए हजार मुद्रा खेल नहीं है। जाओ हजार मुद्रा ले आओ। सेठ के यह कहने पर भी कि मै कल दूगुना धन ले आऊँगा, वेश्या ने दासियों से उसे बाहर निकलवा दिया।[90] कथासरित्सागर

मे सुन्दरी नाम की वेश्या का वर्णन है जो ईश्वर वर्मा को उसके पिता द्वारा दिए गए पॉच करोड दीनार को विभिन्न प्रकार के कपट पूर्ण प्रेम कार्यों आदि द्वारा हडप लिया। अन्त मे अपने सेवको द्वारा अर्धचन्द्र (गरदनिया) दिलवा कर बाहर निकलवा दिया, जो वेश्या उसके लिए मरने को तैयार थी।[91] इसके अतिरिक्त इसी ग्रथ मे कुमुदिका वेश्या एव सिह विक्रम का वर्णन है जिसमे कुमुदिका राजा के प्रति अपने को आत्म समर्पित ही नही किया अपितु प्रतिदिन दानादि के लिए भी धन देती थी। यहॉ तक कि परीक्षा ले रहे सिह विक्रम के चिता पर भी चढ गई तो इस पर भी राजा के मत्री ने कहा कि कुमुदिका के ऊपर अब भी विश्वास नही किया जा सकता है। बाद मे वेश्या ने बताया कि मैं श्रीधर ब्राह्मण पुत्र से प्रेम करती हूॅ जो कि उज्जैन मे बद है। उसके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है, इसी को सोचकर मै आपके चिता पर चढी थी। अत· वेश्याओं मे सद्‌भावना न होने की जो बात कही गई है, वह सत्य है। इस प्रकार वेश्याओं का हृदय अगम और अथाह है।[92] वेश्याओं के यहाँ जाने के लिए धन ही योग्यता है।[93] इन साक्ष्यों से स्पष्ट हे कि वेश्याओ की दृष्टि केवल धन पर लगी रहती थी और धन प्राप्ति के लिए तरह–तरह की आत्मीयताऍ प्रदर्शित करती थी। परन्तु व्यक्ति का धन चूस लेने पर उसे परित्यक्त कर देती थी।

इस प्रकार धन की लोभी वेश्याओ के अलावा इस समय कुछ ऐसी भी वेश्याऍ समाज मे रहती थी जो किसी पुरुष पर अनुरक्त हो जाने पर उसके साथ वफादारी निभाती थी। ऐसी ही एक रूपणिका वेश्या का उल्लेख सोमदेव ने किया है जो लोहजघ नामक ब्राह्मण युवक को प्राणों से भी अधिक चाहती थी और अन्य पुरुषों की परवाह नही करती थी।[94] मदनमाला राजा विक्रमादित्य के वियोग को सहन न करती हुई अपने देश को त्याग कर अपनी सम्पत्ति ब्राह्मण को दान करके राजा के साथ जाने को उद्यत हो गई।[95] इसके अतिरिक्त वेश्याऍ अपने प्रिय के लिए सर्वस्वदान करके आग में जलने की प्रतिक्षा की तथा अनाहार और व्रत से अपने शरीर को कृश कर लिया।[96] इसी प्रकार के कतिपय उल्लेख जातकों मे भी मिलते है जिसमें वर्णित है कि कभी–कभी गणिकाऍ अपने एकनिष्ठ प्रेम के कारण अपने प्रेमी की प्रतीक्षा वर्षों करती थी तथा इस

अवधि मे वह किसी का ताम्बूल तक नही स्वीकार करती थी।[97] इन विविध प्रसगो से पता चलता है कि वेश्याओ मे इस समय एक ओर क्रूरता, धूर्तता, क्षुद्रता, धन लोलुपता और विश्वासघात का पता लगता है तो दूसरी ओर उनके अन्दर मानवता, सह्रदयता, कोमलता तथा एकनिष्ठ प्रेम की भी जानकारी मिलती है। ऐसी स्थिति मे कहा जा सकता है कि समाज मे अधिसख्य गणिकाएँ परम्परागत चरित्र की पाई जाती थी, तो कुछ इससे अलग हटकर थी।

गणिकाएँ आपार धन सम्पत्ति की स्वामिनी होती थी। ये ऐश्वर्यशाली, विलासमय जवीन व्यतीत करती थी। कथासरित्सागर के अध्ययन से यह कहीं नही महसूस होता कि गणिकाएँ अथवा वेश्याएँ किसी भी तरह सामान्य स्तर से कम थी। मदनमाला नामक वेश्या प्रतिदिन वेदज्ञ ब्राह्मणो को उनके वेद जानने की संख्या के आधार पर स्वर्णदान देती थी।[98] लोहजंघ पर आसक्त रूपणिका कहती है कि वह मुझे प्राणो से प्यारा है, धन तो मेरे पास बहुत है और अधिक धन लकर मै क्या करूँगी।[99] वेश्याओ के पास सेविकाएँ होती थी।[100] वेश्याओं के पास पुरुष भी होते थे जो आवश्यकता पडने पर लोगो के साथ शक्तिपूर्ण व्यवहार करते थे। कुछ पुरुष ग्राहकों के साथ दलाली भी करते थे।[101] इस ग्रथ के साक्ष्यों से विदित होता है कि इस समय वेश्याएँ अपनी रक्षा के लिए सेनाएँ भी रखती थीं।[102] जातकों से भी वेश्याओं के द्वारा अपार धनराशिव्यय का उल्लेख है। यह धनराशि श्रृगांर और साज–सज्जा पर खर्च की जाती थी।[103] कथासरित्सागर से राजा ने वेश्या रूपणिका को स्वाधीन करके वेश्यावृत्ति से मुक्त करा दिया अर्थात् उसे वेश्यावृत्ति से मुक्त कराने का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि वेश्यओ पर राजकीय नियत्रण रहता था वे राजा के अनुमति के बिना अपना कार्य छोड नही सकती थीं।

सोमदेव ने कुट्टनियो का उल्लेख किया है। जिसके नियंत्रण में वेश्याएँ रहती थीं। ये कुट्टनियाँ ही कन्याओं को भली–भाँति शिक्षित करके वेश्यावृत्ति मे लीन करती थी तथा उन्हें सरक्षकत्व भी प्रदान करती थीं। ये कुट्टनियॉ वेश्याओं को समझाते हुए कहती है कि अच्छे व्यक्ति मुर्दे को भी छू

लेते है पर वेश्या निर्धन को कभी नही छू सकती। स्नेह करने वाली वेश्या सन्ध्या के समान अधिक देर तक नहीं चमक सकती। वेश्या को केवल धन के लिए अभिनेत्री के समान प्रेम दिखलाना चाहिए।[104] लेखक ने कुट्टनियो के आकृति का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह मोटी ठुड्डी, लम्बे दॉत तथा चिपटी नाक वाली होती थी।[105] इसी से मिलती जुलती कुट्टनी की रूपरेखा दामोदर गुप्त ने 'कुट्टनीमत काव्यम्' मे किया है। इसमे वर्णन है कि वाराणसी की कुट्टनी विकराला ससार के वृत्तान्तो को जानने वाली थी। इसके दॉत प्रायः गिर गए थे और आगे के बचे हुए दॉत मुँह के बाहर निकल आए थे, ठुड्डी झुकी हुई थी, नाक का अग्र भाग मोटा और चिपका हुआ था, बडे–बडे चूचको जैसे उसके सूखे हुए स्तनो का पता चलता था, जिसका चर्म शिथिल झूल रहा था।[106] उसकी ऑखे भीतर घंसी हुई और लाल थी, उसके कानो की कर्णपाली भूषणहीन और लम्बी थी, कतिपय केश पक गए थे। ग्रीवा स्पष्ट दिखाई पडती थी जो नसों से भरी और अधिक फैली हुई थी।[107] कुट्टनियो का चरित्र अत्यन्त कपटपूर्ण होता था। इसीलिए दामोदरगुप्त को कहना पडा होगा कि इसकी कपट रचना को ब्रह्मा भी नहीं समझ सकता था।[108] सोमदेव ने समाज में रहने वाली ऐसी कुट्टनियों का उल्लेख किया है जो वेश्याओं के यहॉ नहीं रहती थीं अपितु ये घर मे रहने वाली स्त्रियों को पर पुरुषो के लिए तैयार करने का उपाय करती थीं। कुछ कुट्टनी स्त्रियॉ परिव्राजिका के रूप में भी रहती थीं।[109] इन साक्ष्यों से विदित होता है कि इस समय कुट्टनियॉ समाज मे थीं जो वेश्याओ को, जहॉ उन्हें निरीक्षण एव धनिक पुरुषो को उपलब्ध कराती थीं वही ऐसी भी कुट्टनी स्त्रियॉ होती थी जो सच्चरित्र गृहणी स्त्रियों को भी पथभ्रष्ट करने का कार्य करती थी। इस प्रकार प्रतीत होता है कि समाज मे व्याप्त भ्रष्टता में इनका भी योगदान पर्याप्त था।

देवदासी

कथासरित्सागर मे देवदासियो[110] का उल्लेख अनेक कथाओं मे प्राप्त होने के कारण पता चलता है कि इस समय देवदासी प्रथा समाज मे प्रचलित

थी। जोकि मदिरो की सेवा से सम्बद्ध थीं। भारत मे जब से मंदिरो का निर्माण प्रारम्भ हुआ उसी समय से लोगो ने सोचा होगा कि आराध्यदेव के सम्मुख नृत्य और गान करने वाली सुन्दरियॉ हो जो अपने आकर्षक और सुन्दर कार्यक्रमो से देवमदिरो को गुजरित कर सके, पूजन और स्तवन के साथ–साथ सुमधुर वाणी मे देवस्तुति भी होती रहे।[111] देवदासी प्रथा की जानकारी बौद्ध जातको एवं अर्थशास्त्र आदि मे नही मिलने के कारण इसका प्रारम्भ इसके बाद मे कियी समय मे हुआ होगा।[112] मेघदूत तथा अनेक पुराणो मे इसका उल्लेख मिलता है।[113] मेघदूत मे उल्लिखित है कि उज्जयिनी के महाकाल मंदिर में अनेक देवदासियॉ नृत्य–गान में व्यस्त रहा करती थी। पद्मपुराण मे भी यह निर्देश है कि मदिरो की सेवा के लिए अनेक सुन्दरियो को क्रय करके प्रदान करना चाहिए।[114] कभी–कभी नि संन्तान व्यक्ति अपनी पहली सन्तान मंदिर को दान कर देते थे। यह प्रथा और विकसित हुई। अलबरूनी सहित अनेक अरब यात्रियों ने देवदासियों के बारे मे वर्णन किया है।[115] अरबी यात्री आबूजैद अलहसन ने देवदासियो का उल्लेख किया है उसके विवरण के अनुसार भारत मे नगर वधुएँ है जिन्हें देवदासी कहते हैं। इनकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार से दिया है कि स्त्रियॉ संतान होने के लिए मनौती करती थी, यदि उन्हें सुन्दर कन्या उत्पन्न होती है तो वह नवजात कन्या को मदिर में ले जाती। मूर्ति की आराधना करके उसे वहीं छोड देती थीं। कालान्तर मे किशोरावस्था प्राप्त करने पर उसे सार्वजनिक मंदिर में एक कमरा मिल जाता था और वह दरवाजे के सामने पर्दा लगा लेती है अपरिचित ग्राहकों, जो हिन्दू धर्म के अथवा किसी अन्य धर्म के समर्थक हो, की प्रतीक्षा में बैठी रहती थी। उनके लिए इस प्रकार का विषय भोग वैधानिक था। इस विषयोपभोग का शुल्क पूर्व निर्धारित था। वे इस प्रकार से अर्जित आय पुरोहित के हाथो मे सौंप देती थी। इससे वे मदिर की रक्षा एव देखरेख किया करते थे।[116] कथासरित्सागर में भी देवमदिर मे स्त्रियो को छोडने का विवरण उपलब्ध है।[117]

देवदासियो के आकर्षक सौन्दर्य का वर्णन भी मिलता है। इस ग्रंथ मे वर्णित है कि वह अनेक सुन्दरियों से घिरी हुई, वीणा के मधुर स्वर से शिव की

वन्दना करती थी। उसके सुन्दर रूप से लावण्य की वर्षा होती थी तथा वह अपने याचकों को चन्द्रमा के समान आकर्षित कर लेती थी।[118]

प्रारम्भिक मध्ययुगीन अभिलेखो के रचयिताओ ने देवदासियो के सौन्दर्य एव शरीर सौष्ठव का मनोहारी दृश्य प्रस्तुत किया है जिसमे उसकी सुगठित मासपेशियो, उन्नत कुचों, भारी भरकम नितम्बो तथा कोमल तन्तुओ से निर्मित मसृण शरीर की मुक्तकण्ठ से काव्यात्मक प्रस्तुति प्राप्त होती है।[119]

कथासरित्सागर के अध्ययन से यह पता चलता है कि देवदासियों का विवाह भी होता था।[120] ये जब विवाहित हो जाती थी तो इनका 'अन्त्येष्ठि' के स्थान पर 'सवेद' मनाया जाता था।[121] इसीप्रकार के विचार राजतरगिणी मे भी संग्रहित है।[122] इन विवरणो के आलोक से स्पष्ट है कि देवदासी प्रथा कथासरित्सागर कालीन भारत मे विद्यमान थी। जिसका साक्ष्य इस ग्रथ के अलावा अन्य साहित्यिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों से मिलता है। इनका समाज मे महत्वपूर्ण स्थान था। ये देवदासियॉ नृत्योत्सव, मानोत्सव, वाद्योत्सव के कार्यक्रमो को सम्पन्न करती थी जिसमे राजा आदि भाग लेते थे। राजा ऐसे त्योहारो एव उत्सवों को प्रसन्नता पूर्वक सम्पन्न कराने के लिए निर्देश देता था साथ ही यह भी कहता था कि, जो व्यक्ति, साधु, वृद्ध, विद्वान उसके विरूद्ध आवाज उठाए उसके विरूद्ध कार्यवाही की जाए।[123] इससे स्पष्ट है कि इस काल मे देवदासी प्रथा को केवल धार्मिक आधार ही नही अपितु राजकीय सरक्षण भी प्राप्त था।

कथासरित्सागर में स्त्रियो का दासी के रूप मे वर्णन प्राप्त होता है। इस समय स्त्री दासी की पारिवारिक सम्पत्ति के रूप मे गणना होती थी। निर्धन स्त्रियॉ घरो में नौकरानी, दासी, परिचारिका बनकर कार्य करती थी।[123ए] माधव नामक ब्राह्मण की सदाचारिणी दासी थी जो अपने स्वामियों के घरो से लाए हुए पकवानो से जीवन—निर्वाह किया करती थी।[124] राजा—रानियों के पास भी दासियॉ होती थी।[125] राजा की कतिपय दासियॉ राजघरो से धन की चोरी करती थीं।[126] राजा को विवाह में राजकुमारी के साथ सुन्दर दासियॉ तथा परिचारिकाऍ भी प्रदान की जाती थी। कभी—कभी राजा इन स्त्रियों के साथ

गान्धर्व विधि से विवाह कर लेते थे। इसी प्रकार इस समय यदा–कदा सामान्य वर्ग का व्यक्ति भी अपनी सुन्दर दासियो से विवाह कर लेता था। पतजलि ने भी दासियो के प्रति उनके स्वामियो की लोलुपदृष्टि का अनेक बार उल्लेख किया है। स्वामी और दासी के सयोग से उत्पन्न पुत्र को दासेर कहा जाता था।[127]

कथासरित्सागर से पता चलता है कि इस समय पुत्रों की भॉति स्त्रियो को धन सम्पत्ति का अधिकार नही था। परन्तु स्त्रियो को उनके विवाह के अवसर पर बहुमूल्य उपहार मिलते थे।[128] स्त्रियो के विवाह मे दहेज भी दिया जाता था।[129] इसके अलावा यदि स्त्रियॉ अपनी माता–पिता की अकेली होती थी तो वे पिता के धन, सम्पत्ति एवं राज्य की उत्तराधिकारिणी होती थी।[130] कन्याओ के विवाह एव दूसरे पुरुष को प्रदान करने का माता को अधिकार प्राप्त नहीं था।[131] जब कि पिता की मृत्यु हो जाने पर माता अपनी कन्या को किसी पुरुष को पत्नी के रूप में दे सकती थी।[132]

सती प्रथा

भारत के कुछ स्थानों पर प्राचीन काल से ही स्त्रियों के लिए मृत पति के साथ चितारोहण करके सती होने की प्रथा रही है। सती शब्द की अभिव्यक्ति के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य में 'अन्वारोहण', 'सहगमन', 'सहमरण' और 'अनुमरण' आदि शब्द प्रचलित थे। कथासरित्सागर में सती[133] होने के अनेको साक्ष्य प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट है कि इस समय सतीप्रथा का प्रचलन समाज मे पर्याप्त रूप से था। यह प्रथा केवल उच्च वर्गों मे ही नही अपितु जन सामान्य मे भी व्याप्त थी। राजतरगिणी में कल्हण ने सूर्यमती की दर्दनाक सती होने का वर्णन अत्यन्त सफलता के साथ किया है।[134] सूर्यमती महाराज अनन्त की पत्नी थी। भीरू महाराज अनन्त को उसने अपने अधिकार में कर लिया था। इस प्रकार वह स्वय राज्यभार वहन करती थी। उसने अपने पुत्र कलश के लिए महाराज को राज्यभार–त्यागने के लिए बाध्य किया था।[135] इससे राज्यपरिवार

मे पिता—पुत्र के मध्य विद्रोह तथा आन्दोलन हुए। सैकडो बार सूर्यमती क्षणिक शक्ति पाने मे सफल भी हुई थी किन्तु अल्प शाति के पश्चात एक बार और उसकी पत्नी अनन्त के मध्य उत्तेजनात्मक दृश्य उपस्थिति हुआ। अनन्त ने सूर्यमती को कठोर शब्द के साथ बुरा—भला कहा तथा कलश की वास्तविकता पर सदेह व्यक्त किया। इस प्रकार अपमानित रानी सूर्यमती ने अनन्त के प्रति भयकर क्रोध प्रकट किया। इसके बाद हतोत्साहित अनन्त ने अत मे आत्महत्या का प्रश्रय लिया। सूर्यमती पारम्परिक प्रथा के अनुसार शपथ के माध्यम से अपने चरित्र की शुचिता एवं पति परायणता को प्रमाणित करके मुस्कराते हुए नेत्रो के साथ अपने पति की चिता की दहकती अग्नि का सहर्ष आलिंगन करके सती हो गई।[136] कथा सरित्सागर मे वररूचि के मरने का समाचार सुनकर उनकी पत्नी उपकोशा ने अपने शरीर को अग्नि मे दग्ध कर डाला।[137] राजा शतानीक के युद्ध मे मारे जाने पर उसकी महारानी ने सती प्रथा का अनुसरण किया।[138] अग्निदत्त नामक ब्राह्मण वृद्धावस्था के कारण मर जाने पर उसकी पत्नी उसके साथ सती हो गई।[139] देवदास तथा उसकी पत्नी दोनों दास तथा दासी थे। पति पत्नी दोनों अपने मालिक के यहाँ से प्राप्त होने वाले भोजन से जीविका चलाते थे। एक बार किसी साधु के आने पर पति ने भोजन साधु को दे दिया स्वयं भूख से मर गया। तद्उपरान्त उसकी पत्नी ने अपने पति के साथ सती हो गई।[140] आदित्यशर्मा के बाल्य काल में उसके पिता की मृत्यु हो जाने पर उसकी माता पति के साथ सती हो गई। जब कि उसके छोटे पुत्र को देखरेख करने वाला कोई नही था।[141] पूर्वमध्यकालीन अभिलेखों से भी सती प्रथा के अनेक वर्णन उपलब्ध है। जोधपुर से प्राप्त एक अभिलेख में वर्णित है कि गुहिल वंशीय दो रानियॉ चिता मे जलकर सती हो गई।[142] घटियाला अभिलेख में भी उल्लिखित है कि राजपूत सामन्त राणुक के साथ उसकी पत्नी सम्पल देवी ने सती प्रथा का अनुसरण किया।[143] इन विवरणो से स्पष्ट है कि सोमदेव के समय सती प्रथा पारम्परिक रूप से भारतीय समाज में प्रचलित थी। जिसका अनुगमन करके स्वयं तथा पति को अधोगति से बचाकर स्वर्ग का आरोहण करती थी ऐसी मान्यता समाज मे विद्यमान थी।

कथासरित्सागर मे यह वर्णन मिलता है कि यदि स्त्री गर्भवती हो तो उसको सती होने की अनुमति नही मिलती थी। इसमे वर्णित है कि पिगलिका के पति द्वारा अपने पितृशोक से सरस्वती नदी मे अपना शरीर त्याग दिया। इस समाचार को सुनकर गर्भवती होने के कारण मै बंधुओ से आज्ञा नही प्राप्त की।[144]

कथासरित्सागर के साक्ष्यो से स्पष्ट है कि इस समय समाज मे स्त्रियो की दशा मे पूर्व काल की अपेक्षा पर्याप्त गिरावट देखने को मिलती है। यद्यपि कि इसमे विदुषी स्त्रियो के वर्णन अवश्य है जो कि अपवाद स्वरूप ही सामान्य स्त्रियो मे शिक्षा का अभाव ही झलकता है। स्त्रियो की शिक्षा की जहॉ एक ओर प्रतिबन्धित किया गया दूसरी ओर स्त्रियो के विलास एवं सौन्दर्यमय चित्रण अधिक प्राप्त होता है। यह तत्कालीन समाज मे स्त्रियों के प्रति जनमानस के बदलते दृष्टिकोण का प्रतीक था। इस समय स्त्रियो मे विचार स्वातंत्रय के साक्ष्य दृष्टिगोचर होते हैं। जिससे विवाह में उनकी रुचि एव अरुचि का ध्यान रखा जाता था। आगे चलकर यह विचार स्वातंत्रय समाप्त प्राय हो गया।

संदर्भ

1 अथर्ववेद, 14 14

2 मनुस्मृति 3 56

3. शतपथ ब्रा. — 5 2.1 10

4. क.स सा. खण्ड—1, 634 / 46—47

5. वही, खण्ड—2, 18 / 125

6 अथर्ववेद — 6 / 11 / 2—3

6 ए अलबीरूनीज इडिया जि. — 1, पृ. 181

7. क.स.सा., खण्ड—2, 18 / 120

8. वही, खण्ड—1, 635 / 47—49

9. जातक प्रथम पृ. 145, 455, द्वितीय 412—13

10. चन्द्रवती त्रिपाठी 'भारतीय समाज मे नारी आर्दशों का विकास', पृ. 30

11. क.स.सा., खण्ड—1, 174 / 31, 176 / 32

12 वही, खण्ड—3, 66 / 73—74, 76

13 वही, खण्ड—3, 106 / 68

14. वही, खण्ड—3 106 / 66

15. जातक, षष्ट, पृ. 348, 365—66

16 हर्षचरित, 4 230

17 कर्पूरमंजरी, 1.11

18 शंकरदिग्विजय, 8.51, जयशकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास

19. क.स.सा., खण्ड—1, 268 / 70

20 वही, खण्ड—1, 368 / 82

21 वही, खण्ड—1, अनुवाद की पाद पिप्पणी, पृ 369

22. क स.सा , खण्ड—1, 248/76

23 वही, खण्ड—1, 242/34—38, 244/49—50

24 वही, खण्ड—1, 624/191—193

25 वही, खण्ड—1, 486/40

26. वही, खण्ड—1, 40/29—31, 42/44

27 वही, खण्ड—1, 216/139—142

28 याज्ञवलक्य स्मृति, 1 84,

क्रीडा शरीर सस्कार समाजोत्सव दर्शन।

हास्य परगृहे यान त्यजेत प्रोषित भृर्तृका।

29. वेदव्यास स्मृति — 2.52

30. क.स.सा., खण्ड—1, 22/164—68, 174, 177

31. वही, खण्ड—1, 260/9

32. वही, खण्ड—3, 734/85—87

32.ए वही, खण्ड—1, 779/19—20

33 जातक तृतीय, पृ. 701

34. जातक षष्ठ, पृ. 508

35. क.स.सा., खण्ड—2, 362/101—102

36. वही, खण्ड—2, 365/105—17

37. यशस्तिलक पू., पृ. 21, दृष्टव्य : पी.के. मेजरवाणी : वही, पृ 86

38 नीतिवाक्यामृतम्, 24/11

39 वही, 24/12

40. क.स.सा., खण्ड—2, 55/84—85

41 यशस्तिलक उ., पृ. 29

42. क स.सा., खण्ड—1, 56/23—24

43. वही, खण्ड—1, 62/66

43. वही, खण्ड—2, 30/36

44 जातक तृतीय, पृ. 342—43

45 यशस्तिलक, पृ 30

46 क.स सा., 52/270

47 क.स.सा., खण्ड—2, 518/270

48 वही, खण्ड—2, 728/56

49 वही, खण्ड—1, 800/181

50 वही, खण्ड—1, 800/182—87

51 वही, खण्ड—2, 730/68—77, 736/124

52 वही, 32/77—78,

53 वही, 32/68

54 वही, 36/87

55 वही, खण्ड—2, 924/99—101

56 वही, खण्ड—2, 928/122—129

57. वही, खण्ड—2, 928/132—136

58 यशस्तिलक उ., 4.1

59 क स सा., खण्ड—2, 58/116

60 वही, खण्ड—1, 418/75—76

61 वही, खण्ड—2, 362/97

62. वही, खण्ड—2, 366/120

63 वही, 87/97

64 वही, 86/252

65 वही, 86/142—143

66 वही, खण्ड—2, 922/89—90, 924/93—94

67. वही, खण्ड—2, 990/157—158

68 वही, खण्ड—2, 988 / 139, 145—147

69 वही, खण्ड—1, 734 / 125—126

70 वही, खण्ड—1, 390 / 117—125

71 वही, खण्ड—1, 23 / 6—7

72 वही, खण्ड—1, 34 / 67—69

73 वही, खण्ड—3, 730 / 58

74 जातक तृतीय, पृ. 392, 422

75 क.स.सा., खण्ड—1, 218 / 161—162

76. वही, खण्ड—1, 668 / 87—90

77. वही, खण्ड—1, 682 / 197

78. वही, खण्ड—2, 172 / 108—113

79. वही, खण्ड—1, 230 / 46—51

79.ए वही, खण्ड—1, 80 / 53

79.बी वही, खण्ड—1, 82 / 63

80. डॉ. अल्टेकर : दी पोजीशन ऑफ वूमेंन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ. 181

81 क्षेमेन्द्र : समय मात्रिका, 5.63—67

82 जिनेश्वर सूरि, कथा कोश प्रकरण, भूमिका, षट्स्थानक प्रकरण, पृ. 52—53

83 क स.सा., खण्ड—1, 80 / 54—55

84. वही, खण्ड—1, 270 / 85

85 महाभारत, 1.118.5 9., उद्योग पर्व, 51 64, 151.58

86 सत्यकेतु विद्यालकार मौर्य कालीन साम्राज्य का इतिहास, पृ. 399—401

87. डॉ. अल्टेकर, वही, पृ. 182 : दृष्टव्य, एस.एन.प्रसाद, वही, पृ. 117

87 ए मानसोल्लास—2, पृ 155

88 क स.सा , खण्ड—1 32/54

89 वही, खण्ड—1, 82/38—39

90 जातक चतुर्थ पृ 48—49

91 क स सा , खण्ड—2, 712/118

92 वही, खण्ड—2, 722/224, 724/46, 48, 54

93 वही, खण्ड—1, 182/84

94 वही, खण्ड—1, 184/96

95 वही, खण्ड—2, 98/157

96 वही, खण्ड—2, 90/94—95, 92/103, 115

97. जातक, द्वितीय, पृ. 380

98. क.स.सा., खण्ड—2, 92/103

99. वही, खण्ड—1, 184/95—96

100. वही, खण्ड—1, 182/83

101. वही, खण्ड—1, 80/57—58

102. वही, खण्ड—2, 726/41

103. जातक चतुर्थ, पृ. 249

104 क.स.सा., खण्ड—1, 184/90—96

105 वही, खण्ड—1, 38/160

106 कुट्टनीमतम् काव्यम् — 27

अथ विरलोन्नतदशनां निम्नहनुं स्थूल चिपिटासाग्राम।

उल्वणचूचुक लक्षित शुष्क क्रुच स्थान शिथिल कृत्रिम नुम्।।

107. वही—28

गम्भरीरक्त ट्टर्श निर्भूषणलम्बक कर्ण पाली च।

कतिपय पाण्डु रचिकुरा प्रकट शिरासन्ततायत ग्रीवाम्।।

108 वही—26

109. क.स.सा., 216/136—37

110. वही, 240/76

111 जयशकर मिश्र . प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 431

112 वही, पृ. 431

113. मेघदूतम् — 1 35

114. पद्मपुराण, 52—97

क्रीतादेवाय दातव्या धीरेणक्लिष्टकर्मणा।

कल्पकालं भवेत्सवर्गो नृपौ वासौ महाधनी।।

115. जयशंकर मिश्र : ग्यारहवी सदी का भारत, पृ. 159—62

116. ऐशेण्ट एकाउण्ट्स ऑफ इण्डिया एण्ड चाइना, पृ. 88, दृष्टव्य कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ. 187

117 क.स.सा., खण्ड—1, 249/76

118. वही, 12/101

119 वैद्यनाथ का शोभनेश्वर शिलालेख, ज.बि.उ.रि.सो.जि. 17(19अ), पृ. 128

120 क.स.सा., भाग—1, 249/76

121 स्ट्रैबो, 12, 559

122 राजतंरगिणी, 4.11, दृष्टव्य एस.एन. प्रसाद, वही पृ. 120

123 एपि इ नि.— ।।, पृ. 26—27

123.ए क.स.सा., खण्ड—2, 874/175—76

124 क स.सा., खण्ड—1, 611/87—90

125 क.स सा., खण्ड—1, 734/128

126. वही, खण्ड—1 700/123

127 महाभाष्य, 1 3.55, 2.3.69, 4.1 114

शिक्षा

किसी भी राष्ट्र के सामाजिक विकास, उसके संरक्षण एव संवर्द्धन में शिक्षा के महती भूमिका होती है। प्राचीन भारतीय शिक्षा, सस्कृति की आधारशिला रही है, जिसका स्वरूप सुव्यवस्थित सुनियोजित एव ज्ञान परक था तथा उसका उद्देश्य व्यक्ति के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन का उत्थान और प्रदत्त उत्तरदायित्वो का सम्यक् निष्पादन करना था। प्राचीन शिक्षाविदो की ऐसी मान्यता रही है कि ज्ञान से मुक्ति मिलती है।[1] ज्ञान के प्रकाश से मनुष्य का जीवन प्रकाशित होता है और वह किसी भी कार्य को वैज्ञानिक कसौटी पर कस कर करने मे समर्थ होता है। "शिक्षा" शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख उपनिषद साहित्य मे मिलता है।[2] जो 'शिक्ष' धातु से बना है, जिसका तात्पर्य सीखने से है।

विदित है कि विकास के क्रम में शिक्षा का आदर्श, उद्देश्य, अवधारणायें, पाठ्यक्रम एवं प्रविधि का स्वरूप समय—समय पर बदलता रहा। अतः कथा सरित्सागर के सामाजिक पक्ष के अध्ययनार्थ शिक्षा के विभिन्न पक्षो पर विचार करना अपरिहार्य हो जाता है। इस संदर्भ मे विद्वान लक्ष्मीधर एवं विज्ञानेश्वर के विवरणो से महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती है। यद्यपि इन दोनो विद्वानो की सूचनाओ से महज ब्राह्मण शिक्षा पद्वति को ही समझा जा सकता है। इनके अनुसार शिक्षा का मूल उद्देश्य ज्ञान की पूर्णता से था जो शिक्षार्थी भौतिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शिक्षा प्राप्त करते थे, किन्तु उनकी तुलना में सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हेतु दत्तचित्त शिक्षार्थी को श्रेष्ठ कहा गया है।[3] इससे स्पष्ट होता है कि आलोच्य कालीन शिक्षा का उद्देश्य संकुचित न होकर उसका फलक वृहद था तथा उसका उद्देश्य व्यक्तित्व के संर्वागीण विकास से था।

किसी भी काल खण्ड का सामाजिक अध्ययन करने से पूर्व उस काल की राजनैतिक एव धार्मिक परिस्थितियो पर विचार करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। विदित है कि कथासरित्सागर का समय राजनैतिक उथल–पुथल एव परिवर्तनो के दौर से गुजर रहा था। देश मे राजनैतिक एकता का अभाव था। तुर्को के भयकर आक्रमण हो रहे थे। धार्मिक क्षेत्र मे विभिन्न सम्प्रदायो का प्रवेश हो चुका था। ब्राह्मण एवं बौद्व धर्म मे कोई विशेष अन्तर नही रह गया था। अब तक दोनो मूर्तिपूजा के समर्थक बन चुके थे। धर्म का मौलिक स्वरूप परिवर्तित हो चुका था। कर्मकाण्ड एवं विभिन्न प्रकार के अधविश्वासो का वर्चस्व स्थापित हो चुका था। तंत्रवाद अपने चरमोत्कर्ष पर था। समाज का आध्यात्मिक पक्ष गौण एव भौतिक पक्ष मजबूत था। स्त्री शिक्षा ह्रासोन्मुख थी। समाज कई जातियो एवं सम्प्रदायों में विभक्त हो चुका था। बाल–विवाह सर्वमान्य थी। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र सक्रमण के दौर से गुजर रहा था। अत· ऐसी स्थिति में शिक्षा का आदर्शात्मक स्वरूप प्रभावित होना स्वाभाविक था और इस परिस्थिति में शिक्षा के वैदिक स्वरूप की परिकल्पना करना बेमानी होगी।

कथासरित्सागर से विदित होता है कि उपनयन जैसे शिक्षा सबधी संस्कारों का विशेष महत्व नही रह गया था। शिक्षा का प्रारम्भ किसी शुभ दिन से किया जाता था[4] तथा विद्या प्रारम्भ करने से पूर्व उत्सव एवं वेदाध्ययन से पूर्व उपनयन सस्कार का विधान मिलता है।[5] वैदिक शाखाओं के अध्ययन की भी जानकारी प्राप्त होती।[6] यज्ञोपवीत संस्कार भी सम्पन्न होता था।[7] शैक्षिक संस्कारोपरान्त ही शिक्षा प्रारम्भ की जाती थी।[8] अध्ययन समाप्ति के उपरान्त भी उत्सव मनाने का उल्लेख मिलता है।[8ए] ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक काल की भाँति विभिन्न शैक्षिक संस्कारो का आयोजन होता था, तथा वैदिक शाखाओ की भी शिक्षा दी जाती रही। लेकिन पूर्व की भॉति न तो इसे विशेष महत्व प्राप्त रहा और न ही वैदिक इसकाल में शिक्षा को विशेष महत्व मिल पाया। सभवतः समाज के वे ब्राह्मण जो परम्पराओ को लेकर चलने वाले थे वैदिक शिक्षा प्राप्त करते रहे जो महज औपचारिक था, क्योकि वर्तमान समय तक शिक्षा का मूल विषय वैदिक साहित्य नही रह गया था। अतः वैदिक शिक्षा को प्रभावित होना स्वाभाविक था।

आलोच्य ग्रन्थ से पता चलता है कि ब्राह्मणो ने वेदो के अध्ययन के साथ–साथ राजनीतिक कार्यो मे रूचि लेने लगे थे तथा उनका जीवन–दर्शन युद्ध प्रिय क्षत्रियों की भांति होने लगा था। सभवतः वे आपद् धर्म का पालन करने लगे थे। तुर्क आक्रमण के परिणामस्वरूप उन्होने भी क्षत्रियो की भॉति शस्त्र धारण कर लिया था। कथासरित्सागर मे वेदो के अध्ययन के साथ युद्ध की शिक्षा पर भी समान रूप से बल दिया गया है।[9] क्षत्रियो की भाति ब्राह्म्णो के लिये भी सैन्य शिक्षा अनिवार्य था।[10] शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति और उसकी परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न था। ऐसे धनी व्यक्तियो का उल्लेख मिलता है, जो स्वाध्याय और ज्ञानार्जन के लिये बहुत कष्टो को झेलते हुये अपनी ज्ञान पिपासा शात करते थे।[11] इसके विपरीत ऐसे लोगो का भी प्रमाण मिलता है, जिनके विद्या अध्ययन का मूल उद्देश्य सांसारिक सुखो का भोग करना था।[12] क्षेमेन्द्र "दर्पदलन" में कहते हैं कि जो वास्तव मे अध्ययनशील और विद्वान है वे मानव समाज के उत्थान हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन होम कर देते है। शुचि एव अशुचि का उन्हे बोध रहता है। ऐसे विद्वान अपनी शिक्षा का विक्रय नही करते। वे विभिन्न अंधविश्वासो से दूर रहते हैं तथा जादू एवं टोने में विश्वास नही रखते। अन्य साक्ष्यो से विदित होता है कि कथासरित्सागर के समय जादू–टोने एवं तन्त्र–मन्त्र का विश्वास बढ गया था।[13] यह शिक्षा मे हो रहे ह्रास को रेखांकित करता है। संभवतः उस समय तक शिक्षा के वैज्ञानिक पक्ष का लोप होता जा रहा था। शिक्षा का मौलिक पक्ष गौण एव अनुदित तथा अनुकरणात्मक पक्ष प्रधान था।

शिक्षा विद्यार्थियो को निःशुल्क दी जाती थी। अध्ययन की सुविधा के लिये पृथक विभागो की स्थापना की गई थी।[14] शिक्षार्थी गुरू गृह मे सेवा करते थे।[15] ऐसा उल्लेख मिलता है कि अध्ययन के निमित्त देवदत्त वेद कुम्भ नामक आचार्य के पास गया था। वहॉ वह गुरु की सेवा करने लगा।[16] इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक गुरूकुलो की भाति गुरू सेवा का वृहत्तर भार शिक्षार्थी वहन करते थे। गुरू की महत्ता स्वीकार्य थी, क्योकि सूर्य प्रभ बालक गुरू की उपासना से सभी विद्याओ और कलाओ में पारगत हो गया था।[17] ऐसी

अवधारणा थी की त्याग और तपस्या से ही विद्या की सिद्धि सभव है।[18] ऐसा उल्लेख मिलता है कि गुरू के निर्देशन के बिना बच्चे उच्छृखल हो जाते है[19] और उनका विकास बाधित होता है।

शिक्षक और शिक्षार्थी के सबधो पर अधिक बल दिया गया है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि शिक्षक को चाहिए कि वह अपने शिष्य के प्रति सहानुभूति रखे । तथा उसकी अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु भरसक प्रयास करे।[20] गुरु की विद्या सामाजिक निधि समझी जाती थी।[21] राजद्रोही एव भ्रष्ट शिक्षको से विद्या प्राप्त करना निन्दनीय समझा जाता था। सोमदेव भट्ट एवं लक्ष्मीधर के अनुसार शिष्य को गुरु–पुत्र के साथ श्रद्धा रखनी चाहिए। किन्तु, उसके उच्छिष्ट भोजन को ग्रहण नही करना चाहिए तथा उसकी परिचर्या भी नही करनी चाहिए। गुरु–पत्नी के साथ उसका संबंध पवित्र होना चाहिए। यद्यपि कुछ ऐसी गुरु–पत्नियों का उल्लेख मिलता है, जो पति के शिष्यों के साथ घृणित व्यभिचारपूर्ण प्रस्ताव रखती थी, किन्तु शिष्यों ने उस प्रस्ताव को ठुकराकर अनेक यातनाओ का सहर्ष आलिगंन किया था।[22] इससे विदित होता है कि समाज में स्त्री शिक्षा का काफी ह्रास हो चुका था तथा उनका नैतिक पतन होने लगा था, जबकि आलोच्य काल में शिक्षार्थियो का नैतिक बल दृढ रहा और उनके चारित्रिक उत्थान पर विशेष बल दिया जाता रहा। मनु ने गुर्वगना के साथ श्रद्धामय व्यवहार की आज्ञा दी है।[23] उन्होनें आचार्य की पत्नी को स्पर्श न करने की अनुमति दी है। यद्यपि इस तरह का प्रतिबध लगाना इस बात को प्रमाणित करता है कि छात्रो का भी नैतिक पतन प्रारंभ हो चुका था क्योकि कानून या निर्देश की आवश्यकता तभी पडती है, जब घटनाए घटित होने लगती है। लक्ष्मीधर ने भी गुरु–भार्या के स्नान–व्यवहार मे सहयोग न देने के विधान का उल्लेख किया है।[24] आपात्काल मे शिष्यो द्वारा गाय के मांस का भक्षण करने एव अवशेष मांस को गुरु को अर्जित करने का विधान मिलता है।[25] साक्ष्यों से विदित होता है आलोच्य कालीन गुरु उदात्त प्रकृति के होते थे। क्योकि छात्र द्वारा गलत कार्य करने के उपरान्त स्वीकार्य कर लेने की स्थिति मे क्षमा का उल्लेख मिलता है।[26] गुरु के सान्निध्य के बिना ज्ञान अपूर्ण माना

जाता था, अत प्रत्येक जिज्ञासु शिक्षार्थी गुरु से दीक्षा लेकर[27] उसका सानिध्य प्राप्त करने का प्रयास करते थे।

जहॉ तक गुरु की आर्थिक स्थिति का प्रश्न है, उपलब्ध साक्ष्यो से विदित होता है उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी रही होगी। एक शिक्षार्थी द्वारा गुरु—दक्षिणा के संबध मे पूछे जाने पर उसने कहा कि तुम मुझे अपने चक्रवर्ती अभिषेक के समय स्मरण करना, यही मेरी दक्षिणा होगी।[28] आलोच्य ग्रन्थ मे गुरू – दक्षिणा के रूप में एक करोड स्वर्ण मुद्रा की प्राप्ति का उल्लेख मिलता है।[29] विद्वानो को राज्य की ओर से भी समुचित पुरस्कार वितरित किया जाता था। राजकुमारो की शिक्षा समाप्ति के उपरान्त उन्हे गुरू—दक्षिणा के रूप मे प्रभूत मात्रा में वस्त्र, स्वर्ण, भूमि और ग्राम दक्षिणा मे दिये जाने का उल्लेख मिलता है।[30] कल्हण के अनुसार हर्षवर्धन ने अपने शासन काल के प्रारंभिक चरण में विद्वानो का सम्मान बहुमूल्य रत्न, छत्र, चामर और अश्व की सवारी से किया था।[31] उन्हे अग्रहार ग्राम तथा भवन भी दान में दिये जाते थे।[32] सैराष्ट्र—नरेश गोविन्दराज नें विद्वानो और ब्राह्मणो को पर्याप्त भूमि दान में दिया था।[33] लक्ष्मीधर ने इस प्रकार के दानो को प्राप्त करने की स्वीकृति दी है।[34] विदित है कि शिक्षा के उन्नयन एवं विद्वानो के जीविकार्थ अग्रहार ग्राम दान की भी एक स्वस्थ परंपरा पायी जाती है।[35] क्षेमेन्द्र में विद्वानो को सचेष्ट करते हुये लिखा है कि वे धन के मोह में शिक्षा न दे और न ही उन्हे धन की अभिलाषा मे राज दरबार मे जाना चाहिये।[36] इससे ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षको के अन्दर धन की लालसा बढ़ती जा रही थी। प्रारंभिक गुरूकुलो मे बिना धन की कामना के शिक्षा देना गुरू का कर्त्तव्य समझा जाता था धन लेकर शिक्षा देना निन्दनीय समझा जाता था तथा समाज का यह कर्त्तव्य था कि वह गुरू की आवश्यकताओ का ध्यान रखे।[36ए] प्रत्येक शिक्षार्थियो से यह अपेक्षा की जाती थी, कि शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त वह गुरू—दक्षिणा अवश्य अर्पित करेगा।[36बी] भिक्षाटन की एक आदर्श परम्परा थी उसे प्रत्येक शिक्षार्थियो के लिये धर्म माना गया था।[36सी] प्रत्येक शिक्षार्थी को चाहे वह अमीर हो या गरीब भिक्षाटन के द्वारा ही जीवन यापन करना पडता था।[36डी] समाज का यह

धर्म था कि वह प्रत्येक शिक्षार्थी को भिक्षा प्रदान करे।[36ई] इस व्यवस्था के कारण सामाजिकता की भावना का विकास होता था। छात्रो के अन्दर की भावना नही पनपती थी और न ही उनमे हीन भावना का विकास होता था शिक्षक और शिक्षार्थी का सम्बन्ध पिता–पुत्र सा होता था।[36एफ] निश्चित रूप से इसमे ह्रास आलोच्य कालीन समाज एवं शिक्षा में देखने को मिलता है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यो से च्युत होने लगा था, शिक्षा का आध्यात्मिक पक्ष गौण एव उसका भौतिक पक्ष महत्वपूर्ण हो गया था। शिक्षक और शिक्षार्थी दोनो अपने पारम्परिक कर्त्तव्यो से च्युत होने लगे थे।

जहाँ तक शिक्षण केन्द्रो का प्रश्न है, मन्दिर, मठ और विश्वविद्यालय शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे। विश्वविद्यालयो मे बलभी ओदन्तपुरी, नालन्दा और विक्रमशिला महत्वपूर्ण थे। यद्यपि गुरू कुलीय शिक्षा का भी उल्लेख मिलता है।[37] लेकिन पूर्व की भाति गुरूकुलो की महत्ता अब नही रही। वैदिक एवं उपनिषद् कालीन शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र गुरूकुल होता था जहॉ शिक्षार्थी आचार्यो के सानिध्य में रहकर विभिन्न विषयो की शिक्षा प्राप्त करते थे। अब गुरूकुलो का स्थान मन्दिरों ने लिया था। ऐसा उल्लेख मिलता है कि दक्षिण भारत के लगभग सभी मन्दिर शिक्षण केन्द्र की भूमिका का निर्वहन करते थे। इन स्थानो पर वेद एवं ब्राह्मण साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। विभिन्न मठों में बौद्वधर्म एवं दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। वे शिक्षार्थी जो दूरस्थ शिक्षण केन्द्रो पर जाकर शिक्षा नही प्राप्त कर सकते थे, वे अपने परिवार के ज्येष्ठ सदस्यो से व्यवहारिक एवं जीवनोपयोगी विषयो की शिक्षा प्राप्त करते थे। मोहमम्द बख्तियार खिलजी के हाथो ओदन्तपुरी[38] नालन्दा तथा विक्रमशिला जैसे प्रमुख शिक्षण केन्द्रो का विनाश हुआ था।[39] कथा सरित्सागर से विदित होता है कि ये सभी विश्वविद्यालय उस समय शिक्षा के महत्वपूर्ण केन्द्र थे, जहॉ जिज्ञासु शिक्षार्थियो को विभिन्न विषयो की व्यवहारिक एवं सैद्वान्तिक शिक्षा दी जाती थी। यद्यपि अन्य विश्वविद्यालयो की तुलना में विक्रमशिला की महत्ता ज्यादा थी, जो बौद्व शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था, जिसकी स्थापना पाल शासक धर्मपाल ने की थी और वही उसका संरक्षक भी था। यहाँ पर बौद्ध धर्म एवं

दर्शन के अतिरिक्त अन्य उपयोगी विषयो के साथ ही साथ ब्राह्मण साहित्य की भी शिक्षा दी जाती थी। उच्च शिक्षा की दृष्टि से ये सारे केन्द्र महत्वपूर्ण थे । प्ररभिक शिक्षा संभवत. परिवारो मे दी जाती थी। वे परिवार जो धनाढ्य होते थे, अपने बच्चो की प्रारभिक शिक्षा देने हेतु उपाध्याय जैसे शिक्षको को नियुक्त करते थे। कुछ गुरू ऐसे भी थे, जो प्रारभिक शिक्षा देने हेतु जिज्ञासु छात्रो को अपने आवास पर बुलाते थे। गुरू की ज्ञान–विषयक कीर्ति छात्रो को बहुत आकर्षित करती थी।[40] विष्णुदत्त नामक ब्राह्मण वेद–विद्या का प्रसिद्व अध्यापक था। उसकी ख्याति सुनकर सुदूरवर्ती शिष्य अध्ययनार्थ आते थे।[41] कथा सरित्सागर से विदित होता है कि सभी अध्यापक 'उपाध्याय' कहलाते थे।[42] छठी शताब्दी ईस्वी के पूर्व जो अध्यापक शुल्क लेकर शिक्षण–कार्य करते थे उन्हे 'उपाध्याय' कहा जाता था।[42ए] इससे स्पष्ट होता है कि आलोच्य काल मे शुल्क लेकर शिक्षा देना सर्वमान्य हो गया था। उपाध्याय के मरणोपरान्त उसकी कृतियों पर संभवतः उसके शिष्य का अधिकार होता था।[43] बूढी भार्या वाले बृद्ध गुरुओ से शिक्षा प्राप्ति का उल्लेख मिलता है ।[44] संभवतः ये वही गुरू थे, जो निजी पाठशाला चलाते थे।

स्त्री शिक्षा ह्मसोन्मुख थी, उनका उपनयन संस्कार एवं वैदिक ज्ञान प्रतिबधित था। उच्च परिवारो की कतिपय जिज्ञासु कन्याएँ उपयोगी शिल्पों की शिक्षा प्राप्त करती थी। सर्वसाधारण परिवार की कन्याएँ अपने परिवार के ज्येष्ठ सदस्यो से व्यवहारिक विषयों की सामान्य शिक्षा प्राप्त करती थी। कथासरित्सागर से विदित होता है कि कतिपय स्त्रियाँ शिक्षिका का कार्य भी करती थी ऐसा उल्लेख मिलता है कि वैश्य वर्ण के लोग अपने पुत्रो को चतुर नागरिक बनाने हेतु कुट्टनी के पास भेजते थे।[45] ये कुट्टनियॉ वेंश्याओ को भी प्रशिक्षित करती थी तथा उन्हे छल–कपट की शिक्षा देती थी।[46]

सगीतशाला[47] मे गधर्वविद्या[48] की शिक्षा दी जाती थी। नाट्याचार्य नाट्य की शिक्षा देते थे।[49] चित्रकला के शिक्षक को उपाध्याय कहा जाता था।[50] संगीत के साथ नृत्य की शिक्षा का भी उल्लेख मिलता है।[51] नृत्य तबले की संगत पर सिखाया जाता था एवं उसका प्रदर्शन किया जाता था। संगीत का

आचार्य विष्णु की स्तुति से सबधित सगीत एव वाद्य मे दक्ष होते थे।[52] राजायों के यहाँ सगीत शालाएँ होती थी,[53] जहाँ राजकुमारियो को संगीत शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी।[35ए] चित्रकार को 100 ग्राम जागीर के रूप में दिये जाने का उल्लेख मिलना चित्रकला के महत्व को प्रमाणित करता है।[54] धनुर्वेद की शिक्षा क्षत्रियो को दी जाती थी।[55] यद्यपि उन्हे शस्त्र कला के साथ ही साथ अन्य विषयो की भी शिक्षा दी जाती थी।[56] व्यवहारिक प्रशिक्षण के द्वारा उन्हे दक्ष बनाया जाता था। व्यवहारिक प्रशिक्षण के अन्तर्गत शिकार के माध्यम से लक्ष्य भेद शस्त्र परिचालन का अभ्यास आदि सम्मिलित था।[57] रथ संचालन की भी शिक्षा दी जाती थी क्योकि इस विज्ञान के विशेषज्ञो की जानकारी मिलती है।[58] क्षत्रियो के साथ ब्राह्मण भी सैन्य शिक्षा प्राप्त करते थे। सर्व साधारण को शिक्षित करने के उद्देश्य से सातवाहन नरेश ने देशज–भाषा में कथा साहित्य का अनुवाद कराकर कथापीठ की स्थापना करवायी थी।[59] चूँकि सगीत का भाषा से गहरा संबंध होता है और आलोच्य कालीन शैक्षिक पाठयक्रमो में ललित कला को विशेष महत्व प्राप्त था। अतः भाषा एवं व्याकरण की शिक्षा पर भी विशेष बल दिया जाना स्वाभविक था। भाषा विज्ञान के अन्तर्गत संस्कृत प्राकृत देशज एवं पिशाच भाषा की शिक्षा दी जाती थी।[60] वैश्यों द्वारा अक्षर ज्ञान एवं गणित की शिक्षा का उल्लेख मिलता है ।[61] संभवतः विभिन्न श्रेणियां अपने अपने समुदाय के लोगो को शिक्षित करने का कार्य करती थी। सब विद्याओं का मुख व्याकरण है, जो 12 वर्षो में आता है।[62] ऐसा उल्लेख मिलना व्याकरणिक शिक्षा के महत्व को रेखांकित करता है। व्याकरण शास्त्र को कातन्त्र शास्त्र भी कहा जाता था।[63] इसके अन्तर्गत प्रतिसंख्य[64] (व्याकरण) एवं ऐंन्द्र व्याकरण की भी शिक्षा दी जाती थी।[65] शिक्षा का प्रारम्भ अक्षर ज्ञान[66] एव शब्दो के उच्चारण से होता था। सर्वसाधारण को शिक्षित करने हेतु विभिन्न उपयोगी साहित्य का अनुवाद देशी भाषा मे किया जाता था।[68] तत्कालीन समाज तत्रवाद से प्रभवित होने के कारण योग शास्त्र [69] दीक्षा तथा काल संकर्षिणी[70] विद्या, एवं तंत्र विद्या आदि की शिक्षा दी जाती थी। अनुलोग एवं प्रतिलोम की भी शिक्षा दी जाती थी।[71] कथासरित्सागार से विदित होता है कि समाज मे ज्योतिष शास्त्र का विश्वास बढता जा रहा था। ज्योतिर्विद ब्राह्मण पुरोहित का कार्य मूलतः

उपनयन, विवाह आदि सस्थाओ को सम्पन्न करना था।[72] खगोल शास्त्र के गूढ़ रहस्यो के ज्ञाता अपने उच्च ज्ञान के कारण विशेष रूप से पुज्यनीय थे।[73] ज्योतिष का विषय तत्कालीन विधा के क्षेत्र मे अधिक लोकप्रिय था।[74] चिकित्सा शिक्षा के अन्तर्गत शल्य चिकित्सा[75] एवं आयुर्वेद की शिक्षा दी जाती थी। राज शेखर के अनुसार यदि कोई कवि भी होना चाहे तो भी वैद्यक पढना चाहिए।[76] इससे पता चलता है कि शिक्षा के अन्तर्गत इस विषय को भी विशेष महत्व प्राप्त था। चिकित्सा जगत मे भारत की ख्याति सुदूर तक फैली थी, बगदाद मे भारतीय वैद्य के नियुक्ति की सूचना मिलती है।[77] चिकित्सीय उपचार के संबंध मे उल्लेख मिलता है कि कुल्हाडी से फाडी जाती हुई लकडी के टुकडे घुस जाने से नाडीव्रण (नासूर) को हिमाचल की औषधि से ठीक किया जाता था।[78] रक्त को धोकर (ड्रेसिग) पटटी बॉधी जाती थी ।[79] इससे विदित होता है कि चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा व्यवहारिक रूप में दी जाती थी । इस प्रकार शैक्षिक पाठ्यक्रमो के अन्तर्गत संगीत, नृत्य, वाद्य, चित्रकला, ज्योतिष, खगोल शास्त्र, भाषा, व्याकरण, कथा साहित्य ,धनुर्वेद चिकित्सा आदि सामिल था। पॉच वर्ष की अवस्था में शिक्षा प्रारम्भ करने का उल्लेख मिलता है।[80] जो हरि, लक्ष्मी, सरस्वती तथा कुल देवता के आराधना से होती थी।[81] प्रारंभिक शिक्षा के पाठ्यक्रमो में मात्रिकान्यास, अक्षर ज्ञान,[82] शब्द ज्ञान,[83] एवं स्वल्प गणित का अभ्यास सम्मिलित था।[84] श्रवण और पठन की प्रणाली से अध्ययन होता था।[85] विद्या प्राप्ति के लिये कथासरित्सागर मे बाह्याडम्बरों की कटु निन्दा की गई है। व्रत और उपवास आदि से विद्या प्राप्त करने को खरगोश की सींग की भॉति असंभव तथा आकाश मे चित्र रचना के समान व्यर्थ बताया गया है।[86] अक्षर ज्ञान अध्ययन के लिये अनिवार्य था।[87]

सोलह वर्ष की अवस्था विश्वविद्यालीय शिक्षा के लिये उचित समझी जाती थी। वसुदत्त ने अपने पुत्र विष्णुदत्त को इसी अवस्था मे वलभी विश्वविद्यालय में अध्ययनार्थ भेजा था।[88] यद्यपि विष्णुदत्त गंगाधाही का निवासी था तथा नालन्दा और वाराणसी उसके समीप पडते थे तथापि वह अध्ययन के नियमित बलभी आया था। इससे यह विदित होता है कि उस समय तक नालन्दा और वाराणसी का शैक्षिक महत्व कम हो गया था और बलभी का

महत्व बढ गया था, जहॉ देश के विभिन्न भागो के शिक्षार्थी उच्च शिक्षा के लिये निमित्त आते थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि बलभी नरेश ने शिक्षा को प्रोत्साहित करने एव पुस्तकालय को समृद्ध करने के उद्देश्य से प्रभूत धन दान किया था।[89] कथासरित्सागर मे एक पुत्र अपने पिता से कहता है कि तुम वैदिक धर्म को छोडकर अधर्म का पालन करते हो। ब्राह्मण को छोडकर भिक्षुओ की पूजा करते हो।[90] इससे विदित होता है कि वैदिक शिक्षा का महत्व कम होने लगा था और बौद्व शिक्षा के प्रति लोगो का झुकाव बढने लगा था। उस समय बलभी की भॉति विक्रमशिला भी उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र था जहां बौद्व धर्म एव दर्शन के अतिरिक्त अन्य व्यवहारिक एव उपयोगी विषयों की शिक्षा दी जाती थी। कथा सरित्सागर में बौद्व धर्म का उपहास किया गया है एक कथा के अनुसार स्नान, शौच आदि से हीन, भोजन–लोभी शिखा और केशो को मुडवाकर केवल कौपीन पहनने वाले तथा बिहारो मे निवास करने वाले, लोभ से नीच जाति के व्यक्ति, जिस बौद्व धर्म को ग्रहण करते है उससे हमारा कोई प्रयोजन नही है।[91] यह उद्धरण इस बात को प्रमाणित करता है कि उस समय बौद्व धर्म का प्रचार–प्रसार था और विक्रमशिला की महत्ता स्थापित होने से उच्च शिक्षा हेतु अभिलषित शिक्षार्थी बौद्व शिक्षा की ओर उत्प्रेरित होने लगे थे। कथासरित्सागर के अनुसार उच्च शिक्षा के अतिरिक्त कतिपय ऐसी भी शिक्षाएं दी जाती थी जिन्हे उपयोगितावादी शिक्षा की कोटि में रखा जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षाये समय की मांग के अनुसार राज्य निर्धारित करता था।

शिक्षा का स्वरूप सैद्वान्तिक एवं व्यवहारिक दोनो था, जो मौखिक, लिखित, व्यवहारिक रूप मे दी जाती थी। विभिन्न विषयो पर शास्त्रार्थ होता था।[92] सशय की स्थिति में वाद–संवाद एवं शास्त्रार्थ शिक्षा की पद्वति थी।[93] उसमे सफल विद्वानो को राज्य द्वारा पुरस्कृत किया जाता था। इन शास्त्रार्थो मे स्त्री एवं पुरूष दोनो सम्मिलित होते थे। यद्यपि वर्णित कालीन शिक्षा का मूल उद्देश्य चरित्र निर्माण एव व्यक्तितत्व का संर्वागीण विकास नही रह गया था तथापि जो शिक्षा प्रदत्त की जाती थी वह शिक्षाथियों के व्यक्तित्व में परिलक्षित होता था। भौतिक जीवन का उत्थान एवं उसकी समृद्वि ही शिक्षा का ध्येय था। और इस उद्देश्य की सिद्धि में तत्कालीन शिक्षक और शिक्षार्थी सफल रहें।

संदर्भ

1 विष्णु पु, 6 5, 61

वही, 1 19.41

2 बृह उप., 5 2 3

तै. उप., 1 2 1

3 मजूमदार, सो इ हि.ना.इ., पृ 145

4 क.स.सा., 7/55

5 क स सा., खण्ड—1, 231/74

6. वही, खण्ड—2, 407/153

7. वही, खण्ड—3, 489/65

8. वही, खण्ड—3, 237/116

8ए. वही, खण्ड—1, 97/165

9. क.स.सा, खण्ड—1, 129/72

10. वही, 2/44, 4/26—27

11. दर्प दलन विचार 3, पंक्ति 28

12. हिस्ट्री ऑफ बंगाल नि. 1, पृ. 676

13. अल्टेकर, एजूकेशन इन ऐसेन्ट इडिया, पृ. 140—141

14. क स सा., 4/21

15 वही, 7/56

16 वही, 7/56

17. वही, 43/23

18 वही, 43/35

19 क स सा., खण्ड—1, 623/167

20 आय ध., 1 8.24–8

21 लक्ष्मीधर, ब्रह्मचारी, पृ. 240

22 क स सा , 43 / 23

23 एस एन प्रसाद, कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ. 102

24. लक्ष्मीधर, ब्रह्मचारी, पृ. 228–9

25. क.स.सा , खण्ड–1, 5 / 117

26. वही, खण्ड–1 615 / 119

27. वही, खण्ड–2, 417 / 237

28 वही, 45 / 127

29. वही, 4 / 93

30. मानसोल्लास, पृ. 12, विशंति, 3.1304

31. राजतरंगिणी, 7.934

32. वही, 8, 2395–97

33. ए.इ., जिल्द 2, पृ. 227

34 राजधर्मकाण्ड, पृ. 227, शुक्रनीतिसार (कलकत्ता संस्करण), 1.369

35 राजतरंगिणी, 6.87, 89, 90, 96, 98, कृतकल्पतरू जिल्द – 2, पृ. 71

36 दर्पदलन (काव्य माला सिरीज), 3 पद 7.42

36ए. गौ. धर्मसूत्र, 10.9–12,

36बी विष्णु ध.सू., 3.79–80

36सी अल्टेकर, प्राचीन भारत में शिक्षा पद्धति

36डी अथर्ववेद, 11.5–9, गोपथ गृह्य सूत्र, 2–10, द्रा. गृ. सूत्र, 2 5–16, मनु, 1.65

36ई गो ध. सूत्र, 5.16, विष्णु पुराण, 3 95

36एफ. आ. ध. सू., 1.2.8, महावग्ग जातक, 1.32

37 क स सा, खण्ड—1, 145/57

38 राधा कुमुद मुखर्जी, प्राचीन भारतीय शिक्षा, पृ. 595

39 सो इ हि ना.इ, पृ 163

40 क.स.सा, 6/32

41 वही, 19/115/116

42 वही, 53/44

42ए मनु, 3 156, शंखायन, 3 2, वि. धा सू, 29 9

43. वही, 8/32

44. क स.सा, खण्ड—1, 105/59

45 वही, खण्ड—2, 715/131

46. वही, खण्ड—2, 703/58

47. वही, खण्ड—1, 75/31, 79/56

48. वही, 75/29

49. वही, खण्ड—2, 519/65

50. वही, खण्ड—2, 607/44

51 वही, खण्ड—3, 67/73

52 वही, खण्ड—3, 739/18

53 वही, खण्ड—1, 175/31

53ए वही, खण्ड—1, 161/11—12

54. वही, खण्ड—3, 1117/20

55 वही, खण्ड—1, 129/72

56 वही, खण्ड—3, 1005/47

57 वही, खण्ड—1, 619/146

58. वही, खण्ड—2, 689/392

58ए. एस.एन. प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ 101

59 वही, खण्ड—1, 117/37

60 वही, खण्ड—1, 5/147—148, 101/27

61 वही, खण्ड—1, 79/32

62 वही, खण्ड—1, 93/144

63. वही, खण्ड—1, 99/13

64. वही, खण्ड—1, 17/38

65 वही, खण्ड—1, 39/25

66. वही, खण्ड—3, 785/22

67. वही, खण्ड—1, 23/78

68. वही, खण्ड—1, 117/37,119/3

69. वही, खण्ड—3, 839/23

70. वही, खण्ड—3, 11/65

71. वही, खण्ड—3, 239/132

72. क.स.सा., 32/83

73 वही, 3/4, 30/79, 39/4

74. वही, 10/178—179

75. वही

76. काव्य मीमांसा, पृ. 7, 11.26

77. ईश्वरी प्रसाद, ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया, पृ 39

78 क.स.सा , 27/167—69

वृहत्कथामजरी, 8.172, 175, 179, 191

79. क.स.सा, 27/159—60

80. मजूमदार, सो. इ. हि. ना. इ., पृ 149

81 स्मृति चन्द्रिका, पृ 66, 67

82. क स.सा., खण्ड–3, 85 / 22

83 वही, खण्ड–1, 23 / 78

84 स्मृति चन्द्रिका, पृ 1, 26

याज्ञवलक्य स्मृति, 1 131

85 क.स सा , 40.20

86 वही, 40 21

87. वही, 40.22

88 वही, 32 / 42, 43

89. इ. ए., 7, 67

90. क.स.सा , 26 / 18

91. वही, 19 / 20

92. वही, खण्ड–2, 977 / 123

93. वही, खण्ड–3, 39 / 23

अन्न—पान, वस्त्राभूषण एवं मनोरंजन के साधन

कथा सरित्सागर एक कथा साहित्य है। इस ग्रन्थ मे दैनिक जीवन तथा विभिन्न विशिष्ट अवसरो पर प्रयुक्त होने वाले अन्न—पान, वस्त्राभूषणो तथा मनोरजन के विविध साधनो का कथा प्रसग मे विवरण प्राप्त होता है। इस विवरण से स्त्री—पुरूष के अन्न—पान अलकरण, मनोरजन आदि से तत्कालीन जीवन पर महत्वपूर्ण प्रकाश पडता है। कथासरित्सागर के विवरण यद्यपि मुख्यत· नागर जीवन के विविध पक्षो को अपेक्षाकृत विस्तृत रूप मे उद्घाटित करते हैं तथापि यत्र—तत्र ग्रामीण जीवन के भी प्रसग उपलब्ध है। कथा शिरोमणि सोमदेव जब किसी वैश्य, राजकुमार, राजा, स्त्री आदि का नगर से बाहर के यात्रा प्रस्थान का उल्लेख करते हैं तो यात्रा—वृतान्त के अन्तर्गत अरण्य वर्णन मे यदा—कदा ग्रामीण जीवन की झलक है जो कि समाज के अधिसख्य जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है। सोमदेव ने उपदेश, लोक अभिरूचि तथा मनोरंजन के ध्यान में रखकर कथा की रचना की होगी, ऐसा सहज सभाव्य प्रतीत होता है।

कथासरित्सागर मे जनता के द्वारा उस समय उपभोग मे लाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के खान—पान का महत्वपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में भोज्य, लेह्य षड्रस, पेय आदि शब्दों का वर्णन मिलता है। भारत मे प्राचीन काल से ही मनुष्य विविध प्रकार के भोजन एव पेय का प्रयोग करता रहा है। कुछ मनुष्य शाकाहारी थे तो कुछ मासाहारी। पूर्व वैदिक काल मे आर्य अत्यन्त सादा भोजन करते थे परन्तु इस काल के लोग आमिष एव निरामिष भोजी दोनो प्रकार के थे।[1] तथा सुरापान भी करते थे।[2] उत्तर वैदिक काल मे खान—पान पूर्व वैदिक काल की भॉति रहा परन्तु इस समय कुछ खाद्य वस्तुओ को मिलाकर पकवान बनाये जाने लगे। कथासरित्सागर मे भी कई प्रकार के खाद्य पदार्थ मिलाकर व्यजन बनाने का वर्णन है। उसकाल में जनसामान्य अहिसामार्गी होते हुए भी खाद्य पदार्थो के साथ—साथ मास से परहेज नही करता था।[3]

परन्तु बाद मे धीरे–धीरे भारतीय समाज की प्रवृत्ति मे परिवर्तन होने लगा। धीरे–धीरे जनता की अभिरूचि शाकाहारी होती गई। अन्न को शरीर के पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु को बढाने वाला माना गया जो प्राण अपान, समान उदान और ध्यान को पुष्ट कर सुख प्रदान करता था।[4] पूर्व मध्यकाल में भी सामान्यत· खान–पान की परम्परा प्रचलित थी। अरब यात्री सुलेमान ने विवरण दिया है कि भारतीयो मे चावल का अधिक प्रचलन था, गेहूँ नही के बराबर है।[5] जबकि डा0 घोषाल[6] ने 'वैजयन्ती' को उद्धृत करते हुए समीक्षा किया कि म्लेच्छों के लिए गेहूँ भोजन के रूप में पयुक्त था। लेकिन यह ध्यान देने योग्य बात है कि 'वैजयन्ती' का रचनाकार यादवप्रकाश कांचीपुरम् मे पैदा हुआ था तब दक्षिण भारत गेहूँ के प्रयोग से अनभिज्ञ था।[7] कथासरित्सागर में भी गेहूँ (गोधूम) के प्रयोग का उल्लेख निम्न स्तरीय समाज के संदर्भ में प्राप्त होता है। कथासरित्सागर में उल्लेख मिलता है कि उज्जयिनी का ठिष्ठाकराल जुए मे अपना सर्वस्व हार जाने के उपरान्त अन्य जुआरियों से एक सौ कौडिया कयर्दकशांत प्राप्त किया। दिन बीतने पर इन कौडियो से गेहूँ का आटा (गोधूमचूर्ण) खरीदा। उसे लेकर महाकाल के श्मशान में जाकर बनाया तथा महाकाल के दीपक का घृत लगाकर खाता था।[8] इससे स्पष्ट है कि उस काल के जनसामान्य मुख्यतया गेहूँ का प्रयोग करते थे। इसकी पुष्टि उन त्योहारों से होती है जिसमें लक्ष्मीधर[9] तथा चण्डेश्वर[10] ने जन्माष्टमी के अवसर पर गेहूँ के बने पदार्थो के उपयोग की व्यवस्था की थी। राजस्थान की जैन मूर्तियो को गेहूँ समर्पित किया जाता था।[11] हेमचन्द्र ने भी उल्लेख किया है कि गेहूँ के आटे का प्रयोग मिष्ठान बनाने में होता था।[12] कथासरित्सागर मे भी पुएं[13] मिष्ठान का वर्णन मिलता है जो कि गेहूँ के आटे से बनाया जाता था।

कथासरित्सागर में दूसरा प्रमुख अनाज चावल था। अरब यात्री सुलेमान का कथन है कि भारतीयों मे चावल अधिक प्रचलित है।[14] चावल को पकाकर खाया जाता था जिसे 'भात'[14 1] कहते थे। भारतवासियो का भोजन चावल के बिना अधूरा था। कृषि व्यवस्था मे धान के विभिन्न किस्मों की खेती सबसे अधिक की जाती थी।[14 2] जातकों मे साधारण उबले हुए चावल को भात (ओदन) कहते थे जिसे दाल के साथ खाया जाता था।[14 3] इस भात को दूध[15] के साथ भी खाया जाता था। अब्नमसह के अनुसार गुजरात मे चावल और गाय का दूध ही मुख्य भोजन था।[15 2], पाणिनि ने भी भक्त का

उपयोग इसी सदर्भ मे उल्लेख किया है।[16] चावल से कृसर (खिचडी बनाई जाती थी जिसे लोग बडे चाव से खाते थे। जातक षष्ट मे भी वर्णन है कि चावल का दूसरा प्रमुख व्यजन यवागू—भात खिचडी होता था जिसका जनता द्वारा सबसे अधिक सेवन किया जाता था।[17 1] चावल मे अन्न मिलाकर आधुनिक युग की भॉति खिचडी (कृषरोदन) भी बनाए जाते थे। कथा सरित्सागर मे यह भी उल्लेख मिलता है कि आज पर्व का दिन है इसलिए ब्राहमण के लिए खिचडी पकाओ।[17 2] अतः स्पष्ट है कि वर्तमान की भॉति उस समय भी खिचडी का पर्व मनाया जाता था जिसमे ब्राह्मण को खिचडी खिलाई जाती थी। लोक में खिचड़ी—तिलवा, सतुआन आदि पर्वो का नामकरण अन्न विशेष के उस दिन खाने के आधार पर हुआ होगा।[18] कथासरितसागर मे चावल से बनाये जाने वाले खीर[19] व्यंजन का उल्लेख मिलता है। खीर चावल, दूध, घी तथा शक्कर से बनाया जाता था।[20] दूध मे डाल कर पकाये गये चावल को 'क्षीरौदन' कहते थे।[21 1] क्षीर (खीर) उस समय का पूर्ण तथा लोकप्रिय भोजन था। कथासरित्सागर में एक कजूस बनिए की कथा है जिसने खीर न खिलाने के स्थान पर अपनी जान दे डालना उचित समझा।[21 2] इस तरह 'तिलौदन' 'घृतौदन', 'मांसौदन' आदि को निर्मित किया जाता था।[22] खीर को बुद्ध ने स्वयं सर्वोत्तम आहार माना है।[23] चावल के इन व्यन्जनों के अतिरिक्त चावल का धर्मिक कार्यो मे भी अत्यधिक महत्व प्रतीत होता है। चावल को प्रसाद के रूप मे मंदिरों में वितरित किया जाता था।[24] कथासरित्सागर मे पवित्र 'चरू'[25] का जिक्र आता है। चावल, चीनी और दूध मिलाकर हवन द्रव्य तैयार किया जाता था। पवित्र चरू को पुत्ररत्न की इच्छा रखने वाले को अभिमंत्रित करके दिया जाता था।[26] धान का लावा विवाहोत्सव के समय धार्मिक अनुष्ठान में प्रयुक्त होता था।[27] यह परम्परा आज भी कायम है।[28] कथासरित्सागर मे गोधूम (गेंहूॅ), धान, चावल के अतिरिक्त यव[28 1] (जौ) का उल्लेख मिलता है। यव से यावागू[28 2] बनता था। जौ से सत्तू[29 1] भी बनाया जाता था। इसके अलावा कथासरित्सागर मे तिल[29 2] सरसों[30] का भी उल्लेख मिलता है। सरसो से तेल निकालने का भी विवरण सोमदेव ने दिया है। कथासरित्सागर मे उपरोक्त खाद्यानो तथा उनसे बनने वाले व्यन्जनो के अलावा, सत्तू[31] (सतुआ) का कई स्थलो पर उल्लेख मिलता है। सत्तू सुगमता के साथ पचने वाला खाध पदार्थ था। कथासरित्सागर मे अर्थवर्मा नामक एक धनाढ्य सेठ का वर्णन है जो मंदाग्नि के कारण अत्यल्प भोजन करता था। वह एक दिन अपने अतिथि यशोवर्मा के साथ दो तोला घी

से सना हुआ सत्तू खा गया।[32] सत्तू बिना नमक के भी खया जाता था।[33] सत्तुभस्त जातक मे वर्णन है कि निर्धन और साधनहीन जनता का आहार सत्तू ही था।[34] एक कथा मे सुदूरगामी ब्राह्मण की भार्या ने उसे पाथेय के रूप में सत्तू दिया था। सत्तू पाथेय के रूप मे लोकप्रिय भोजन रहा होगा।[35] धान का भी सत्तू बनाया जाता था जिसे मन्थ कहते थे। इसे दूध मे मिलाकर या पानी मे घोलकर खाते थे। पानी मे घुले हुए सत्तू को 'उदक–मन्थ' कहा जाता था।[36] राजा परिक्षित के राज्य मे एक पत्नी अपने पति से पूछती है। आप के लिए क्या लाऊँ, दही, सुधिया सत्तू मन्थ या जौ से चुआ हुआ रस। इसे थोडे घी में सानकर ठंडा जल मिलाकर मथानी से मथकर मन्थ तैयार किया जाता था।[37]

कथासरित्सागर मे मिष्ठानों का उल्लेख है। जातकों मे चावल के पुओं का वर्णन है। कुण्डयुक्त जातक मे दरिद्र मजदूर ने चावल की बहुत बारीक कनकी ले, सूप से पटक कर पानी से भिगोकर, आक के पत्तों की ऑच में पकाया तथा खाजा पूआ बनाया।[38] इन मीठे पूओ को चावल, दूध, घी, मधु तथा गुड के प्रयोग से बनाया जाता था[39] इन्हे कढ़ाई में तला जाता था। साधारण मधु से मीठे पूए भी तैयार किए जाते थे। अयूप का उल्लेख पाणिनी ने भी किया है।[40] कथासरित्सागर में किसी बटोही ने एक पैसे में आठ पूए खरीदे उनमें से छः पूए खा लेने तक उसका पेट न भरा, किन्तु सातवॉ पूआ खाते ही उसका पेट भर गया। यह देखकर चिल्लाने लगा कि हाय मैं लुट गया। यदि मै इस सातवें पूए को पहले खा जाता तो बाकी पूए नष्ट नही होते, इसी एक से ही पेट भर जाता।[41] यह वर्णन अयूपमुग्ध की कथा के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ में मोदक का बहुधा उल्लेख प्राप्त है। आलोच्य ग्रंथ में शब्दशास्त्रविदा रानी ने मां और उदक शब्द की संधि न जानने के कारण सातवाहन नरेश को जल क्रीडा के समय बहुत से मोदको (लड्डुओ) को मॅगवाने पर फटकारा था।[42] दूसरी तरह ऐसी कथाएं मिलती है जिसमे लोग लड्डू के लिए लालायित रहते थे तथा इसके लिए कष्टसाध्य कार्य भी करने को तैयार रहते थे।[43] कालिदास ने लड्डू को प्रिय व्यन्जन बताया है।[45] तिल के लड्डू का भी उल्लेख मिलता है।[46]

खाद्य पदार्थो मे गुड, घी, मधु तथा अन्य द्रव्य यथा रूचि के अनुसार मिलाते थे। दोनों समान महत्व रखते है और इनका मिलाना ऐच्छिक होता है इसे मिश्रीकरण

कहते है।[47] काशिका मे गुड, घी और तिल को मिश्रण योग्य माना गया है।[481] भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए नमक का भी प्रयोग किया जाता था।[482]

प्रारम्भ से मानव की प्रवृत्ति मास भक्षण की रही परन्तु धीरे—धीरे विभिन्न प्रकार के खाघान्नो के उत्पादन तथा अनाजो को तरह—तरह से प्रयोग करने के कारण मास पर निर्भरता कम होती गई। इसके कारण भारतीय समाज मे अन्न की महत्ता बढी तथा मास को निद्य माना जाने लगा। पूर्व मध्यकाल में गाय, बैल , भैस आदि पशु अवध्य माने जाने लगे। जब कि अन्य जंगल की जानवरो हिरण, बाघ एव बकरी , भेड आदि पालतू पशुओं , पक्षियो , का मास निरन्तर खाया जाता रहा। कथासरित्सागर में मांस खाने का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में अर्थवर्मा ने अपने अतिथि यशोवर्मा के सत्कार मे घी, मांस, भात, सत्तू तथा नाना प्रकार के समन्वित व्यन्जनों से निमन्त्रित किया।[49] मांस तथा भात[50] (मांसोदन) अधिक खाया जाता था। मास के लिए पशुओं का बध किया जाता था किन्तु ब्राह्मणो के लिए इसका निषेध था। जबकि राजाओं द्वारा मृगया खेलने के अनेक उल्लेख उपलब्ध है। निम्न वर्ग के लोग आखेट एवं मांस भक्षण एवं व्यवसाय में संलग्न थे। अतः स्पष्ट है कि मांसाहार निषेध के नियम विशेषतः ब्राहमणो के लिए लागू होते थे क्योंकि वे ही धर्म रक्षक माने जाते थे। परन्तु एक स्थल पर अल्बरूनी ब्राह्मणों द्वारा मांस खाने का उल्लेख करता है तथा वह लिखता[51] है कि ब्राह्मणो को गैंडे के मांस खाने का विशेष अधिकार था। सुलेमान ने भी गैंडे के मांस खाने का उल्लेख किया है।[52] लक्ष्मी घर[53] और चण्डेश्वर ने भी ब्राह्मणों के मांस खाने का उल्लेख किया है। ब्राह्मण तथा अन्य वर्ग के लोग देवताओं को चढाए जाने के उपरान्त प्रसाद स्वरूप मास लेते थे। सभी पशुओं का मांस खाना विहित नहीं था। श्री हर्ष के अनुसार जो पशु मनुष्य के लिए न तो हानिकारक है और न घृणित उनका मांस खाया जा सकता था।[55] अल्बरूनी[56] और लक्ष्मीधर[57] दोनो ने गाय, घोडा, खच्चर, गधा, ऊँट हाथी, पालतू कुक्कुर, कौआ, तोता, बुलबुल इत्यादि के मांस को वर्जित बताया है कथासरित्सागर में उल्लेख है कि विहित पशुओं की असुलभता के कारण निषिद्ध पशु का मांस भी खाया जा सकता है।[58]

मांस आखेट वे अतिरिक्त बाजार तथा हाट मे खुला बिकता था।[59] कथासरित्सागर में मांस बेचकर जीवन निर्वाह करके वाले को व्याध्र कहा गया है। उक्त ग्रंथ में एक

धर्म व्याध ने कहा— मै दूसरो के मारे हुए पशुओ का मां से अपनी जीविका के लिए बेचता हूँ। यह कार्य भी अपना धर्म समझकर करता हूँ, धन कमाने के लिए नही।[60] चाण्डाल और बहेलिए मांस भी खाते थे।[61] गाय तीनो लोको मे पूज्यनीय थी जो इसका मास खाते थे उनकी स्थिति चिन्तनीय मानी जाती थी[62] सामान्यतः बकरे का मास अधिक प्रचलित था।[63] कथासरित्सागर से तत्कालीन समाज मे मदिरा पान की लोकप्रियता तथा सर्वव्यापकता का पता चलता है। सुरा का प्रयोग जातक कालीन मानव समाज के द्वारा भी खूब किया जाता था क्योकि सम्पूर्ण ग्राम के सुराउत्सव मे न केवल पुरूष वरन् नारियॉ भी मांस खाद्य पदार्थो के साथ रूचिपूर्वक सुरा सेवन करती थी। सुरा स्थलो के उल्लेख के साथ शराब की बिक्री करने वाली दुकानो का वर्णन भी मिलता है।[64] नगर के जिस स्थान पर मधुशाला रहती थी वहॉ भीड रहा करती थी।[65] मद्य साधारणतः श्रीमानों के भोग विलास की सहचरी थी। इसे कामक्रीडा के सहायको मे प्रमुख माना जाता था। उच्चकुलों के युवक युवतियो के अलावा वेश्याओ आदि के घरों मे इसका खुलकर प्रयोग किया जाता था। यह माना जाता था कि सुरापान से युवतियॉ अधिक शोभित होती थी।[66] पूर्व मध्यकालीन ग्रंथों से पता चलता है कि समाज में अनेक प्रकार की मदिराएं प्रचलित थी जिसके गौडी, माहवी, मैरेय, आसव, मधु आदि अनेक प्रकार प्रसिद्ध थे।[74] विवाहोत्सव जैसे अवसर पर लोग मदिरा पान कर रंजन किया करते थे। विवाह एक ऐसा अवसर था जब आए हुए अतिथियों को मदिरापान कराया जा सकता था। 'नैवध चरित' से प्रकट होता है कि पत्नी के यहॉ पति के साथ आए हुए लोगों को मद्यपान के लिए कहा जाता था।[66.2] नववधू के ससुराल आने पर विवाहोत्सव में मद्यपान किया जाता था।[66.3] इसके अलावा विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक अवसरो पर भी सुरा—पान किया जाता था। कथासरित्सागर में एक स्थान पर मद्य को देवता का पसन्द बताकर महावत को खूब पिला दिया गया।[67] सुरा को और अधिक तीव्र बनाने के लिए धतूरा मिलाया जाता था।[69] देवस्मिता ने वैश्यपुत्रों एवं कुट्टनी को धतूरा मिला हुआ सुरा पिलाकर अपनी रक्षा की थी।[70] अधिक मद्यपान करने से सिर में वेदना होने लगती थी।[71] मद्य का सेवन समाज के सभी वर्ग के लोग करते थे। राजा,वैश्य तथा निम्न जातियों द्वारा मद्यपान के अनेकों उल्लेख मिलते है। जबकि अरब यात्री अल्बरूनी का कथन है कि आसव पान की अनुज्ञा शूद्र को ही थी। वह उसे पी सकता था।[72] लक्ष्मीधर के अनुसार ब्राह्मण के अतिरिक्त राजा और वैश्य मदिरापान कर सकते

थे।[73] रति और प्रीति के मध्य कामदेव के समान बैठे हुए राजा उदयन ने पान लीला (मद्यपान) में राज्यकार्य से बचे हुए दिन को व्यतीत किया।[75] सुरापूर्ण स्फटिक के अनेक चषको से भरी हुई राजा की पान भूमि प्रभातकालीन सूर्य की लाल किरणो से रक्त और श्वेत कमलो से युक्त कमललता के समान सुशोभित हो रही थी।[76] महाराज उदयन अपनी प्रिय आर्या वासवदत्ता के साथ और आसव भोजन पीकर सो जाता था।[77] अपने मत्रिमडल के सदस्यो के साथ पान गोष्ठिया भी करते थे।[78] वैश्य लोग भी मदिरा का खूब प्रयोग करते थे।[79] व्यापारियों द्वारा मदिरा पीने का उल्लेख राजतरगिणी में भी प्राप्त होता है[80] मदिरा पीने का वर्णन स्त्रियों द्वारा भी पुरूषो के साथ मिलता है। मदनलेखा वेश्या ने मदिरापान , संगीत आदि से राजा का मन अनुरंजन किया था।[81] उक्त नरेश ने आयशो लेखा रानी को प्रणय व्यापार मे अधिक मदिरा पिला दिया था।[82] इस ग्रन्थ से प्राप्त सूचनाओं से पता चलता है कि अभिजात वर्ग मे पत्नी और मित्रो के साथ मदिरा पी जाती थी।[83] विशेष अवसरो पर घर की स्त्रिया भी मदिरा पीती थी।[84] 'मालविकाग्निमित्रम्' में इरावती निपुणिया से कहती है कि मदिरा पीने से स्त्रिया बहुत सुन्दर लगने लगती हैं।[85] मद के कारण उनकी ऑखे झूमने लगती थी तथा वाणी की गति स्खलित हो जाती थी।[86] स्त्रियॉ मुख को सुगन्धित करने के लिए भी मद्यपान करती थीं।[87] सुन्दरी के लिये शेष मधु को उसी पात्र में पीना तथा अपने मुख से प्रिया के मुख में डालना आदि क्रियाओं को रतिप्रसंग का प्रारम्भिक सोपान समझा जाता था।[88] बहुत चाव से स्त्रियां ऐसा चाहती थी। और स्त्री पुरूष मुख–मधु के लिए लालायित रहते थे।[89] कथासरित्सागर के वर्णन के आधार पर कहा जा सकता है कि दिवस बेला में मदिरा पीकर जाना वर्जित समझा जाता था। इसीलिए गोमुख ने यौगन्धरायण के पुत्र का मजाक उडाया था।[90] उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि कथासरित्सागर कालीन समाज में मद्यपान का विशेष महत्व था। जिसमें क्षत्रिय वर्ग मदिरा का प्रेमी था। मद्यपान के लिए पान भू[91] का उल्लेख मिलता है जो कि मदिरालय थे। अभिजात घरों में एक पान–कक्ष अलग से रहता रहा होगा।[92] जिसमे नाना प्रकार की मदिराएं स्वर्ण कलशों एवं स्फटिक चषकों में करीने से सजे होते थे। तत्कालीन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में ब्राह्मणों के लिए मदिरापान पूर्णतः वर्जित करते हुए उसे महपातर माना गया है। यहॉ तक कि यदि भूल से बच्चे मदिरापान कर ले तो उनके माता–पिता को प्रायश्चित करना पड़ता था। स्मृतियो में केवल शूद्र पुरूषों को मदिरापान विहिता माना गया है परन्तु शूद्र

स्त्रियो को भी मदिरापान अविहित कहा गया है। धर्मशास्त्रो की यह व्यवस्था संभवत: पूर्णरूप से क्रियान्वित नही हो पा रही थी क्योंकि कथासरित्सागर में मदिरा से सबधित जो प्रसग प्राप्त होता है वे सामाजिक जीवन के यथार्थ को प्रतिबिम्बित करते है।

अन्य खाद्य पदार्थो मे आलोच्य ग्रथ मे शाक—भाजी का उल्लेख किया गया है। इसमे कटहल[93] और मूली[94] का उल्लेख प्राप्त है। घर के निकट शाकवाडा होता था। इसमे मूली होती थी। जिसमे सुन्दरक ने भूख लगने पर मूली को खाया।[95] उस समय मालवा की मूर्तियॉ प्रसिद्ध थी। सुन्दरक कन्नौज मे मालवा की मूलियो को बेचता था। इस प्राप्त धन से अपना जीवन—यापन करता था।[96] इसके अलावा ककडी का भी उल्लेख मिलता है।[97] सरसो[98] का वर्णन है, इसका शाक के तौर पर भी प्रयोग किया जाता रहा होगा। सरसो को सींचने के लिए पूरे खेत मे क्यारिया बनाते थे। शाकवाडा की सिचाई नहरों द्वारा होती थी।[99]

कथासरित्सागर में फलो का उल्लेख मिलता है। फलों में आम्र[100] दाडिम[101] (अनार) खजूर[102], जामुन[103], नीबू[104] और ऑवला[105] विल्ब फल का उल्लेख मिलता है। इसमें ऐसे सरोवर का वर्णन आता है जिसके रमणीय तट पर आम अनार औरा कटहल फल भार से नम्र झुके थे। नरवाहन दत्त ने सरोवर में स्नान करके थकावट दूर किया तथा सुगन्धित मीठे एवं तृप्ति कारक फलों का आहार लिया।[106] सोमदेव ने इन फलो के अतिरिक्त जगली फलों एवं कन्दमूल का उल्लेख किया है जिसका प्रयोग ऋषि , महर्षि, अरण्यवासी तथा जंगली जातियॉ करती थीं।[107]

भोजन करने के उपरान्त ताम्बूल (पान) प्रदान किया जाता था। पान की लताऍ होती थीं। जिसके पत्ते को खाने मे उपयोग किया जाता था। नागवासुकि का बडा भाई वसुनेमि उदयन के सम्मुख खडा होकर कहा— तुमने मेरी रक्षा की है अत: रमणीय स्वरवाली और स्वर मार्गो से विभक्त यह वीणा ग्रहण करो। साथ ही कभी न कुम्हलाने वाली यह माला तथा कभी न सूखने वाली यह पान की लता ग्रहण करो।[108] इस सदर्भ मे अरबयात्री इद रीसी ने पान की अत्यधिक प्रशं सा करते हुए लिखा है कि पान एक प्रकार का पत्ता होता था जो भारत में उत्पन्न होता है जब इसको चूना मिलाकर खाते है तब अनार के दानों की तरह दॉत लाल हो जाते है।[109] कुट्टनीमतम्

से ज्ञात होता है कि वेश्या के यहाँ जाने वाला भट्टपुत्र मुँह के अन्दर पान का बीडा रखे हुए था , जिससे उसका गाल फूला हुआ था।[110] देशी नाममाला से ज्ञात होता है कि दासियाँ प्राय· ताम्बूल तैयार करती थी।[111] कपूर आदि के सुयोग से ताम्बूल वीटक (ब्रीडा) को भरसक सुगन्धित बनाने की चेष्टा की जाती थी। इससे मुख सुगन्धित और कान्तिमय हो जाता था।[112] राजाओ से लेकर जनसाधारण तक द्वारा पान का सेवन किया जाता था किसी के लिए पान का आग्रह उत्पन्न सम्मान सूचक था।

वस्त्राभूषण

सोमदेव के विलक्षण प्रतिभा द्वारा कथासरित्सागर मे सामाजिक चित्र सफल रूप से प्रस्तुत हुआ है। इस ग्रंथ मे प्राप्त अलंकरण तथा सौन्दर्य वृद्धि के प्रसाधनो पर महत्वपूर्ण प्रकाश पडता है। भारतीयो की पारलौकिक चिन्ता, दर्शन और धर्मो के प्रति अनुराग का परिणाम यह हुआ कि भौतिक पक्ष का अपेक्षित विकास सम्पन्न होने से रह गया। अज्ञात के प्रति आध्यात्मिक विचार ही केवल भारतीय संस्कृति है, यह तो उसका एक अधूरा चित्र है। चारा पुरूषार्थो से समन्वित जीवन ही पूर्णता, गौरव और भारतीय आदर्शमय जीवन का लक्ष्य था।[113]

मानव के द्वारा मौसम, सुन्दरता और स्वास्थ्य एवं उपयोगिता की दृष्टि से भिन्न–भिन्न प्रकार के वस्त्रों की संरचना की जाती रही है। भारत में वस्त्रों का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता चला आ रहा है। सिन्धुघाटी सभ्यता के अवशेषों एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से वस्त्रों की जानकारी प्राप्त होती है। पूर्व वैदिक काल के मनुष्य विभिन्न प्रकार के वस्त्र और परिधान घारण करते थे। वे बुनाई तथा सिलाई की कला से परिचित थे। ऋग्वेद के अनेक स्थलो पर आर्यो के विविध प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख हुआ है। प्राय· वे नीवी (अधोवस्त्र) और अधीवास (उत्तरीय) का उपयोग करते थे।[114] सूती, रेशमी तथा उनी सभी प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। चीनाशुक का उल्लेख प्राप्त होता है।

कथासरित्सागर में स्त्रियो के वस्त्रो में कन्चुक का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें कन्चुक का मनोहारी वर्णन प्राप्त होता है। कन्चुक रंग–विरगे होते थे लेकिन इसमे धवल कन्चुक का मनोहारी वर्णन मिलता है।[115] कन्चुक स्त्रियां अपने वक्षों को ढकने के लिए पहनती थी। मानसोल्लास से विदित होता है कि स्त्रियाँ अपने स्तनो को वस्त्र से

हमेशा ढके रखती थी।[116] 'देशी नाममाला' मे भी स्तनो को ढकने के लिए दो प्रकार के वस्त्रो का प्रयोग हुआ है– स्तनयोरूपरि वस्त्रग्रन्थि· और कंचुक[117] स्त्रियों की चोली के लिए प्राचीन साहित्य मे 'चोल' और 'कूर्पासक' शब्द आए है, किन्तु यह नही बताया गया है कि इन दोनो में क्या भेद था।[118 1] कालिदास ने चोली अथवा कंचुक के लिए 'कूर्पासक' शब्द का व्यवहार किया है।[118 2] सोमदेव सूरि ने भी कचुक को चोली के अर्थ मे प्रयुक्त किया है उसने लिखा है कि कुषक बधुएँ कचुक पहनती थी जो उनके घटस्तनो के कारण फटे जा रहे थे।[118 3] कचुक को वार वाण भी कहा जाता था।[119] कल्हण ने जारी काम की हुई कचुक का उल्लेख किया है।[126] राजा हर्ष के पास सदा रहने वाली चचल भृकुटियो से विभूषित सुन्दरियॉ अपने स्तनों को अधबहियॉ कन्चुक से ढके रखती थी।[121] स्त्रियो के उपर के वस्त्र मे केवल कन्चुक होती थी।[122] कन्चुक स्तनों को ढकती थी तथा डोरी द्वारा बॉधी जाती थी।[123] 'ऋतुसंहार' से पता चलता है कि 'कूर्पासम' एक तरह की चोली थी जो स्तनो के पास कसकर बैठती थी।[124] मथुरा संग्रहालय मे ऐसी अनेक नारी मूर्तियॉ रखी है जिनके ऐसे परिधान देखे जा सकते है।[125] इस समय कन्चुक चोली पहनने की प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी विल्हण[126] और कल्हण[127] ने इसका उल्लेख किया है।

कथा सरित्सागर के अवलोकन से यह पता चलता है कि स्त्रियों का कन्चुक के अतिरिक्त दूसरा मुख्य वस्त्र 'अधोवस्त्र' या 'अर्न्तवासक' था। नारियॉ अन्तर्वासक वस्त्र के रूप मे साडियॉ तथा लहॅगे धारण करती थी। आधुनिक साडी के प्रयोग का उल्लेख महाभारत से प्राप्त होता है।[128] साडियों का सर्वत्र प्रचलन था। दीपारगंज की यक्षिणी मूर्ति की साडी एडियों तक पहुॅचती है। साडी मे पटका खोसा हुआ है और एक बडा दुपट्टा भी लटक रहा है। भरहुत स्तूप की दीवारों तथा अन्य स्थानों में उत्कीर्ण चित्रो में स्त्रियो को घुटनों तक साडियॉ पहने हुए दिखाया गया है। जो कि भारी करधनी तथा कमरबंद से बॅधी है। वारविलासिनी स्त्रियाँ केवल जॉघों के मध्य तक की साडी पहनती थी।

स्त्रियॉ प्रारम्भ से ही सौन्दर्य की उपासिका रही है। वस्त्रों ने उनकी इस भावना के प्रसार मे सुयोग दिया होगा। वस्त्रो के माध्यम से चित्ताकर्षक तथा श्रृंगार प्रसाधनों के सहयोग से चिर सुन्दर रहने की चेष्टा की थीं।[129] इसी क्रम में स्त्रियॉ

चित्ताकर्षक लगने के लिए विशेष अवसरो पर लहँगा पहनती थी और लहँगे के ऊपर शाल ओढ लेती थी।[130] स्त्रियो के लहँगे भूमि को स्पर्श करते थे।[131] घाघरा लहँगा को हेमचन्द्र ने जघनवस्त्र भेद से स्पष्ट किया है।[132] इसके अतिरिक्त स्त्रियॉ उत्तरीय धारण करती थी। कथासरित्सागर मे वर्णन आता है कि सुन्दरक की गुरू पत्नी ने उससे प्रणय प्रस्ताव रखा परन्तु सुन्दरक द्वारा इन्कार करने पर अपने उत्तरीय चादर को फाड कर पति से बोली कि सुन्दरक ने मेरी यह दशा की है।[133] इससे स्पष्ट होता है कि स्त्रियॉ सिर एव शरीर को ढकने के लिए उत्तरीय का प्रयोग करती थी। उच्च वर्ग की स्त्रियो के घर नाना प्रकार के पर्दे से सुसज्जित दिखाए गए है तथा उनमे अधिकतर उसके अन्दर रहती थी।[134] कथासरित्सागर मे उच्च वर्ग की स्त्रियो के जीवनचर्या, वार्तालाप तथा पर्दे के भीतर का मनोहारी चित्रण प्राप्त होता है।[135] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्त्रियो का मुख्य परिधान कन्चुक, साड़ी, लहँगा तथा उत्तरीय था। उच्च वर्ग की स्त्रिया पर्दे मे रहती थी।

पुरूषों के परिधानों का जहॉ तक प्रश्न है, पुरूष शरीर के ऊपरी भाग मे फतुई या मिर्जई की तरह का वस्त्र पहनते थे। इसमे आस्तीन कोहनियो के ऊपर रहती थी। इसके अतिरिक्त पुरूष एक उत्तरीय तथा दुपट्टा उपर की ओर ओढ़े रहते थे।[136] राजतरंगिणाी मे उल्लेख मिलता है कि कम्पनेश मदन अपने बालों को सॅवार कर बॉधे हुए थे और रंगीन सुन्दर अंगरखा पहन रखे थे जिसके कारण उसको राजा का कोप भाजन बनना पडा।[137] परन्तु राजा हर्षदेव ने इस संकुचित मनोवृत्ति का सदा के लिए अंत कर दिया। जिससे समस्त सामान्य जन को श्रृंगारिक वेष धारण की स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई।[138] राजा हर्षदेव ने अपने कर्मचारियो की दर्शनीय सजावट देखकर परिचारिकाओ द्वारा आरती उतरवाई।[139] इससे इतना अवश्य स्पष्ट है कि हर्षदेव वस्त्रालंकरण के प्रति उदार दृष्टिकोण का परिचय दिया।[139] पुरुष अंगरखा के अलावा 'कुर्त्तक' (कुर्ता), 'उष्णीय' (पगडी) धारण करते थे। स्नान के उपरान्त सर्प निर्माक के समान सफेद और चमकीली धोती पहनते थे। अलबरूनी कहता है कि पायजामों के अतिरिक्त वे पगडी इस्तेमाल करते हैं, जो लोग कम वस्त्र धारण करना चाहते हैं वे दो अंगुल चौड़ा एक कपडे का टुकडा लेकर उसे दो रस्सियों के साथ अपनी कमर में बॉधते है और वे इतने वस्त्र से सन्तोष कर लेते हैं। जो अधिक वस्त्र पहनना चाहते है

वे इतनी रूई भरे हुए पायजामे पहनते है जिससे कई दुलाइयॉ और नमदे बन जाए। इन पायजामो मे कोई सस्ता नहीं होता तथा ये इतने बडे होते है कि उनके पैर दिखाई नही देते। जिस डोरी से पायजामा बॉधा जाता है वह पीछे की ओर होती है।[140] साधु और यति लगोटी धारण किया करते थे। अलबरूनी ने जिस पायजामे का उल्लेख किया वह सम्भवतः काश्मीर जैसे है उत्तरी—पश्चिमी भारत के ठण्डे प्रदेशो के लोग ही पहनते रहे होगे।

कथासरित्सागर मे पट्टबध का उल्लेख हुआ है। नरेश यशोवर्मन ने प्रसन्न होकर अपने सेनापति और प्रतिहारी को पट्टबंध करके उसे रत्नों का उपहार प्रदान किया।[141] वसुदत्तपुर के शासक को कीर्तिसेना द्वारा ठीक करने पर राजा द्वारा उसके पति देवसेन का पट्टबर्धन किया गया।[142] पट्टबंधन की यह परम्परा पूर्व गुप्तकाल से ही प्रचलन मे थी। यह एक प्रकार का नागरिक सम्मान था। सोमदेव ने कथासरित्सागर मे गोपाल (ग्वाले) के वेशभूषा का अत्यन्त सटीक वर्णन प्रस्तुत किया है। जोकि अपने कंधे पर काला कम्बल धारण करते थे।[143] इस विवरण से स्पष्ट होता है कि ऊनी वस्त्र भी जनसामान्य में अधिक लोकप्रिय थे। साधु , सन्यासी तथा मुनिकन्याएँ वल्कल वस्त्रों को धारण करती थीं।[144] जनसामान्य तथा सन्यासी सिर पर पगड़ी बॉधते थे। वस्त्रो की रंगाई भी की जाती थी जिसमें सफेद, नीला[145.1], काला[145.2] आदि प्रमुख था। महाभारत मे भी अश्वत्थामा के वस्त्रों को नीले रंग का बताया गया है[146] मृगांकदत्त ने शरीर पर कस्तूरी का लप लगाने के बाद नीला वस्त्र पहन लिया।[147] कपड़े पर चित्रकारी भी की जाती थी।[148] 'चुलवग्ग' से विदित होता है कि षडवर्गीय भिक्षुणी विभिन्न रंगो के चीवन पहना करती थीं, यथा हरे , पीले, काले , कत्थई, लाल, नारंगी आदि के इस तरह आकर्षक उपयोगी वस्त्रो का प्रयोग जातक कालीन मानव समाज के द्वारा किया जाता था।

प्राचीन भारतीय संस्कृति मे अलकरण भारतीय, नर—नारी के मन की एक आवश्यक व कोमल इच्छा रही है। आभूषण के बिना नारी जीवन अधूरा माना जाता रहा। सिन्धु घाटी की स्भ्यता से स्पष्ट होता है निर्धन नारी ने अपनी अलंकरण इच्छा को मिट्टी से पके हुए आभूषण धारण करके पूरा किया। भारतीय आभूषणों से प्रभावित होकर कहा जा सकता है प्राचीन काल मे वस्त्र सादे और थोड़े थे तो आभूषण अधिक

और जटिल थे।[149] आलोच्य ग्रथ से पता चलता है कि केवल नारियॉ ही नही अपितु पुरूष भी आभूषण धारण करते थे। कथासरित्सागर के अनुशीलन से तत्कालीन समाज की अलकरण प्रिय मनोवृत्ति का पता चलता है। स्त्री तथा पुरूष दोनो हाथो की अगुलियो के अँगूठियो पर नाम भी अकित होते थे।[151] अल्बरूनी ने भी लिखा है कि स्त्रियॉ हाथ की अँगुलियो मे स्वर्ण की अँगूठियॉ पहनती थी।[152] इसमे ऐसी अँगूठी का उल्लेख है जो कि सभी प्रकार के सिद्धियो मे प्रयोग की जाती थी।[153]

सर्प के विष को दूर करने वाली अँगूठी श्रीदत्त को दैव्यकन्या ने प्रदान किया था।[154] मृगाकवटी राजकुमारी को सर्प काट लेने पर अँगूठी के प्रभाव से विष को दूर किया गया।[155] हाथ मे पहनने वाला दूसरा आभूषण 'ककण' (कडा) था। जिस पर नाम अकित होता था।[156] 'ककण' और बलय नामक अलकारों से कलाई को सुशोभित किया जाता था।[157] आज भी समाज में ककण (कगन) का प्रचलन है। हाथ मे कुछ कार्य करने पर कंकण (कंगन) शब्द करते थे।[158] 'अगद' भुजा में पहने जाने वाला आभूषण था।[159] हाथ में पहने जाने वाले आभूषणो में 'अंगद' और 'केयूर' अधिक प्रसिद्ध थे।[160] 'अंगद' रत्नो के अलावा मृगाल नाल के भी पहने जाते थे।[161 1] राजा मदनवेश को 'हार' और 'केयूर' पहने हुए अंकित किया गया है।

कथासरित्सागर में कान में पहने जाने वाले 'कुण्डल'[162] तथा 'तरंकी'[163] का उल्लेख मिलता है। कुण्डल स्वर्ण से निर्मित होता था जो कि राजाओं , राजकुमारों, एव धनी व्यक्तियो द्वारा उपयोग में लाया जाता था जबकि जनसामान्य द्वारा अन्य धातुओ का प्रयोग किया जाता रहा होगा। कान के अलंकारो में कुण्डल अधिक पहन जाते थे।[163 2] कल्हण ने कुण्डल पहने हुए सेविकाओ का भी उल्लेख किया है।[163 2] कान में पहने जाने वाले विशिष्ट आभूषण 'तरकी' स्त्रियॉ पहनती थीं जो कि बहुमूल्य होता था। इस पर मोतियॉ जडी होती थीं।[164] कल्हण ने भी कानों के 'तटङ्क (झुमके) का बहुत मनोरम चित्रण किया है।[165]

कथासरित्सागर में गले में पहने जाने वाले आभूषणें में माला, हार, मुक्ताहार, कण्ठाहार का नामाल्लेख हुआ है। माला सामान्यतः पुष्पों, मोतियो, स्फटिक तथा विभिन्न धातुओ एवं रत्नों का उल्लेख हुआ है। माला सामान्यतः पुष्पों से बनाया जाता था। वसुनेमि उदयन को कुम्हलाने वाली माला प्रदान किया।[166] यक्ष ने स्त्री को खेल–खेल

मे पुष्पो की माला से मारा जिससे वह झूठे अपने को मृतवान बना लिया।[167] पुष्प की मगल मालाओ को किसी मागलिक अवसर पर पहनाया जाता था।[168] विवाह आदि के अवसर पर 'अनश्वरी माला'[169] वधू को प्रदान की जाती थी। मोतियो से भी माला बनायी जाती थी जिसमे एक लडी वाले मोतियो की माला का उल्लेख है।[170] स्फटिक[171] की मालाओ का भी वर्णन है। कन्याएँ स्फटिक की माला धारण करती थी।[172] इसके अतिरिक्त सन्यासी लोग रूद्राक्ष की माला को धारण करते थे। इससे साधु लोग जप करते थे। रूद्राक्ष[173] का उपयोग धार्मिक कार्यो में किया जाता था। माला के साथ ही हार[174] का वर्णन आता है जो कि बहुमूल्य होता था। मुक्ताहार[175] भी सोने का होता था। कण्ठाहार का भी उल्लेख है। हर्ष के समय भी स्त्रियो का वक्षस्थल आकर्षक हारो से अलकृत रहता था।[176] स्त्रियॉ जघन स्थल के निकट मेखला[177] (करधनी) पहनती थीं जोकि साडी को कसे रखती थी। स्वर्ण तथा मणियों का उल्लेख मिलता है जिससे पता चलता है कि ये स्वर्ण तथा मणियो से बनी होती थी। मेखला (करधनी) में नूपुर लगे होते थे जिससे शब्द का भान होता था।[178]

सोमदेव द्वारा पैरों में धारण किए जाने वाले आभूषण नूपूर[179] (पायजेब) का विवरण दिया गया है, पर ध्वनि करते थे। एक आकृति के दोनो पैरो के नुपुर होते थे। ये नूपुर चलने पर आवाज करते थे।[180] नूपुरों में घुॅघरू लगे होते थे। पैरों की ॲगुलियों में 'उर्मिका' और 'आॅगूलियक' पहना जाता था।[181]

केवल आभूषणों का प्रयोग ही सौन्दर्य वृद्धि के लिए नही किया जाता था अपितु सौन्दर्य प्रसाधनों का प्रयोग पहले की भॉति इस समय भी हो रहा था। इस सौन्दर्य प्रसाधन का प्रयोग स्त्री तथा पुरूष दोनों के द्वारा किया जाता था। सर्वप्रथम शरीर में उबटन[182] तथा मालिश[183] की जाती थी। हल्दी के उबटन का उल्लेख है।[184] उबटन के उपरान्त स्नान किया जाता था। स्नान के समय सिर मे आमलक लगाया जाता था।[185] स्नानोपरान्त सम्पूर्ण शरीर पर चन्दन–कस्तूरी से बना हुआ सुगन्धित चूर्ण 'अंगराग'[186] सारे शरीर पर लगाया जाता था। अगराग ऐसी सुगन्धित होता था कि धुल डालने पर भी शरीर सुगन्धित रहता था। अंगराग के अलावा इत्र[187] आदि का भी प्रयोग किया जाता था। लोग अपने शरीर पर चंदन का लेप[188] भी लगाते थे। श्वेतवर्ण, स्वर्णवर्ण तथा लाल वर्ण के चंदन 'अंगरागो' का प्रयोग राजकुल परिवार में अत्यधिक

किया जाता था।[189] इसके अलावा पैरों मे भी लेप लगाया जाता था। 'आल्तक' का प्रयोग स्त्रियॉ पाद सज्जा के लिए करती थीं।[190] नेत्र की सुन्दरता बढाने के लिए स्त्रियॉ काजल का प्रयोग करती थीं। कथासरित्सागर मे सातवाहन राजा की जलक्रीडा के समय रानियो के काजल घुलने का अत्यन्त मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[191] 'सिन्दूर', 'गोरेचन', तथा 'लाक्षारस' का प्रयोग शरीर पर श्रृगार करने के लिए किया जाता था जो कि आज भी भारतीय नारियों द्वारा शरीर पर श्रृगार करने के लिए प्रयोग केया जाता है।

इस प्रकार तत्कालीन समाज मे मौसम, सौन्दर्य वृद्धि, शारीरिक आवश्यकता आदि महत्वपूर्ण दृष्टिकोणों को ध्यान मे रखकर वस्त्रो , आभूषणो तथा सौन्दर्य प्रसाधनो का प्रयोग किया जाता था। स्त्री और पुरूष दोनो ही विभिन्न प्रकार के आकर्षक वस्त्रो , अलकारो एव सौन्दर्य प्रसाधनों से शरीर की साज–सज्जा करते हुए उल्लासमय जीवन व्यतीत करते थे।

मनोरंजन के साधन

भारतीय समाज में प्राचीन काल से ही मनोरंजन और आमोद–प्रमोद का विशिष्ट स्थान था। कथासरित्सागर की रचना का एक मुख्य उद्देश्य मनोविनोद था। इस ग्रंथ में मनोरंजनात्मक कहानियाँ का विपुल भण्डार है। कहानियों चाहे मृगया से सम्बन्धित हो या प्रणय सम्बन्धी या लोमहर्षक या बेतालो से सम्बन्धित या मूर्ख आदि से सम्बन्धित, ये सभी कहानियॉ समाज के सभी मनोभावों के व्यक्तियो का उनकी रूचि के अनुसार उनके मन का रजन करने मे पूर्णतः समर्थ है।

कथासरित्सागर के अध्ययन से मनोविनोद एव मनोरंजन की विविध प्रविधियो की जानकारी प्राप्त होती है। इस ग्रथ मे राजा से लेकर जनसामान्य तक के लोगों का चित्तरजन सम्बन्धी विवरण यत्र–तत्र कथाओ में छिटके हुए हैं। इसमें राजा, रानी राजकुमार तथा राजकुमारियॉ, रानियॉ आदि के मनोरंजन की जानकारियॉ मिलती हैं। उनकी एक रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है।

राजाओं तथा सामन्तों के दरबार में इनके मनोरंजन के लिए नर्मसचिव[192] की नियुक्ति की जाती थी। इसे विदूषक भी कहा जाता था। विदूषक के बारे में जानकरी

'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' से भी होती है जो प्रत्येक समय राजा दुष्यन्त के साथ रहकर के उनका मनोविनोद करता था।[193] इसके अलावा राजा के सगतक[194] नामक सेवक होते थे जो राजा को कहानी सुनाते थे। प्राचीन काल मे राजाओ के यहॉ ऐसे सेवक होते थे जो रात के समय राजाओ के शरीर–पैर दबाते हुए मनोरजक कहानिया सुनाते थे, ताकि राजा को शीघ्र और अच्छी नीद आ जाए।[195] विदूषक भी अच्छी अच्छी कहानियॉ जानते थे। विदूषक बसन्तक ने वासवदत्ता को हास्य के पुट से सरस एवं विचित्र एक कहानी सुनाया।[196] विदूषक कहानियो के अलावा अपना रूप हास्य जनक बना लेते थे।[197] ये राजभवन मे राजा रानी तथा कभी–कभी राजभवन मे नागरिको को भी आनन्दित करते थे।

आलोच्य ग्रंथ में मृगया एक प्रमुख मनोविनाद का साधन था। पतजलि ने मृगया के संदर्भ मे 'मृगान रमयति' का उल्लेख किया है।[198] मृग का शिकार करने वाले को मार्गिक कहा जाता था। राजा बहुत से अनुयायियो के साथ रथ या घोडे पर चढ़कर जगल में शिकार खेलने जाते थे।[199] वे ज्योतिष गणकों से लग्न पूछकर निर्धारित शुभ लग्न में मृगया के लिए प्रस्थान करते थे।[200] राजा शिकार पर निकलने के पूर्व मृगया के लिए नियुक्त गुप्तचरों को जंगल में पहले भेजते थे जिससे शिकार आदि की जानकारी होती थी।[201] राजा मृगया के बहाने अपने सैनिकों को अभ्यास भी कराते थे। कथासरित्सागर में वर्णन है कि व्यायाम , लक्ष्यवेध और शस्त्रों आदि के अभ्यास आदि के निमित्त ही राजाओं के लिए शिकार का विधान किया गया। बिना अभ्यास के राजा लोग युद्ध में सफल नहीं होते थे।[202] इसके अतिरिक्त राजा द्वारा मृगया का दूसरा उद्देश्य कि जगली हिरण जन्तु आदि पृथ्वी को प्राणियो से सूना कर देना चाहते है, इसलिए वे राजाओ द्वारा मारे जाने योग्य हैं। इसलिए भी शिकार करना आवश्यक है।[203] कालिदास ने इसकी प्रशसा करते हुए कहा कि मृगया के कारण चर्बी छॅट जाती है तथा इसके परिणास्वरूप कटि प्रदेश पतला एवं शरीर हल्का और उठाने योग्य हो जाता है।[204] आखेट के लिए गड्ढे खोदते थे, शिकारी कुत्तों एवं जाल का भी प्रयोग किया जाता था।[205] कथासरित्सागर में मृगों, शूकरो, जंगली भैंसों, सिंहों आदि के शिकार का वर्णन मिलता है। शिकार में राजा उदयन अपना वेष जंगल के अनुसार हरे पत्ते की तरह बना लेता था। इस क्रीडा में कीचड से सने हुए शूकरो के झुण्डों को वह

बाणो से बेधकर मार देता था। कृष्णसार मृगों का पीछा करने पर वे ऐसे मालूम होते है। मानो पूर्वकाल मे विजय की हुई दिशाएँ उस पर कटाक्षपात कर रही हो।[206] जबकि जगली भैसो को मारने के कारण उसके रक्त से रंजित वनभूमि ऐसी मालूम होती थी मानो वन कमलिनी राजा की सेवा के लिए उपस्थित हुई हो।[207] मुँह फाडे हुए भालो से बिधे हुए मुँख वाले सिहो को देखकर राजा प्रसन्न होता था।[208] सोमदेव ने नरवाहनदत्त के मृगया भूमि का काव्यात्मक ढंग से उत्कृष्ट वर्णन किया है कि वह मृगया भूमि बडे—बडे हाथियों के कुम्भस्थलो को फाडने वाले, मारे हुए सिंहो के नखों से गिरे हुए मोतियो से ऐसी मालूम हो रही थी, मानो उसमें बीज बोये हैं। भालों से मारे गए हरिणो के शरीर से निकलकर फैले हुए रक्त से, मानो लाल पल्लवो से युक्त मालूम हो रही थी। बाणो से बिधे गए सुअरो से, मानो गुच्छो से भरी हुई और शस्त्रो के शरीरो से मानो फल वाली मालूम हो रही थी। उस भूमि में भयकर सनसनाहट के साथ बाण छूटरहे थे। ऐसी यह जंगली मृगया भूमि विचित्र शोभा धारण कर रही थी।[209] कालिदास के ग्रंथों में भी आखेट के विस्तृत विवरण मिलते हैं। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमारगुप्त आदि गुप्त सम्राटों के सिक्कों पर व्याघ्र आखेट के चित्र अकित किए गए है।[210] कथासरित्सागर के आलोक में यह पता चलता है कि निम्न जातियो द्वारा आखेट उनके लिए एक प्रकट का व्यवसाय था। अलबीरूनी ने आखेट के विभिन्न तरीकों का उल्लेख किया है जो उन दिनों भारत में प्रचलित था। मृग, बारहसिंगे तथा अन्य पशु पक्षियो का शिकार उन दिनों प्रचलित था।[211] आखेट प्रारम्भ से ही धनी लोगो का प्रिय व्यसन रहा है। प्रारम्भिक मध्ययुग में सुप्रशिक्षित श्वान और बाज के माध्यम से शिकार करते थे।[212] मछली का शिकार कटिया लगाकर करते थे।[213]

कथासरित्सागर से पता चलता है कि द्यूत—क्रीडा राजाओं तथा जन सामान्य के मनोरंजन का प्रिय साधन था। जहाँ आखेट सामान्यतः श्रीमानों के अनुरन्जन का माध्यम रहा होगा वही अछूत जनसामान्य का भी लोकप्रिय मनोरंजन था।[214] द्युत क्रीडा में निहित बुराइयों को समझते हुए भी मानव इस क्रीडा मे आनन्द लेते थे वैसे सामान्यतः द्यूत क्रीड़ा में नर भाग लेते थे। किन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य में नारियों द्वारा भी द्यूत क्रीड़ा से आनन्द लेने का वर्णन उपलब्ध होता है। वनमाला भावलकर के अनुसार द्युत प्रायः पुरुषों की क्रीड़ा थी। किन्तु भगवान शंकर के निर्देश से प्रतीत होता था कि

स्त्रियो के लिए अक्ष क्रीड़ा पर प्रतिबन्ध नही था।[215] कथासरित्सागर मे राजाओ के द्वारा द्युत क्रीडा मे भाग लेने के अनेको प्रकरण उपलब्ध है। प्रारम्भिक अवस्था मे मालवनरेश श्रीसेन द्यूत क्रीड़ा मे विशेष अभिरूचि लेता था।[216] भीलराज का अपने प्रतिहार चण्डकेतु के साथ जुआ खेलने का वर्णन है।[217] वाराणसी नरेश विक्रमचण्ड का प्रिय सेवक सिहविक्रम जुआ (द्युत) खेलने मे अतिनिपुण था,[218] जो द्युत क्रीडा से पर्याप्त धन अर्जित किया था।[219] अन्य विवरणो से पता चलता है कि राजा जुआ खेलते थे। राजा चन्द्रापीड ने जुआ खेलना सीखा था।[220] अडभूत जातक का धार्मिक राजा और पुरोहित जुआ खेला करते थे।[221] राज्यो मे द्युतक्रीडा से सम्बन्धित द्युताध्यक्ष की नियुक्ति राज्य द्वारा की जाती थी। जो जुआघर मे साफ कौड़ी और पासे रखवाते थे।[222] विधुर जातक का राजा द्युतशाला मे जाकर नारियो के बीच पुष्पक यक्ष से जुआ खेलने लगा। उस यक्ष ने नरवीर श्रेष्ठ राजा का सर्वस्व जीत लिया। धर्मराज युधिष्ठिर ने अपने राज्य के साथ अपनी पत्नी द्रोपदी को भी जुएँ के दॉव पर लगा दिया था। महाभारत मे वर्णित नल ने अपने राज्य को जुंएँ में गवॉ देने के उपरान्त अपनी पत्नी दमयन्ती को कठोर, कष्टकारक जीवन व्यतीत करने के मार्ग पर अग्रसर किया था। राजा वर्ग भी द्युतक्रीडा में निहित बुराइयों को समझते हुए भी इस क्रीडा मे आनन्द लेते थे।

राजाओं के अलावा समाज के अन्य वर्णो एवं वर्गो के व्यक्ति जुए के व्यसनी थे। एक ब्राह्मण युवक अपने माता पिता की मृत्यु के उपरान्त परिवार में कोई दूसरा न होने के कारण जुए के व्यसन में पड गया। वह जुए मे अपना समस्त धनसम्पत्ति हार गया। भूख प्यास तथा कपडे न होने के कारण लज्जा से वह निकल नहीं पाता था।[224] धनदत्त नामक एक धनी व्यापारी का वर्णन मिलता है जिसको दुर्जनो ने द्युत आदि व्यवसनो मे डाल दिया। जिसने अपनी समस्त सम्पत्ति को नष्ट कर दिया तदुउपरान्त धनी व्यापारी की एकलौती कन्या से विवाह करके उसकी कन्या की हत्या करके समस्त आभूषण लेकर भाग गया।[225] कथासरित्सागर मे ऐसे व्यसनी नवयुवक का उल्लेख है जो कि जुएँ मे अपना समस्त धन अनुभवी जुआडियों से हार गया था।[226 1] एक ऐसा वृद्धा वर्णन है जिसका नालायक बेटा जुआडी था। जो वृद्ध मा का वस्त्र ले जाकर जुआ खेल डाला।[226 2] जुआड़ियो के चरित्र का वर्णन सोमदेव ने किया है उसने जुआडियो को अविश्वसनीय बताया है। जिनके हृदय में न मित्रता , न घृणा और न परोपकार ही छूता

है ऐसे छलमात्र विधा वाले जुआडियो पर कैसे विश्वास किया जा सकता है।[227] बलजोरी तथा किसी की परवाह न करना, ये दोनों गुण जुआडियो मे रहते ही है।[228] द्युतक्रीडा मे कुछ नियमो की जानकारी भी प्राप्त होती है जो कि जुआडियो मे परम्परागत रूप से विद्यमान रही होगी। जब तक जुआ खेजने वाला निषेध न करे तब तक जुआ खेलना मजूर समझा जाएगा।[229] ठग, लोगो को ठग करके धन लाते थे उसको जुए मे हार जाने पर पुन. वह धन प्राप्त करने के लिए ठगी कार्य नही करते थे अपितु द्युतक्रीडा के नियमों को ईमानदारी के साथ स्वीकार कर लेते थे। भीम भट जुआडियो का समस्त धन जीतने के उपरान्त वह धन वापस करने लगा तो लज्जा के कारण वे जूआड़ी उस धन को वापस नही लेना चाहते थे।[230] उनमे से एक अक्ष क्षपणक नामक जुआरी ने कहा कि निश्चय ही जुए की यह परिभाषा है कि जीते हुए धन को वापस नहीं देना चाहिए जब ये मित्र बनकर हम लोगो को स्वेच्छा से जीता हुआ धन दे रहा है तब हम इसे क्यो न ले ले।[231] जुए मे दास बनने की भी शर्त रखी जाती थी। इसमें जो जुआ में हार जाता था, वह जीतने वाले का दास बन जाता था।[232]

कथासरित्सागर में जुआड़ियो के हारने के उपरान्त उनके वीभत्स रूप का वर्णन मिलता है। पुराने लोग मानते थे कि जुए से लोगो का सर्वनाश भी हो जाता है द्युतक्रीड़ा पतन की ओर जाने वाला दुर्व्यसन है। ऋण उतारने के लिए अपने आपको दूसरे के यहॉ दास तक बनना पड जाता था। सोमदेव ने जुए की एक यातना का वीभत्स रूप उज्जयिनी के ठिण्ठाकराल नामक पात्र के रूप मे वर्णित किया है। जो जुए मे हारने के उपरान्त श्मशान को अपना निवास बनाया। जीते हुए जुआड़ियों से प्रति एक सौ कौडिया लेता था। उन कौडियो से आटा खरीद कर खप्पर में आटा गूँथकर शवदाह की लकडियो की आग मे सेककर महाकाल के आगे जलते हुए दीप से घृत लेकर भक्षण करता था। रात में महाकाल मंदिर के ऑगन मे बॉह की तकिया लगाकर भूमि पर ही सो जाता था।[233] एक दूसरे स्थल पर जुआडियों के सामान्य नियति का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है। जुए के पाप का व्यसन ऐसा होता ही है। पासे दरिद्रता को निमन्त्रण देते हैं। जुआ खेलने वाले के हाथ ही उनके शरीर के ढकने के लिए वस्त्र हैं, धूल ही बिछौना है, चौराहा ही घर है और सर्वनाश ही उनकी स्त्री है, ऐसी व्यवस्था विधाता ने ही की है।[234] कथा सरित्सागर के अध्ययन से पता चलता है कि प्रत्येक नगर

मे द्युत शालाएँ होती थी। जहॉ पर सारे जुआडी एकत्र होते थे।[235] मालव नरेश श्रीसेन स्वय अपनी युवावस्था मे जुआ सदृश दुर्गुण का शिकार हुआ था। अतः उसने इस कष्ट का अहसास करते हुए जुआडियो के लिए एक बहुत बडा मठ बनवाया। जिसमे रहने वाले जुआडी अपनी इच्छा के अनुकूल भोजन पाते थे।[236]

आलोच्य ग्रथ के अनुशीलन से द्युतक्रीडा के सर्वव्यापकता का पता चलता है। कलिग[237], लाट[238], वर्धमान[239], वाराणसी[240], उज्जयिनी[241], मालवा[242] आदि क्षेत्रो मे द्युतक्रीडा का पता चलता है। इसमे अक्षपातक के बारे मे हमें कोई जानकारी नही प्राप्त होती है। जबकि धूर्त खिलाडियो का उल्लेख इसमे प्राप्त होता है।[243] बेडमान खिलाडियों के लिए अर्थशास्त्र मे कडे दण्ड की व्यवस्था की सूचना प्राप्त होती है।[244] कथासरित्सागर मे भी ऐसे जुआडियों का वर्णन है जिन्होंने कमर मे एक वस्त्र पहन रखा था, फिर भी उनके सुन्दर, सुदृढ और सुपुष्ट अंगो के द्वारा ऐसा जान पडता था कि वे सुखी जीवन बिताने वाले व्यायाम करने वाले थे। उन्हे देखकर यह भी जान पडता था कि वे धनाढ्य है यद्यपि अपना धन उन्होंने छिपा रखा था और अर्थोपर्जन के लिए ही वे इस काम मे लगे हुए थे।[245] कथासरित्सागर में द्युतक्रीडा के उन्मूलन के साक्ष्य नही दिखाई पडते जबकि द्युत के उन्मूलन हेतु गुजरात के शासक कुमान पाल ने सराहनीय कार्य किया था।[246] इस प्रकार द्युतक्रीडा एक प्रकार के मनोरंजन का साधन था परन्तु इस क्रीडा के व्यसनी बनने पर लोगों के दुःखमय जीवन की झलक भी मिलती है।

विहार यात्रा

पुरूष और नारियॉ अपने साथियों के साथ एकत्रित होकर उद्यानों मे क्रीडा करने जाते थे। यह आधुनिक कालके पिकनिक की भॉति था। वात्स्यायन ने उद्यान गमन को उद्यान यात्रा बताया है। विभिन्न प्रकार के आभूषणों से सजधज कर घोडे पर सवार होकर उद्यान यात्रा के लिए प्रस्तुत नागरिकों का उल्लेख मिलता है।[247] प्राचीन काल में प्रत्येक मुख्य नगर के चारों ओर उद्यान बने होते थे जहॉ जनता मनोरंजन करती थी। ये उद्यान आरामदायक तथा सुखदायक साधनों से युक्त होते थे।[248] कथासरित्सागर मे उल्लिखित है कि वर्षा ऋतु मे राजकुमार अपने मित्रों के साथ विहार हेतु गंगातट पर गया। वहॉ जाकर राजकुमार का भृत्यों ने विनोदक्रीडा में राजा बना दिया।[249] इस ग्रंथ में 'वसन्तोत्सव'[250] का भी विवरण है। जिसमें राजा तथा अन्य लोग

वसन्तोत्सव में भाग लेने के लिए उद्यान मे जाते थे।[251] इस आधार पर उद्यान मे मेला लगता था। जिसमे युवक तथा युवतियॉ बढ चढकर हिस्सा लेते थे। आरामदायक तथा सुखदायक साधनो से युक्त इन उद्यानो में सुगन्धित जल से परिपूर्ण पुष्करिणियॉ होती थी तथा सभी प्रकार के पुष्पित, सुगंधित पौधे व वृक्ष होते थे। जहॉ मधुर आवाल मे मनोहारी पक्षी चहकते रहते थे। जातकों मे वर्णन मिलता है कि अनेक अनुयायियो के साथ राजा उद्यान क्रीडा करने हेतु उद्यानो मे जाते थे तथा पूरे दिन उद्यानो मे मौज मस्ती करते थे। इन उद्यान क्रीड़ाओ मे तरूण कोमलागी युवतियॉ भी उनके साथ रहती थी।[252] हरिवंश पुराण मे उद्यान क्रीडा के विषय में लिखा गया है कि कृष्ण की रानियां अपने देवर नेमिनाथ के साथ उद्यान क्रीडा करने लगी। कोई कोमलागी चुम्बन करने लगी, कोई स्पर्श करने लगी, तदुपरान्त पुरूष व नारियॉ फूल से निर्मित शैयाओं पर विश्राम करने लगे[253] बसन्तोत्सव की धूमधाम मे नागरिक व्यस्त रहते थे। यह बसन्त के आगमन की प्रसन्नता के उपलक्ष्य मे एक सामाजिक अभिव्यक्ति थी।[254] इसका आयोजन ठाट–बाठ से होता था और नागरिक नगर की सजावट देखने जाते थे। इस अवसर पर प्रेमी और प्रमिकाओं को मिलन का सुअवसर मिलता था। ऐसी निशा मे बसन्तोत्सव की पूर्ण वासन्ती चन्द्रिका छिटकी रहती थी इस समय के समग्र वातावरण में रति विलास और सगीत की प्रधानता होती थी। उक्त अवसर पर प्रिय निकुंजो मे प्रेयसी के कण्ठ को घने पुष्पों की माला से सजाता था।[255] उद्यानक्रीडा के सम्बन्ध मे मातुग जातक में कहा गया है कि वाराणसी के श्रेष्ठि की पुत्री विट्ठमंगलिका अपनी सखियो के साथ दो–दो महीने तक उद्यानक्रीडा किया करती थी।[256] उद्दालक जातक से पता चलता है कि वाराणसी के शासक का राजपुरोहित उद्दालक अपनी गणिका को उद्यानक्रीडा के निमित्त वृक्षो के बगीचे में ले जाता था। इस उत्सव की सूचना अवदान शतक से की से भी मिलती है जिसमे कहा गया है कि एक बार जब बुद्ध जतेवन मे रूके हुए थे उस समय ''शाल भञ्जिका'' उत्सव मनाया जा रहा था। कई हजार व्यक्ति उसमें सम्मिलित होने के लिए उपस्थित थे। फलो से लदे हुए साल वृक्षों के पुष्प चुनकर वे एक दूसरे से क्रीडा और प्रमोद करने मे व्यस्त थे।[257 1] बसन्तात्सव में नागरिक स्त्रियॉ आनन्द नृत्य करती हुई गाना गाती थी।[257 2] इससे स्पष्ट है कि यह उद्यान क्रीड़ा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी जिसका वर्णन सोमदेव ने किया है।[258] कथासरित्सागर में 'इन्द्रोत्सव' का भी उल्लेख मिलता है। 'इन्द्रोत्सव' के अवसर पर नागरिक लोग नगर

की शोभा देखने निकलते थे। इस उत्सव मे अविवाहित युवक तथा युवतियॉ विशेष उत्साह के साथ नगर मे घूमते थे।[289] 'मदनोत्सव' मे भी उघान मे मेले का आयोजन होता था। इस उत्सव में उद्यान के अन्दर कामदेव की प्रतिमा स्थापित रहती थी।[260] अविवाहित कन्याए उद्यान मे अपने योग्य पति पाने हेतु आराधना करती थी। इस अवसर पर वेश्याएँ भी उपस्थित होती थी।[261] ये मेले सामान्यतः प्रणय व्यापार के प्रमुख केन्द्र होते थे।[262]

इस सन्दर्भ मे तांत्रिक उपासना पद्धति की लोकप्रियता का प्रमाण प्रतीत होता है। तत्कालीन भारतीय समाज मे इस प्रकार के उपासना के प्रति घोर आस्था थी।[263] तात्रिक ग्रन्थों मे मैथुन सम्बन्ध को धार्मिक अनुष्ठान का अग माना जाता था। कथासरित्सागर मे 'सुखोत्सव'[264] जलक्रीडा का भी उल्लेख है जिससे पता चलता है कि राजा इन्दीवर प्रभा का आलिगन करके और नवीन संगम की उत्कंठा से युक्त सरस 'सुखोत्सव' मनाया। 'सुखोत्सव' वर वधू का प्रथम मिलन प्रतीत होता है।

उद्यान क्रीड़ाओ के बाद अतिमनोरंजन प्रदान करने वाली 'जलक्रीड़ा' होती थी। कथासरित्सागर में नन्दनवन में महेन्द्र के समान बहुत काल तक उस उद्यान में अपनी रानियों के साथ विहार करता हुआ राजा सातवाहन बावली के जल में रानियो के साथ जलक्रीडा के लिए उतरा।[265] राजा जल केलि में अपने हाथ से पानी के छीटों द्वारा अपनी रानियों के मुखों को सीचनें लगा। रानियॉ राजा को उसी प्रकार सींचने लगी जिस प्रकार हथिनियॉ हाथी को सीचती है।[266] सोमदेव ने वर्णन किया है कि जलक्रीडा मे रानियॉ ऑख के काजल धुल जाने से, लाल नेत्रों से और पानी निकलने से वस्त्रों का अंगो मे चिपक जाने के कारण स्पष्ट दीखते हुए शरीर के भिन्न–भिन्न अवयवो से के राजा का मन हरण करने लगी।[267] जलक्रीडा में वायु के समान राजा ने अपनी उन को वन की लताओ के समान कर दिया। वन में वायु लताओ प्रियतमाओं के पत्ररूपी तिलक को हटा देता है और पुष्प रूपी आभरणों से रहित कर देता है। उसी प्रकार राजा ने रानियो के पत्रावली रूपी तिलक को पानी के छीटों की बौछार से धो डाला और पुष्पों के समय शोभित उनके आभरणो को भी उतरवा डाला।[262] जलक्रीडा करते–करते राजा की शिरीष पुष्प के समान एक सुकुमार रानी क्लान्त होकर खेलती–खेलती थक गई।[269] जल क्रीडा का विस्तृत वर्णन हमें अन्य ग्रंथों में भी प्राप्त

आदि का मनोरजन मे सक्रिय योगदान था।[276] राजकीय परिवार के सभी सदस्यो का अन्य प्रिय मनोरजन सुन्दर नाट्यकला, संगीत शास्त्र विशारद, मनोरंजन मे निपुण नारियो के सगीत, नृत्य एव गायन मे आनन्द विभोर हो जाना था।[277] राजा लोग संगीत के प्रेमी के साथ–साथ संगीत के विशेषज्ञ भी होते थे। राजा उदयन सगीत शास्त्र का विशेषज्ञ था[278] जो वीणा के सगीत द्वारा मदोन्मत्त जंगली हाथियो को वश में कर लेता था[279] राजाओ के यहॉ संगीत शालाएँ होती थी जिसमे सगीत की शिक्षा प्रदान की जाती थी।[280] वीणा को गायन के साथ –साथ बजाया भी जाता था।[281] अन्य ग्रंथो से भी सूचना मिलती है कि वीणा का वादन देवी देवताओ के सामने भी होता था।[283] वीणावादन की उत्तर मार्गी तथा दक्षिण मार्गी संगीत शैलियां थी। जिसमें वर्णन है कि सुन्दरी ने रत्नमय शिवलिंग को विभव के अनुसार भॉति –भाँति के भोगो से पूजकर दक्षिण मार्गी दक्षिणत्व कर्नाटक सगीत शैली का अवलम्बन करके मनोयोगपूर्वक स्वर ताल और चरण विन्यास के साथ भली–भॉति गाती हुई वीणा को बजाने लगी।[284] वीणा के अतिरिक्त संगीत का दूसरा वाद्य नगाडा[285], ढोल,[286 1] शंख[286 2] का उल्लेख मिलता है। जोकि उद्घोषणाओं के साथ–साथ ये लोगो के चित्रो का रंजन भी करने मे सफल था। घरों में उत्सव के समय भी ढोल तथा नगाडे को बजाया जाता था।[287] राजा की विजयो, पुत्र जन्मोत्सव आदि अवसरों पर मृदंग[288], शहनाई[289], बॉसुरी[290] आदि वाद्यों को बजाया जाता था। वाद्य के साथ–साथ गायन भी होता था। वाद्य को गायन स्वर से मिलाया जाता था।[291] विवाहोत्सव के समय वेश्याओं, नर्तकियो , बदियो ओर भाटों द्वारा गान गाया जाता था। जिससे सम्पूर्ण वातावरण संगीतमय हो जाता था।[292] राजदरबार मे गीत के लय के साथ–साथ नृत्य भी किया जाता था।[293] राजकुमारियों को वाद्य के साथ–साथ नृत्य विधा की भी शिक्षा दी जाती थी। जिसमे केवल अंगो का विक्षेप किया जाता था।[293 2] भील युवतियो द्वारा भी नृत्य करने का उल्लेख है।[294 1] यशस्तिलक मे सगीत, नृत्य, गान आदि का वर्णन हुआ है। सात प्रकार के स्वरो का उल्लेख मिलता है।[294 2] सोमदेवसूरी ने तेइस प्रकार के वाद्य यन्त्रों की सूची दी है जिसमें शंख , काहला, दुदुभि, वीणा झल्लरी, बल्लकी, पुष्कर, ढक्का, आनक , भम्भा, ताल, करटा, त्रिविला, डमरूक, ढजा, गटा, वेणु, पणव, मृदंग, भेरी , तूर, पटह, और डिण्डिम।[294 3] राजा द्वारा मयूर का नृत्य भी देखा जाता था।[295] इसके अतिरिक्त सगीत शालाओं में 'कौतुक'[296] तमासा भी दिखलाया जाता था। इस कौतुक में कौतुक दिखाने वाला अपना हास्य रूप

बना लेता था। कभी रोमाचकारी कारनामे भी दिखाता था। इस कौतुक को देखने के लिए जनसाधारण भी उत्सुक रहते थे। सगीतज्ञो के मध्य प्रतियोगिताएँ भी होती थी।[297] कौतूक पूर्ण खेलो के सदर्भ मे अलबरूनी का कथन है कि कई बार हिन्दुओं को इस लिए भी जादूगर समझा जाता था कि वे ऊँची घासो पर या कसे हुए रस्सो पर चढकर गेद खेलते है किन्तु ऐसा खेल प्राय सभी देशो मे होता है।[297 2] सोमदेव ने ग्रामवासियो के मनोरजन का उल्लेख किया है। ग्रामो मे भील तथा नट कला बाजी तथा चमत्कार प्रदर्शन द्वारा ग्रामवासियो का मनोविनोद करते थे। नट कथोपकथन के साथ अभिनय करते थे।[297 3] सामान्यत· नगर में होने वाले उत्सवों मे जनसामान्य का मनारजन होता था। जनता इस दौरान सभी दैनिक कार्यो से मुक्त होकर उत्सव मे भाग लेती थी। 'महा उम्मग जातक' से पता चलता है कि (जिसमे पडित कहता है कि सप्ताह भर तक क्रीडा करने के लिए माला गन्ध विलेपन तथा पान भेजन आदि तैयार करके उत्सव मे भगा लो।) जनता सामूहिक रूप से कलाकारो के द्वारा प्रस्तुत इन कला प्रदर्शनों मे उपस्थित होकर अति उत्साहित और मनोरजित होती थी। पुरूष, नारियो और बच्चो की भीड एकत्र होकर अनेक प्रकार के खेल और प्रदर्शन देखती थी। जातको से भी पता चलता है कि इन उत्सवो में वाद्ययन्त्रों वीणा, डिण्डिम, भेरी, शंख आदि बजाकर संगीत के साथ नृत्य मंडलियों के द्वारा मनोरंजन किया जाता था।

कथासरित्सागर में चित्राकन के द्वारा उच्च वर्गीय स्त्रियों के मनोरंजन का उल्लेख मिलता है। इसमें चित्र[298], भित्ति चित्र[299] चित्रशाला[300] तथा चित्रकार[301] के विषय मे महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती है। राजभवन की दीवारों में चित्र बनाए जाते थे जिसमें राम के चरित से सम्बन्धित चित्रो का उल्लेख मिलता है।[302.1] राजमहल की भित्तियो पर रानियो के भी चित्र उत्कीर्ण होते थे।[302.2] दिव्य विधाधरो के चित्र बनाने का वर्णन है।[303] मयासुर के राजमहल मे भिन्न–भिन्न चित्र बने हुए थे। भित्तियों पर चित्र बनान की व्यापक प्रथा थी। इसके अतिरिक्त कपड़े पर भी चित्रपट बनाया जाता था। राजा लोग अपना चित्र बनवाकर विवाह का प्रस्ताव भेजते थे।[304] कुमारिदत्त चित्रकार, जिसने राजकुमारी रूपलता तथा पुथ्वीरूप का चित्र बनाया था।[305] चित्रकारों का समाज में सम्मानित स्थान था। चित्रकारों को भी उपाध्याय[306] कहा जाता था। ये चित्र बनाने तथा चित्र की शिक्षा देने में निपुण होते थे।

सोमदेव ने समकालीन भारत का समृद्ध रूप प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से कथासरित्सागर भारतीय जीवन का चलचित्र है जिसमे चित्रकला विषयक सामग्री का ठाठ ही खडा कर दिया है।[307]

मल्लकला भारतवर्ष मे प्राचीन काल से चली आ रही है। इसे मल्ल युद्ध के नाम से भी जाना जाता था। विष्णु पुराण से पता चलता है कि मल्लयुद्ध से लोग आनन्द उठाते थे।[308] कथासरित्सागर मे भी इसके विवरण उपलब्ध हैं। मल्लयुद्ध देखने के लिए नागरिक बढचढकर हिस्सा लेते थे। लोगो के उत्साह पूर्वक भाग लेने के कारण मल्लयुद्ध का समाज में सम्मानित स्थान था।[309] मल्लविधा की तकनीकी शब्दावली मे 'कृतदाव' दाव मारने को और 'प्रतिकृत' उसे काट देने को कहते थे।[310] विधुर जातक की गाथा मे उल्लेख है कि तमाशो मे अपनी भुजाओ को थाप देते हुए मल्ल और हारे हुए मल्ल होते है।[311] कथासरित्सागर मे मल्लों का हिसक पशुओं के साथ मल्ल युद्ध करने का उल्लेख है।[312] इसमे अशोक दत्त मल्ल का वर्णन मिलता है जिसने वाराणसी मे दक्षिण देश से आए, मल्ल, जिसने सारे सारे मल्लों को पराजित कर दिया था, को हाथ मरोड़ कर पटक दिया। इस अवसर पर काशिराज प्रताप–मुकुट ने अति प्रसन्न होकर उसे रत्नों से भर दिया।[313] इन विवरणों से स्पष्ट है कि मल्लयुद्ध सम्मानित मनोरंजन का साधन था।

झूला मनोविनोद का एक साधन था। झूला झूलने में स्त्रियॉ विशेष रुचि रखती थी।[314] कथासरित्सागर में उल्लेख है कि बुद्धिप्रभा राजा ने अपनी कन्या को अधिक झूला झूलने के कारण थप्पड मार दिया। ऐसा अपनी कन्या के गिर जाने के भय से किया था।[315] झूले वर्षा ऋतु में सुहाते थे। वात्स्यायन ने वृक्षों की घनी छाया मे झूला लगाने को कहा है जिससे वर्षा से बचा जा सके तथा साथ ही साथ प्रगाढ प्रेमालाप तथा विभिन्न प्रेम क्रीडाएँ निर्विघ्न हो सके।[316] वायु पुराण में भी उल्लिखित है कि झूला या दोला विशेष रूप से प्रचलित था जिस पर कामनियॉ बैठकर गतिशील होती थी; तथा पेगे मारती थी उसके गतिमान होने से उसम बंधे हुए धण्टे बजते थे।[317] रघुवंश में भी वर्णित है कि प्रेमी और प्रेमिका दोनों झूले का आनन्द लेते थे।[318] झूला झूलना प्राचीन समय के एक मनोरजन का साधन था। जो कि कथा सरित्सागर के समय में मनोरजन का एक साधन बना रहा।

कथा सरित्सागर मे राजाओं, नागरिको तथा स्त्रियो द्वारा मनोविनोदार्थ विभिन्न प्रकार के पशु तथा पक्षिओ के पालने का यत्र–तंत्र उल्लेख प्राप्त है। पशुओ तथा पक्षियो के लडाईयो के द्वारा लोग मनोरजन करते थे जो कि आज भी देखने को मिलती है। आलोच्य ग्रथ मे विरहातुर मकरन्दिका को अब पालतू शुको को विनोदपूर्ण वाणियॉ भी सुहाती नही थी।[319] मयूर को भी पाला जाता था। तोता पिजडें मे पाला जाता था। कथासरित्सागर मे रमणियो के बन्द पालने का उल्लेख है।[320]

सोमदेव ने बालकों के मनोरजन का उल्लेख किया है। बालक काष्ठ निर्मित कठपुतलियो तथा विविध यंत्रमय खिलौने से मनोरंजन करते थे।[321] सोमप्रभा कलिग सेना के मनोविनोद के लिए एक डोलची में लकडी की पुतलियो तथा नाना प्रकार के यत्रमय खिलौने को देते हुए उल्लिखित किया है।[322] बालको के द्वारा गोली खेलने का भी उल्लेख मिलता है। गोफण से गोली फेककर भी खेला जाता था।[324]

ऊपर के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि कथा सरित्सार में विभिन्न प्रकार के मनोरंजन के साधनों का उल्लेख है।

सन्दर्भ

1 जयशकर मिश्र : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास पृ 459

2 ऋग्वेद : 8.2.12 · हीतासो दुघ्यन्तें दुर्मदासो न सुरायाम्।

3 जयशकर मिश्र प्राचीन भारत का इतिहास, पृ 462

4 विष्णु पुराण : 3.11, 90—92

अग्नि शटयाययेद्वातुं पार्थिव पवनेरित.

दत्रावकाशंक नभसा जरयत्वस्तु मे सुखम्।

अन्नं वलाय में भूमेर पामग्यनिलस्य च।

अन्नं पुस्टिकरं चास्तु ममप्यव्याहत सुखम्।

5 एशिएंट एकाउंट्स ऑफ इंडिया एण्ड् चाइना, पृ 34

6. द स्ट्रगल फॉर एम्पायर, पृ. 285

7. ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ. 236

8. क. स. सागर : (तरंग 121—74, 75) (18—2—74, 75) पृ. 1087 (III)

9 कृत्यकल्पतरु : नियत काण्ड 395

10. कृत्यरत्नाकर, पृ. 257

11. एपि. इडि. 9, 57

12. देशीनाम माला 8.8, शब्दानुशासन, 7.2—94

13. क.स. सागर खंड 2 878/204

14. एशिएट एकाउंट्स ऑफ इण्डिया एण्ड चाइना पृ. 34

14.1 क.स.सा. भाग 1 669/88

14.2 पचम, पृ 424

14.3 जातक, प्रथम, पृ. 168, तृतीय पृ. 445

15 1 क.स.सा. खण्ड 2 590/176

15 2 सो.इ हि ना ई., पृ—256

16 वासुदेव शरण अग्रवाल पाणिनि कालीन भारत वर्ष, पृ 125

17 1 जातक पष्ठ, पृ 366

17.2 क स.सा खण्ड 1, 818/99

18. वासुदेव शरण अग्रवाल : पाणिनि कालीन भारत वर्ष, पृ. 125

19 क. स सा. . खण्ड 1 264/38, खण्ड 4 952/142

20. वही, खण्ड 3 416/47

21 1 अष्टाध्यायी वही . 4.4 67

21 2 क.स सा. खड 4 : 64/149—150

22. वही

23. महा, वग्ग जातक, पृ. 402

24. क.स.सा. , खण्ड 1, 100/20

25. वही, खण्ड 1, 120/10

26. वही

27. वही, खण्ड 1, 812/257

28 1 वही, खण्ड 1, 760/111

28.2 पाणिनि, 4 2.136

29.1 क.स.सा., खंड 3, 92/267

29.2 वही, खण्ड 2, 818/103

30. वही, 732/116

31. वही, खंड 2 590/171, 864/106, 952/141

32. वही, खंड 2 590/171—174

33. वही, खड 2 952/141

34. सत्तु भस्त जातक 4.2

35 अष्टाध्यायी, 6.3.60,

कात्यायन ने भी इसका उल्लेख किया है।

का. श्रौ. स. 5 8 12 मन्थः क्षीर सयुतो धान सक्तु ।

36. वासुदेव शरण अग्रवाल, पाणिनि कालीन भारतवर्ष पृ 123

37 वही, पृ. 123

38 जातक प्रथम, पृ. 422, 270 षष्ठ पृ. 366

39. जातक प्रथम, पृ. 345

40. अष्टाध्यायी, 5.1.4

41. क.स. सा. खंड 2, 878/204–206

42 वही, खंड 1 88/116

43 वही, खंड 2 960/191

44. विक्रमोर्वशीयम् अंक–3, पृ. 197

45. जातक तृतीय गा, 143, पृ. 408

46. जातक षष्ठ, पृ. 335

47. एस.एन. प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति, पृ. 146

48.1 अष्टाध्यायी, 6.2.154, वासुदेव शरण अग्रवाल · पाणिनि कालीन भारत वर्ष, पृ. 116–117

48.2 क.स.सा, खंड 3 808/32

49. क.स.सा., खंड 2 590/171

50. क.स.स., खंड 2 592/182

51. अलबीरूनीज इण्डिया, जिल्द–1, पृ. 204

52. सुलेमान सौदागर, पृ. 54–55

53. कृत्यकल्पतरु नियतकांड, पृ. 311–17

54. गृहस्थ रत्नाकर, पृ. 380–84

55 नैष ध., 16 / 81–82

56 अलबीरूनीज इण्डिया, जिल्द–2, पृ. 15

57 कृत्यकल्पतरु, नियत काण्ड, पृ 304–8

58 क.स.सा , 39, 16

59 क स.सा खड 2, 660 / 183

60 वही, 56, 183, 84, 85, 86, 191–92

61 वही, खंड 1, 576 / 158–59

62 वही, खड 1 576 / 159

63 वही, खड 1 858 / 68

64 जातक प्रथम, पृ. 251–52, 322, चतुर्थ पृ 115, 223, द्वितीय पृ. 193

65. वारुणि जातक, 47

66 1 कुमार सम्भव 3.38, पुष्पास वाघूर्णितनेत्रशोभि।

66.2 नैषधचरित, 16.19

66.3 क.स.सा., खंड 1, पृ. 626 / 200

67 क.स.सा. खंड 1, 200 / 13–15

68. क.स.सा. खंड 1, 208 / 85

69. क.स.सा. खंड 1, 216 / 145

70. वही, खंड 1, 218 / 161

71. वही, 13 / 152

72. जयशकर मिश्र : ग्यारहवी सदी का भारत, पृ 240

73. कृत्यकल्पतरु, नियतकाल काण्ड, पृ. 331

74. देशीनाम माला, 3.41–45, 8.4, 1.46, कृत्यकल्पतरु नियतकाण्ड, पृ. 393–95

75. क.स.सा. खंड 1, 304 / 27

76 वही, 21 / 10

77 वही, 21/6–7

78 वही, 44/51, 51/2

79 वही, खड 1, 594/198

80 राजतरगिणी, 8.1866

81 क स सा 38/33

82 वही, 39/207

83 वही, 40/116

84 वही, 17/114

85 मालविकाग्निमित्रम् अंक–3, पृ 301

86 कुमार. सम्भव 4.12

87. ऋतुसंहार, 1 3–4, 12.5–10

88. कुमार सम्भव 3.36–7

89. एस.एन. प्रसाद : कथा सरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ. 150

90. क.स.सा., 40/4

91 वही, 21/101

92 एस.एन.प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति पृ. 150

93. क.स सा , 42/224

94. वही, 20/142, 163, 166, 168

95. वही खड 1, 392/143

96. वही, खंड 1, 396/169

97. वही, खंड 3, 1196

98 वही, खड 1 732/116

99. वही, 42/224–5

100. वही, 189 225

101. वही, खंड 2, 190/224

102. वही, खंड 3, 28/129

103. वही, खंड 3, 174/26

104. वही, खंड 2, 544/35

105 1 वही, खंड 3, 344/21

105.2 वही, 105 / 2

106. वही, 64 / 24

107. वही, खंड 2, 514 / 243

108. क.स.सा, 9 / 81

109. जयशंकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत, पृ. 239

110. कुट्टनीमतम्, 70

अन्तर्धृतताम्बूलप्रोच्छनकपोलकलितकरपर्ण ।

111. देशीनामभाला – 4.42

112. बृह. सं. 77 / 34–5

113. एस.एन. प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति पृ. 124

114. ऋग्वेद, 1.140.9

115. क.स.सा., खंड 3, 712 / 65

116. मानसोल्लास– 2.101

117. देशी काममाला, 2.93

118.1 मोती चन्द्र, प्राचीन भारतीय वेषभूषा, पृ. 158

118.2 ऋतुसंहार – 4, 16

118.3 यशस्तिलक, पृ. 16,

पीनकुचकुम्भदर्प ऋत्कचुंकाः ।

119 वही, पृ. 51, अमरकोष – 28.64 कचुकोवारवाणोस्त्री ।

120 राजतरंगिणी — 1, 2945

121 राजतरगिणी — 7, 930

122 क.स.सा., 84/7

123. कुमार सम्भव 7, 60

124. ऋतुसहार 5,8 मनोज्ञ कूर्पासक पीडितस्तनाः ।

125 जयशकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 483

126 विक्रमांकदेव चरित, 8, 45

127. राजतरंगिणी 1, 294—5

128 महाभारत सभापर्व, 60.28.30

129. एस.एम. प्रसाद, कथासारित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ. 126

130. क.स.सा. 52/43

131. राजतरंगिणी 7, 930

132. देशी नाममाला, 2, 107

133. क.स.सा., खंड 1 394/153, 56

134. राजतरंगिणी, 7, 930

135. क.स.सा. — 12/158

136. वही, 12/62

137. राजतरंगिणी — 7/921

136. वही, 7, 923

139.1 वही, 7, 923

139 2 मानसोल्लास, पृ. 81, पृ. 950—53

140. जयशंकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत, पृ. 242

141. क.स.सा. — 53/233

142.1 वही, खंड 1, 682/192

142.2 वही, खड 3 पृ 196/283

143. वही, 10/118

144 वही, खड 3 508/19–20

145 1 वही, खड 3 400/97

145 2 वही, खड 3 पृ. 196/283

146 महाभारत, 4.66.13

147 क स.सा , खड 3 58/72

148 क.स.सा., खड 2 468/124

149 के.पी. जैन प्राचीन भारत का सामाजिक, सास्कृतिक और भौगोलिक अध्ययन : पृ. 127, 28

150. क.स.सा., 124/164

151. क.स.सा., 124/166

152. जयशंकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत, पृ. 244–45

153. क.स.सा., खंड 2 438/140

154 क.स.सा.,खंड 1 136/50

155. वही, खड 1 142/95

156. वही, खड 1 128/73

157. यशस्तिलक, पृ. 15 : कनकमय कंकणा : मृणाल वलयालंकृतकलाची देशाभिः।

158 क.स.सा., खंड 2, 46/17

159 वही, खड 1, 468/166

160 यशस्तिलक, पृ. 398 कुवली फलस्थूलत्रापुणमणिविनिर्मितौगढः।

161.1 वही, खड 1, 768/166

161.2 क.स.सा., खंड 1, 774/211

162. वही, खंड 1 402/205

163 1 वही, खड 1, 420/82

163 2 यशस्तिलक, पृ. 367 चन्द्रकान्त कुण्डलाभ्यामलकृत श्रवण ।

163 3 राजतंरगिणी, 8.2.835 – लीलालघुध कुण्डला

164 वही, खड 1, 420/85

165 राजतरगिणी – 3, 326

166. क.स.सा , खड 1, 128/80–81

167. क.स सा., खड 2 972/21

कर्ण ददाति यावच्च स प्रव्राट् तावदत्र सः ।

यक्षः पुष्पस्त्रजा भार्या नर्मणा तामताडयत् ।।

168. वही, खड 1, 790/110

मंगल्य माल्यपुष्पेषु तस्य क्षिप्तेषु मातृभि· ।

169. वही, खड 2, 438/135

170. वही, खंड 2, 438/139

171. वही, खंड 1, 516/13

172. वही, खंड 1, 638/78

173 वही, खंड 3, 288/172–77

174. वही, खंड 1, 152/167

175 वही, खंड 2, 750/46

176. प्रियदर्शिका 401

177. क.स.सा. खड 2, 806/26

बबन्ध मेखलां मूर्ह्नि हारं च जघनस्थले ।

नूपुरौ करयोस्तस्याः कर्णयोरपि कंकणै ।।

178. वही, खंड 3, 712/164

179. वही, खड 1, 542/212 खंड 2, 806/26

180. वही, खड 3, 712/164

181 यशस्तिलक, पृ 131, 367

182. वही, खड 2, 412/202

183. वही, खंड 412/202

184 जातक चतुर्थ, गा. 180, पृ 441

185 क.स.सा. 7/53

आ शिर पादममेषु ताभिस्तत्तैलक ज्जलम्।

अभ्यग भगया पापस्य न्यस्तं धनमपश्यत ।

186 क.स.सा, खड 3, 1178/2

187. क स.सा., खड 2 44/4

188. क.स सा. खंड 2, 44/6

189. जातक पंचम् गा0, 38, पृ. 302

190. क.स.सा., तथा च तस्य प्राप्तस्प तत्राभिज्ञान सिद्धये।

पुत्रकस्प प्रसुत्तस्य न्यस्तं वासस्यलक्तम्।।

191. क.स.सा., 6/99

192. क.स सा., 9/44, 34/155

193 कालिदास, अभिज्ञान शाकुन्तलम्

194. क.स सा. खंड 1 130/2

195. क.स.सा. खंड 1 के अनुवादक की पादटिप्पणी, पृ. 131

196. क.स.सा., खड 1, 182/77

197. वही, खड 1, 178/52

198. महाभाष्य, 3.1.56 – मृग रमणमाचष्टे मृगान् रमयतीति।

199. जातक षष्ठ, गा. 1804, पृ. 500

200. क.स.सा. खंड 1, 172/12—13

201 वही, खड 1 172 / 12—13

202 वही, खड 1, 618 / 146

203 वही, खड 1, 618 / 147

204 अभिज्ञान शाकुन्तलम द्वितीय सर्ग

205 क.स सा , खड 1, 410 / 16

206 वही, खंड 1, 410 / 12—13

207. वही, खड 1, 410 / 14

208. वही, खड 1, 410 / 15

209. वही, खड 2, 158 / 3—6

210 जयशंकर मिश्र प्राचीन भारत का सामाजिक इति , पृ. 495

211. अलबीरूनीज इंडिया, पृ. 195

212. क.स.सा., 21 / 16

213. विक्रमाक देव चरित, 1298—1328, 1329—1380

214. एस.एन.प्रसाद— कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति, पृ. 134

215. वनमाला भावलकर, महाभारत में नारी, पृ. 288

216. क.ससा. 63 / 188—90

217 वही, खंड 3, 58 / 16

218 वही, खड 1, 468 / 31—32

219. वही, खड 1, 470 / 34

220. कादम्बरी, पृ. 60 सर्वासु द्यूतकलासु।

221. जातक प्रथम, 383

222. के.सी. जैन प्राचीन भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगालिक अध्ययन, पृ 130

223. वही, पृ. 130

224. क स सा , खड 3, 166 / 72,74

225. वही, 301—305 / 18, 45

226 1 वही, खड 1, 488 / 58

226 2 वही, खंड 3, 278 / 94

227 वही, खड 3, 1084 / 70

228 वही, खड 3, 1086 / 71

229 वही, खंड 3, 1086 / 82

230 वही, खड 3, 240 / 146

231. वही, खड 3, 240 / 148, 149

232. वही, खड 3, 246 / 18

233. वही, खड 3, 1086 / 73—76

234. वही, खड 3, 166 / 75—78

235. वही, खंड 1, 76 / 26

236. वही, खंड 3, 182 / 189

237. वही, 75 / 84—85

238. वही, 74 / 139—40

239 वही, 24 / 18—19

240. वही, खण्ड, 922 / 17 एवं 1148 / 192

241. वही 124 / 209—11

242. वही 73 / 188—89

243. एस.एन.प्रसाद · कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति, पृ. 135

244. अर्थशास्त्र, 3, 11

245. क.स.सा., खड 3, 240 / 141

246. हेमचन्द महावीर चरित श्लोक 98, एस एन प्रसाद — कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति., पृ. 135,

247. कामसूत्र, 40—1

248 जातक प्रथम, पृ. 383

249. क.स.सा., खड 1, 135／22, 23

250 वही, खड 1, 88／108, एव 142／87

251 वही, 89／108

252 जातक प्रथम, पृ 59, 134, 175, 383

253 हरिवश पुराण, 55／41—46

254 क.स.सा खड 1, 41／35

255 आ सा इ ए , रि. 1903—4, फलक स 43

256 जातक वही, 4, 376

तदा वाराणसिसेट्ठिनो धीता दिव्रमाङ्गलिका नाम एकमासद्वेमासवारेन महापरिवारा उध्यान कीलिक यच्छति।

257.1 अवदानशतक, पृ. 201

257.2 क.स.सा., खंड 2, 574／58

258. क.स.सा., खंड 1, 36／3

259 वही, खड 1, 40／30

260 वही, 20／54—55, रत्नावली, अक 1

261. वही, खड 1, 606／59, 60

262. वही, 10／87, 17／71

263 एस.एन. प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ. 122

264 क स सा., खंड 3, 512／60

265. वही, खड 1, 88／109

266. वही, खड 1, 88／110

267 वही, खंड 1, 88／111

268 वही, खड 1, 88/112

269. वही, खड 1, 88/113

270 जैन हरिवश पुराण, सर्ग, 55/51/56

271 जातक प्रथम, पृ. 59, 134

272 जातक प्रथम, पृ. 95, 96

273 रत्नावली प्रथम अक, 9—18

274 वही, प्रथम अक— 20

275 वही, 21, 4

276 वैजयन्ती 145—47 अभिधान चिन्तामणि, 117

277 जातक प्रथम,पृ. 485

278. क.स.सा खंड 1, 160/11

279. क.स.सा खंड 1, 160/4

280. वही, खंड 1, 174/31

281. वही, खंड 1, 176/52

282. वैजयन्ती, 145—47

283. क.स.सा., खंड 3, 446/41

284. वही, खंड 3, 1074/120—21

285 वही, खड 1, 344/321

286 1 वही, खंड 2, 578/84

286.2 वही, खड 1, 662/48

287. वही, खड 2, 580/93—94

288 वही, खंड 1, 404/228

289. वही, खड 1, 474/75

290. वही, खंड 1, 290/17

291. वही, खड 1, 408/5

292 वही, खंड 1, 812/262

293 1 वही, खड 3, 972/87

293 2 वही, खड 1, 798/162

294 1 वही, खड 3, 626/347

294.2 यशस्तिलक, पृ. 319

294 3 वही, पृ 217

295 वही, खड 3, 96/291

296 वही, खड 1, 178/35

297.1 जयशकर मिश्र ग्यारहवी सदी का भारत पृ. 322

297.2 वही पृ. 322

297.3 क.स.सा. खंड 1, 16/36

298. वह, 16/27, 44, 52, 45, 135 50, 123–32, 50, 140–153

299. वही, 54/42–43

300. वही, खंड 1, 262/27

301. वही, 66/66–7

302.1 वही, खंड 1, 262/27

302.2 वही, खंड 2, पृ. 608/54

303. क.स.सा. खड 2, 236/52

304. वही, खड 2, 468/124

305. वही, खड 2, 468/134

306. वही, खंड 2, 606/44–46

307. एस.एन.प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति, पृ. 139

308. विष्णु पुराण, 5.9.8

309 क स सा, 45 / 119–26

310 एस एन.प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ 137

311 विधुर जातक, पृ 545

312 क स सा खड 1, 136 / 47

313 वही, 45 / 119–26, 153, 33 / 119–122

314 वही, खड 2, 986 / 137–38

315 वही, खड 2, 986 / 139

316 एस.एन प्रसाद : कथासरित्सागर और भारतीय सस्कृति, पृ. 140

317. वायु पुराण, 54.35

दोला लम्बित सम्पाते वनिता सघ सेविते।

ध्वजैलम्बित दोलाना घष्टाना निनदाकुले।।

318. रघुवंश, 19.44

319. क.स.सा, 59 / 150

320. वही, 37 / 113, 117, 118

321. वही, 29 / 1

322. वही, 29 / 2, द्रष्टव्य एस.एन.प्रसाद · कथासरित्सागर और भारतीय संस्कृति, पृ. 141

323. वही, खंड 3, 962 / 219

324. वही, खंड 2 158 / 8

उपसंहार

कथा साहित्य परम्परा मे कथासरित्सागर काश्मीरी परम्परा का एक ऐसा विशाल कथा ग्रथ है, जो गुणाढ्य कृत बृहत्कथा की अनुकृति होते हुए भी अपने कथाओ के गर्भ मे भारतीय सास्कृतिक परम्पराओ के साथ—साथ तत्कालीन समाज के स्पन्दन को छिपाए हुए है। यद्यपि कुछ काल्पनिक कहानियो मे आश्चर्यजनक पात्रो एव उनके कारनामो का वर्णन अवश्य है, लेकिन इसका उद्देश्य लोगो का मनोरजन करना था। कथासरित्सागर केवल कथा साहित्य का नही अपितु संस्कृत साहित्य की अनुपम कृति मानी जाती है। इस कृति मे एक ओर जहॉ राजनीतिक घटनाओ एवं देश मे हो रहे उथल—पुथल की सूचना मिलती है वही दूसरी ओर राजाओ और नगरों की अद्भुत कन्याओं तथा उनके साहसिक प्रेमियो, जादू—टोने, साधु, पियक्कड, जुआडी, वेश्या, कुट्टनी, धूर्त ठग, मूर्ख वणिक, नर्तकी, विषकन्याओं, सच्चरित्र एव परपुरुष गामिनी स्त्रियों, समुद्री यात्राओं आदि के अतिरिक्त पशु—पक्षियों तक का वृत्तान्त इसमें समाहित है।

कथासरित्सागर कालीन सामाजिक व्यवस्था का जहॉ तक प्रश्न है इस समय परम्परागत रूप से वर्ण व्यवस्था चली आ रही थी। पहले की भॉति धर्मशास्त्रानुसार आचरण करने वाले ब्राह्मणों का समाज में महत्वपूर्ण स्थान था। ब्राह्मणशास्त्र विहित कार्य के अतिरिक्त बदलते सामाजिक परिवेश एवं प्रस्थिति के कारण क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण के कार्यों का अपनाने लगे थे। इस समय ब्राह्मणो द्वारा क्षात्र कर्म को अपनाने की अधिकता दिखलाई पडती है। सम्भवतः इसका कारण इस समय पश्चिमोत्तर भारत मे तुर्क एवं ताजिको के आक्रमणों का परिणाम प्रतीत होता है। प्राचीन धर्मशास्त्रकारो ने भी विदेशी आक्रमण के समय ब्राह्मण को शस्त्र ग्रहण करने की अनुज्ञा पहले से ही प्रदान किया है। इस ग्रंथ मे ब्राह्मण का स्वाभाविक धर्म 'क्षमा' बताया गया है। इस समय ब्राह्मण युद्ध विद्या के साथ—साथ मल्ल विद्या में निपुण बतलाए गए हैं। ब्राह्मणों ने

राजा के मत्री, नगराधीश, लेखक, सेनापति आदि के रूप मे राजकीय सेवाओ का निष्पादन किया। इसमे ब्राह्मणों को ठग, जुआ खेलते, चोरी करते हत्या करते भी प्रदर्शित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों अनैतिक कार्यों में भी सलग्न थे। ब्राह्मणों द्वारा गुट बनाकर गॉव में बाधा डालने की जानकारी मिलती है। ब्राह्मणो के अपराध करने पर राजा द्वारा इन्हे मृत्यदण्ड तक दिया जाने लगा था।

इस समय सामन्तवादी परम्परा का अधिक विकास हुआ था, यद्यपि कि यह व्यवस्था गुप्तकाल से ही देखने को मिलती है, लेकिन हर्ष के काल में सामन्तवाद का विकेन्द्रीकरण प्रारम्भ हुआ। कथासरित्सागर के काल में भारत अनेक छोटे—छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था। इस समय राजनय का परम लक्ष्य अपने छोटे—छोटे राज्यों को सुरक्षित रखना था, इससे देश में राष्ट्रीयता का अभाव था। क्षत्रियों पर प्राचीन काल से ही देश और समाज की रक्षा का गुरुतर भार था। इस ग्रंथ में भी परम्परागत क्षत्रियों के कर्तव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। इन्हें सभी विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करने के साथ शस्त्र विद्या, मल्ल विद्या एवं शारीरिक सौष्ठव पर विशेष ध्यान देना पडता था। इस समय राजाओं का प्रमुख कर्तव्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना बतलाया गया है। युद्ध में कभी—कभी युद्ध सम्बन्धी नियमों के उल्लंघन के साक्ष्य भी उपलब्ध है। राजाओं द्वारा अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया जाता था। वह सामान्यतः अपने ज्येष्ठ पुत्र की नियुक्ति करता था, परन्तु ज्येष्ठ पुत्र के अयोग्य होने पर छोटे पुत्र को भी युवराज नियुक्त करता था। राजाओ द्वारा अनुजीवी राजाओ का सत्कार एव सामन्तों द्वारा विभिन्न प्रकार के उपहारादि दिए जाने का उल्लेख है। राजाओं द्वारा ब्राह्मणो को अग्रहार ग्राम दिया जाता था।

इस समय क्षत्रियों का दो वर्ग था प्रथम में राजा, सामन्त तथा उनके सम्बन्धी आते थे। दूसरा यात्री इब्नखुर्दाब्द ने भी क्षत्रियों के दो वर्गों, सबुकफ्रिया एवं कटरिया का उल्लेख किया है। इस समय हूणों को भी भारतीय वर्ण व्यवस्था में स्थान मिल गया था। उन्हें क्षत्रिय वर्ग में शामिल कर लिया गया था। इस समय सैनिकों तथा योद्धाओं को मासिक वेतन दिया जाता था। इसके

अलावा सहायता एव उपहार आदि मे भूमि तथा धन दिए जाने का वर्णन उपलब्ध है। इस काल मे पूर्वमध्ययुगीन आर्थिक विषमताओ के कारण क्षत्रियों ने शास्त्रोक्त व्यवसायो के अतिरक्त अन्य व्यवसायों को अपनाया था। इस समय क्षत्रियो द्वारा वैश्य वर्ग की कन्याओ के साथ भी वैवाहिक सम्बन्ध प्रचलित थे।

वैश्य के लिए इस ग्रंथ मे वणिक् शब्द भी मिलता है। इस समय वैश्यो का धर्म विहित कार्य कृषि एव पशुपालन के स्थान पर व्यापार प्रमुख रूप से हो गया था। जो कि वणिक् शब्द से प्रतिध्वनित होता है। वैश्य इस समय व्यापारिक गतिविधियो के सचालन मात्र के लिए आवश्यक समझी जाने वाली शिक्षा अर्जित करते थे जिससे उन्हे हिसाब रखना आ जाए। इस समय वैश्य द्वारा देशज एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार संचालित किया जाता था। कथासरित्सागर में गॉवो तथा नगरो में रहने वाले वणिको का उल्लेख है जो स्थानीय स्तर पर व्यापार करते थे, इस व्यापार के अतिरिक्त वे सूदखोरी तथा दलाली का कार्य करते थे। ये स्थानीय व्यापारी विदेशी व्यापार करने वाले वैश्यों से वस्तुओ का क्रय करते थे। ऐसे व्यापारियो से विदेशी वस्तुएँ प्राप्त करने के लिए एक वैश्य अपनी स्त्री तक को व्यापारी के पास भेजने में नहीं हिचकता था। व्यापारियों द्वारा अन्तर्देशीय व्यापार स्थल तथा समुद्री मार्गों का प्रयोग होता था। स्थलीय मार्गों में सार्थवाह के नेतृत्व में व्यापारिक काफिले चलते थे। पहले स्थलीय व्यापार का प्रमुख मार्ग उत्तरापथ था परन्तु वर्तमान समय में उत्तरापथ, तुर्को के आक्रमण के कारण असुरक्षित हो गया था इसीलिए सोमदेव ने विवेचित किया है कि उत्तरापथ दिशा म्लेच्छों से भरी हुई है जबकि दक्षिणा पथ सुरक्षित तथा उत्तम है। सम्भवतः इसीलिए व्यापारी दक्षिण भारत एवं पूर्वी भारत के बन्दरगाहो से द.पू. एशिया के विभिन्न द्वीपों की यात्रा करते थे। इन द्वीपो मे कर्पूरद्वीय, श्वेत द्वीप, नारिकेल द्वीप, सुवर्ण द्वीप, सिंहल द्वीप तथा कटाह द्वीप आदि का वर्णन आया है। इन्होने द्वीप—द्वीपान्तर की यात्राओं के द्वारा जहॉ एक ओर भारतीय अर्थव्यवस्था को मजबूत किया वहीं दूसरी ओर भारतीय विचारो, विश्वासो तथा भारतीय संस्कृति का बीजारोपण करने में की भूमिका का निर्वहन किया। इसके अतिरिक्त इसमें ठग, धूर्त, मूर्ख तथा दुश्चरित्र वैश्यों की भी जानकारी प्राप्त होती है।

सोमदेव कालीन समाज मे शूद्रो की स्थिति में पहले की अपेक्षा अधिक सुधार कथासरित्सागर से परिलक्षित होता है। जहॉ तक शूद्रो के कर्मो का प्रश्न है, इस ग्रथ मे एक ओर परम्परागत कर्मों का उल्लेख मिलता है, तो दूसरी ओर जाति या वर्ण की मनोवृत्ति के प्रतिकूल सामाजिक आवश्यकताओ, आर्थिक दबाव तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से शूद्रो ने कृषि, पशुपालन, शिल्पगत कार्यो एव सेवा सम्बन्धी पेशे को भी अपनाया। इस समय शूद्रो के दो वर्गों का आविर्भाव हुआ। एक वर्ग वैदिक पद्धति पर आधारित कर्मकाण्डो तथा धार्मिक क्रियाओ को सम्पादित करता था, जबकि दूसरा असभ्य एवं असंस्कार युक्त जीवन व्यतीत करता था। प्रथम वर्ग के सामाजिक बदलाव के पीछे उसकी आर्थिक स्थिति मे प्रगति का योगदान था। यद्यपि इसकी भूमिका का निर्माण बौद्धकाल मे ही हो गया था। परिणामस्वरूप वैश्य तथा शूद्र की सामाजिक स्थिति मे कोई विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। यह सामाजिक अन्तर अरब यात्री इब्नखुदीब्द भी नही समझ सका था जिससे उसने वैश्यवर्ण के पहले शूद्र वर्ण का उल्लेख किया है। कथासरित्सागर मे अद्भूत पंचपट्टिक शूद्र का वर्णन आता है। जिसके साथ राजा अपनी कन्या के विवाह हेतु ज्योतिषियों से कुण्डली मिलाने को कहा था। इसके अलावा इस ग्रथ में शूद्रों के मध्य बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का पता चलता हे, जो तंत्रयान से विशेषतः सम्बन्धित था।

इस ग्रंथ से यह पता चलता है कि इस समय जातियों तथा उप जातियो का निर्माण हो रहा था। एक वर्ग के प्रति उदारता पूर्वक व्यवहार किया जा रहा था, तो दूसरे वर्ग के साथ पुरानी स्थापनाएँ कायम थी, लेकिन उनका बधन शिथिल पडने लगा था। इसमें एक ओर जहाँ चाण्डालो का दर्शन ही किसी को अपवित्र कर देता था वहीं चाण्डाल तथा ब्राह्मण दोनों साथ–साथ तपस्या करते वर्णित हैं। इससे पता चलता है कि निम्नवर्गों के द्वारा तेजी से दूसरे धर्मों यथा बौद्ध तथा इस्लाम धर्म के अपनाने के फलस्वरूप उनके प्रति समाज का दृष्टिकोण बदलने लगा था। समाज के प्रति उदार हो चुका था तथा कर्मों के महत्व की फिर से स्थापना की जा रही थी तथा समाज को यह

बतलाने का प्रयास किया जा रहा था कि उच्चकर्मों का अनुसरण करते हुए निम्नतम जाति का व्यक्ति भी अच्छे आचरण से उच्चपद प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार ब्राह्मण तथा चाण्डाल दोनो साथ–साथ तपस्या करने के बावजूद अच्छी सोच के कारण चाण्डाल राजा के घर पैदा हुआ जब कि ब्राह्मण नीच सोच के कारण धीवर के कुल मे जन्म लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि यह विचार उस समय निम्न वर्ग के लोगो को धर्मान्तरण रोकने का मनोवैज्ञानिक प्रयास था।

इस कथा साहित्य से समाज मे जातियो का बहुगुणन दिखाई पडता है जिसमे कृषि तथा पशुपालन सम्बन्धी जातियॉ, पेशेवर जातियॉ, जंगली, अन्त्यज एवं अस्पृश्य वर्गीय जातियो मे ग्वाला, पशुपाल, कृषक, माली, कुम्भकार, बढई, धोबी, जुलाहा, शबर, भील, पिशाच, चाण्डाल एवं व्याध आदि का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त राजकीय गणक एवं लेखकों की एक अलग जाति 'कायस्थ' के रूप मे आविर्भूत हो रही थी जो अधिकारो से सम्पन्न थी। सोमदेव ने इनकी तुलना ब्रह्मा एवं शिव से किया जो कुछ भी लिख एवं मिटा सकते थे। समाज के लोग इनसे भयभीत तथा त्रस्त रहते थे।

ग्यारहवीं शताब्दी में तुर्कों का आक्रमण भारत में प्रारम्भ हो चुका था। इसका उद्धरण कथासरित्सागर में मिलता है। इन आक्रमणों के कारण एक ओर भारतीय धन सम्पदा को लूटने का कार्य चल रहा था तो दूसरी ओर हिन्दूओ को इस्लाम धर्म में दीक्षित करने की प्रक्रिया चल रही थी। इसमें शक्ति तथा प्रलोभन, दोनों हथकण्डों का सहारा लिया जा रहा था। इससे भारतीय समाज ने एक नई उलझन पैदा हुई। इन धर्म परिवर्तित लोगो को हिन्दू समाज में पुनः स्वीकार करने में अनुदारता का परिचय दिया।

कथासरित्सागर में चारों आश्रमों का उल्लेख है जो पूर्व की भॉति प्रचलित था। इसमें ब्रह्मचारी, गृहस्थ, परिव्राजक, सन्यासी, भिक्षु, मुनि तथा यति आदि शब्दो का उल्लेख प्राप्त होता है। ब्राह्मचर्य आश्रम जहॉ आश्रम व्यवस्था, का रीढ़ था वही गृहस्थ आश्रम सभी आश्रमों में श्रेष्ठ था क्योंकि धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति इसी आश्रम में बताई गई है। ब्राह्मचर्य आश्रम मे व्यक्ति के व्यक्तित्व

का विकास होता था और वह धर्मानुसार आचरण करते हुए शिक्षा अर्जित करता था। गृहस्थ आश्रम में धर्म पूर्वक आचरण का पालन करते हुए सामाजिकता का पालन एव ऋणो से मुक्ति का प्रयास दिखता है। इसमे परिव्राजको का वर्णन मिलता है जो घर छोडकर जंगल मे जाते थे कुछ ऐसे परिव्राजकों का वर्णन आया है जो गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश के बिना ही इस आश्रम मे प्रविष्ट हुए थे। जब कि सन्यास आश्रम वानप्रस्थ के उपरान्त प्रारम्भ होता था इसमे व्यक्ति कन्द, मूल, फल खाकर जीवन यापन करते थे। इस ग्रंथ से पता चलता है कि राजा कभी–कभी मंत्री के साथ भी तपस्या हेतु प्रयाग तथा वाराणसी जाते थे। आश्रमो के अलावा इसमे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि चारो पुरुषार्थों का भी विवरण है। इस काल मे धर्म की अधिक महत्ता थी।

इस समय मुख्यतः ब्राह्म, गान्धर्व विवाह एवं स्वयवर प्रथा विद्यमान थी। यद्यपि असुर, राक्षस तथा पिशाच विवाहों का अस्तित्व किसी न किसी प्रकार से बना रहा। कथासरित्सागर में ब्राह्म एवं गान्धर्व विवाह का प्रमुखता के साथ वर्णन मिलता है। इस समय अल्पायु में विवाह होते थे, परन्तु वयस्क अवस्था में भी लड़कियो के विवाह प्रचलित थे। गान्धर्व एवं स्वयंवर विवाह में स्त्री, पुरुष दोनों वयस्क होते थे। लड़कियों को भगवाकर भी विवाह प्रचलित था जिसमे कभी–कभी स्त्रियों की सहमति होती थी परन्तु समाज उससे सहमत नही रहता था। इस समय सगोत्रीय परिवारो के मध्य विवाह की प्रथा नही थी। लोग सामान्यतः अपने वर्ण, जाति तथा समूह में विवाह करते थे। इसका उद्देश्य कुल तथा रक्त की शुद्धता की रक्षा करना था। सजातीय तथा समान वर्णो के अलावा अन्तर्जातीय विवाहों में अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनों प्रकार के विवाहो का प्रचलन था। ब्राह्मण द्वारा क्षत्रिय एवं वैश्य की कन्या से भी विवाह होते थे, क्षत्रियो द्वारा भी वैश्य कन्याओं के साथ भी विवाह होते थे। प्रतिलोम विवाह में राजकुमारी का चाण्डाल पुरुष एवं धीवर से विवाह के साक्ष्य इस काल मे मिलते है लेकिन ऐसे विवाहों के पूर्ण उनकी उच्चता की स्थापना की गई थी।

इस समय सामान्यतः लोगों द्वारा एक पत्नी की प्रथा का पालन किया जाता था लेकिन राजाओं, सामन्तो, उच्च वर्गों आदि के द्वारा बहुविवाह भी

किया जाता था। इस समय विवाह विच्छेद भी देखने को मिलता है जिसका कारण स्त्रियो की भ्रष्टता प्रतीत होती है। इस समय ऐसी भी स्त्रियॉ थी जो एक पुरुष को छोडकर दूसरे पुरुष से विवाह कर लेती थी। इस समय विधवा विवाह भी होता था। लेकिन सामान्यत इसे समाज मे अच्छी दृष्टि से नही देखा जाता था। इस समय समाज मे ऐसे विवाहो की सूचना मिलती है जिसमे कुरूप ब्राह्मण पुरुष द्वारा वैश्य कन्या के पिता के घर के सामने अनशन करने के कारण ब्रह्म हत्या के डर से अपनी कन्या का विवाह कर दिया। जबकि वह कन्या उस पुरुष के साथ विवाह करने को इच्छुक नही थी। इस समय किसी स्त्री की दुर्घटना आदि से रक्षा करने वाले पुरुष को अपना पति बना लेने का वर्णन भी मिलता है। इस काल में दास प्रथा विद्यमान थी। दास तथा दासियॉ तथा चेटियॉ राजाओ, सामान्तो, उच्च वर्गों, धनिकों तथा व्यापारियों आदि के यहाँ होती थी। इनकी गणना एक सम्पत्ति के रूप में की गई है। इनका प्रयोग सामान्यतः घरेलू कार्यों मे किया जाता था। इनकी स्थिति पशुवत थी। दासियो को उपहार में दिया जाता था। कभी–कभी कोई शर्त जीतने वाले को आश्रय देने वाले की दासता स्वीकार करनी पड़ती थी। इस समय तुर्कों द्वारा यहॉ के लोगो को पकड़कर दास बनाया जाता था। सामान्य परिवारों में दासों एवं दासियों की दशा सोचनीय थी जब कि राजपरिवारो से सम्बन्धित दास–दासियों की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी थी।

किसी देश के विकास की जानकारी वहॉ के स्त्रियों की स्थिति से ज्ञात किया जा सकता है। वहॉ के विकास की जानकारी ही नहीं अपितु सभ्यता और सस्कृति के निर्माण तथा विकास में भी स्त्रियो का योगदान होता है। कथासरित्सागर में सोमदेव ने तत्कालीन स्त्रियों का सांगोपांग विवरण प्रस्तुत किया है। इसमे कन्या के जन्म पर एक ओर दुःख व्यक्त किया गया है तो दूसरी ओर कन्याओं के जन्म को महत्व देते हुए भी दर्शित किया गया है। कन्याओं को इहलोक तथा परलोक दोनों जगह कल्याण करने वाली बताया गया है जो इस समय कन्याओं के पक्ष मे समाज में उभरते दृष्टिकोण का पारिचायक प्रतीत होता है। सामान्य कन्याओं की शिक्षा की कोई व्यवस्था नही

प्रतीत होती है। उन्हे सम्भवतः गृहस्थ आश्रम मे काम आनेवाली शिक्षाए माता–पिता द्वारा दी जाती थी। जबकि राजपरिवारो मे कन्याओं को अक्षर ज्ञान के अतिरिकत सगीत विद्या पर अधिक ध्यान देते हुए दिखाया गया है। यद्यपि इस काल मे कुछ विदुषी अवश्य थीं जो कि उच्च ज्ञान वाली होती थी। ऐसी स्त्रियॉ अपवाद स्वरूप प्रतीत होती है। अब प्रश्न उठता है कि यह शैक्षिक प्रतिबन्ध क्यो था ? इस संदर्भ मे उल्लेखनीय है कि इस समय पश्चिमोत्तर भारत मे तुर्कों के आक्रमण के फलस्वरूप असुरक्षा का वातावरण व्याप्त हो चुका था। दूसरी ओर गुप्तोत्तर काल से ही स्त्रियो की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नही दिये जाने के कारण पारम्परिक रूप से इस पर प्रभाव पडा होगा। स्त्रियों के विवाह के लिए पूर्व शास्त्रकारों के नियमों को उद्धृत करते हुए बताया गया है कि रजस्वला के पूर्व कन्या का विवाह कर देना चाहिए। यदि माता–पिता विवाह करने मे असमर्थ हो तो एक वर्ष के भीतर कन्या को स्वय अपना विवाह कर लेना चाहिए। इससे बाल्यावस्था में विवाह की भी जानकारी मिलती है। जब कि सोमदेव ने अनेक गान्धर्व विवाहों, स्वयंवर आदि के उल्लेख से उच्च घरानों में यौवनावस्था में विवाह की जानकारी दिया है।

कथासरित्सागर कालीन समाज में पोषित पतिका स्त्रियों का वर्णन मिलता है जो पति के विदेश आदि गमन में अपने सदाचरण एवं सच्चरित्रता से एकनिष्ठ होकर अनेक विपत्तियों को झेलते हुए भी जीवन व्यतीत करती थीं। जब कि कुछ ऐसी स्त्रियों के प्रति लोभी, लोलुप, दुष्ट पुरुषों की दृष्टि लगी रहती थीं। इसमें समाज के उच्च वर्ग के ऊँचे पदों पर बैठे व्यक्ति भी शामिल थे। सच्चरित्र स्त्रियो को पथभ्रष्ट बनाने में कुट्टनियॉ भी लगी रहती थी। लेकिन ये स्त्रियाँ अपने चरित्रबल एवं बुद्धिबल से अपनी रक्षा करने में ही समर्थ होती थी। इस समय सच्चरित्र स्त्रियों के साथ–साथ दुश्चरित्र एवं परपुरुष गामिनी स्त्रियों की भी भरमार दिखाई पड़ती है। जो अपने योग्य तथा सर्वगुणसम्पन्न पतियों को छोड़कर दूसरे अयोग्य पुरुषों के साथ रमण करती थीं। यहाँ कुछ ऐसी भी स्त्रियॉ थी जो प्रतिदिन पुरुषों को बदलती रहती थी। इस प्रकार की दुश्चरित्र स्त्रियॉ जनसामान्य वर्ग तथा राजघरानों से भी

सम्बन्धित थी। राजमहलो से दूसरे पुरुष के साथ भागने वाली रानियो के उदाहरण भी मिलते है। सोमदेव ने तत्कालीन समाज का यथार्थ नग्न चित्रण किया है। इस समय गृहस्थ महिलाओ का उनकी सासों द्वारा प्रताडित करने का चित्रण हुआ है। यहॉ तक कि सासों द्वारा अपने पुत्र की अनुपस्थिति मे बहुओ को नग्न कर गर्भगृह मे डालने एव मृतिका पात्र मे अत्यल्प भोजन देने का वर्णन है। उस समय भी वर्तमान समय की तरह एक स्त्री का एक दूसरे स्त्री द्वारा प्रताडित एव शोषित करने की प्रवृत्ति विद्यमान थी। सामान्यत: ऐसी सासो का उल्लेख है जो अपनी वधुओ को उचित सलाह तथा निर्देशन प्रदान करती थी।

इस समय परिव्राजिकाओं का भी उल्लेख मिलता है जो पिता आदि की प्रताडना एव कभी–कभी अहम के टकराव के कारण प्रव्रज्या ग्रहण कर लेती थी। ये अनुशासित तथा त्यागमय जीवन व्यतीत करती हुई ईश्वर के ध्यान में लीन रहती थीं। परन्तु इस समय समाज में नकली साध्वियॉ एवं प्ररिव्राजिकाओं की भी कमी नही थी जो लोगों का शोषण कर रही थीं तथा गृहस्थ महिलाओं को अपने माया जाल में फॅसाकर पथभ्रष्ट भी कर रही थी। इस समय गुरु गृह में जानेवाले शिष्यो के साथ कुछ गुरु पत्नियॉ अवैध सम्बन्ध बनाने के लिऐ उतावली रहती थीं। कुछ गुरुपत्नियों एव शिष्यों के मध्य अनैतिक सम्बन्धो का उल्लेख मिलता है, तो कुछ ऐसे भी उदाहरण द्रष्टव्य होते है जिसमे शिष्य के शिष्टतापूर्वक इंकार करने पर उनके ऊपर बलात्कार का अरोप लगाकर अपने पति द्वारा शिष्यो पिटवा कर बाहर निकलवा देती थीं। इस समय गणिकाओ का सामाजिक जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान था। गणिकाओं के लिए वैश्या एवं विलासिनी नाम भी मिलते हैं। ये गणिकाएॅ विभिन्न सामाजिक उत्सवों, विवाहोत्सव आदि मे सक्रिय भाग लेती थीं। ये गणिकाएॅ एक ओर जहॉ लोगों के चित्तों का रंजन करती थी वही दूसरी ओर लोगों की कामक्षुधा की पूर्ति भी करती थीं, इसके यहॉ राजा, सामन्त, ब्राह्मण वैश्य आदि निर्द्वन्द भाव से आते–जाते थे। वेश्याएॅ ठगने के लिऐ बैठी रहती थी इसके लिए तरह–तरह के तरीकों का प्रयोग करती थी। इनके लिए धन प्राप्ति ही सर्वप्रमुख धर्म था। इनमे कुछ

किसी पुरुष के प्रति आसक्त एवं समर्पित हो गई थी, इसके लिए अपनी समस्त सम्पत्ति का परित्याग करके उसका अनुसरण किया। गणिकाओ को राजा द्वारा वेश्यावृत्ति से मुक्ति भी प्रदान कराया जाता था। इससे पता चलता है कि वेश्यावत्ति को इस समय सामाजिक तथा राजनीतिक मान्यता प्राप्त थी। इस समय मे वेश्याओं के साथ–साथ कुट्टनियो के क्रिया–कलापो की जानकारी प्राप्त होती है। ये एक ओर गणिकाओ को जहॉ प्रशिक्षित एव व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करती थी वही दूसरी ओर ग्राहको को पटाने का भी कार्य करती थी। इनके स्वरूप एव कपटपूर्ण व्यवहार की जानकारी कथासरित्सागर से ही नही अपितु इस समय के अन्य ग्रंथों से भी मिलती है। इनके कपटपूर्ण व्यवहार के लिए लेखक को यहॉ तक कहना पडा कि इनकी कपट रचना को ब्राह्मण भी नही जानता। इनकी धूर्तता एवं चलाकी समाज में प्रसिद्ध थी इसीलिए वैश्यादि अपने पुत्रों को व्यापारादि कार्यों में लगाने के पूर्व चतुराई की शिक्षा देने के लिए इन कुट्टनियों के पास भेजती थी।

इस समय समाज में देवदासी प्रथा विद्यमान थी जिसमे कन्याओं को मंदिरों के हेतु दान कर दिया जात था जो मंदिर की सेवा से सम्बद्ध थीं। परन्तु इस काल तक आते–आते वे केवल देवार्चन युक्त गीतों एवं तथ्यों में ही नहीं भाग लेती थी अपितु अपने आकर्षक सौन्दर्य से लोगों को विषयोभोग भी कराती थी। जो कि इस समय भारत की यात्रा पर आने वाले अलबरुनी, अबूजैद, अलहसन आदि यात्रियों के वृत्तान्तों से स्पष्ट है। यही नहीं इस समय देवदासियो के विवाह की जानकारी भी हमे कथासरित्सागर के अन्तः साक्ष्य से प्राप्त होती है। इन देवदासियों के अलावा स्त्रियों को समाज मे दासी के रूप में भी प्रयोग किया जाता था। स्त्री दासियॉ प्रायः समस्त सम्पन्न परिवारों एवं राजघराने में रहती थीं। इनकी गणना एक सम्पत्ति के रूप में होती थी। भाईयों के मध्य पारिवारिक विभाजन होने पर उनके मध्य इन दासियों को बॉंटने के वर्णन उपलब्ध हैं। ये घर एवं राजमहलों में नौकरानी एवं परिचारिकाओं के रूप में कार्य करती थीं। इन दासियों के साथ मालिकों के अनैतिक सम्बन्धों की भी सूचना मिलती है। इसके अतिरिक्त सच्चरित्र दासियों के भी उल्लेख प्राप्त है।

इस समय सती प्रथा का प्रचलन था जो अपने पतियो के युद्ध मे मारे जाने, स्वाभाविक मृत्यु होने तथा आत्महत्या करने पर भी उनके साथ सती हो जाती थी। जिनके पतियों का शव नही प्राप्त होता था वे मृत्यु का समाचार सुनकर अपने को दग्ध कर लेती थी। परन्तु जो स्त्रियॉ गर्भवती होती थी उनको समाज सती होने की अनुमति नही प्रदान करता था। इस समय कुछ ऐसे भी विवरण उपलब्ध हैं जो पतिव्रता न होते हुए भी अपने को सच्चरित्र साबित करने के लिएं अपने पति के शव के साथ स्वय आरोहण किया कथासरित्सागर कालीन समाज मे स्त्रियो के उत्तराधिकार को जहॉ तक प्रश्न है, इन्हे पुत्रो की भॉति सम्पत्ति मे अधिकार प्राप्त नहीं था लेकिन पुत्र न होने पर पिता के समस्त सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती थी। विवाह के अवसर पर कन्याओं को प्रभूत मात्रा में दहेज देने के प्रचलन का साक्ष्य है जो कि उच्चवर्गों तक ही सीमित था। जबकि जनसामान्य अपनी पुत्रियों को यथाशक्ति सामान्य उपहार प्रदान करते रहे होंगे। स्त्रियो को अपनी पुत्रियॉ किसी को प्रदान करने का अधिकार नहीं था जबकि पिता के मृत्यु हो जाने पर स्त्री ही अपनी कन्या को किसी योग्य पुरुष को प्रदान करती थी।

कथासरित्सागर का समय राजनैतिक उथल पुथल एवं परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था देश में एकता का अभाव था। तुर्कों के आक्रमण प्रारम्भ हो चुके थे। धार्मिक क्षेत्रों में विभिन्न सम्प्रदायों का अस्तित्व था जिसमे कर्मकाण्डों की प्रधानता थी। तंत्रवाद अपने चरम उत्कर्ष पर था। स्त्री शिक्षा ह्रासोन्मुख थी। समाज विभिन्न प्रकार की जातियों एवं वर्गों में विभाजित हो रहा था। परम्परागत कर्म का बंधन शिथिल पड़ने लगा था। ऐसी परिस्थिति एवं परिवेश में शिक्षा का आदर्शात्मक स्वरूप प्रभावित हुआ। ऐसी स्थिति में वैदिक कालीन शिक्षा के स्वरूप की परिकल्पना करना बेमानी था। इस समय भी शिक्षा की शुरुआत के लिए उपनयन या शैक्षिक संस्कार किया जाता था। इस संस्कार के उपरान्त शिक्षार्थी विद्याध्ययनार्थ विश्वविद्यालय, मठों, मंदिरों तथा गुरु गृहों में जाता था। यहॉ शुभ मूहूर्त में विद्यारम्भ की जाती थी। यहाँ पर वेद एवं वेद की वैदिक शाखाओं, व्याकरण, ज्योतिष, तर्कशास्त्र आदि की एवं

विभिन्न प्रकार की आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस समय वैदिक साहित्य शिक्षा का मूल विषय नही था। राजनैतिक तथा विदेशी आक्रमणो के परिणामस्वरूप सैन्य शिक्षा का महत्व बढ गया था। जो कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनो सैन्य शिक्षा ग्रहण करते थे। वैश्य वर्ग इस समय अक्षर ज्ञान तथा लेखा–जोखा का ज्ञान अर्जित करता था। यद्यपि ज्ञान पिपासु छात्र ज्ञानार्जन के लिए अनेक कष्टो को सहते हुए ज्ञान पिपाशा को शान्त करते थे। परन्तु व्यावहारिक विषयों पर लोगो का झुकाव बढ रहा था। चिकित्सा, संगीत तथा चित्रकला, योग आदि की शिक्षा दी जाती थी, इन विषयो के शिक्षक को 'उपाध्याय' कहा जाता था। इसके अलावा मल्ल, अस्त्र–शस्त्र सचालन की भी शिक्षा दी जाती थी। क्षत्रियों के साथ–साथ ब्राह्मण भी इन शिक्षाओ को अर्जित करते थे। इस समय वैश्य अपने पुत्रों को कुट्टनियों के पास चतुराई सीखने के लिए भेजते थे। राजाओं, सामन्तों तथा उच्चवर्ग के लोगो द्वारा शिक्षा को सरक्षण प्रदान किया जाता था। शिक्षार्थी गुरुगृह में रहकर शिक्षा अर्जित करते थे। भिक्षाटन, गुरु सेवा इनका प्रमुख कर्तव्य था। इस समय नालन्दा, तक्षशिला, वलभी एवं वाराणसी उच्च शिक्षा केन्द्र थे जिसमें इस समय वलभी का महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ विद्यार्थी दूर–दूर क्षेत्रों से आते थे। इस ग्रंथ से प्रतीत होता है कि भिक्षाटन का महत्व कम होता जा रहा था। गुरुकुल में शिष्य तथा गुरुपत्नियों के मध्य अनैतिक सम्बन्ध भी होने लगे थे। सम्भवतः इसी लिए शास्त्रकारों ने अनेक नियमों को प्रतिपादित किया था। इसकाल में बूढ़ी भार्या वाले गुरु से शिक्षा अर्जित करना सबसे अच्छा माना जाता था।

स्त्रियों की शिक्षा का इस समय ह्रास हो रहा था। उच्चकुल की कन्याओ को घर पर ही शिक्षकों द्वारा अक्षरादि सहित संगीत, गायन वाद्य, नृत्य आदि की शिक्षा दी जाती थी जब कि जन–साधारण की लड़कियाँ अपने धर के माता–पिता तथा ज्येष्ठ सदस्यों द्वारा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करती थीं। कुछ स्त्रियाँ विदुषी भी होती थीं लेकिन यह अपवाद प्रतीत होता है। सामान्यतः शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी, विद्या समाप्ति पर गुरुद्वारा दक्षिणा लिया जाता था। इस ग्रथ के अन्तःसाक्ष्यों से शुल्क लेने की भी जानकारी मिलती है।

कथासरित्सागर कालीन शिक्षा का मूल उद्देश्य चरित्र निर्माण एव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के साथ–साथ भौतिक जीवन का उत्थान एव समृद्धि था।

कथासरित्सागर के अध्ययन से तत्कालीन अन्नपान, वस्त्राभूषण और मनोरजन के साधनों के बारे मे जानकारी प्राप्त होती है। इस काल में भोज्य, लेह्य, षड्रस और पेय प्रकार के भोजन पदार्थों का प्रयोग किया जाता था। भोज्य पदार्थों में गेहूँ, चावल, यव (जौ), तिल, सरसो, चना, उडद, मूँग आदि खाद्यान्नो का प्रयोग होता था। जिसमे घृत्त, दूध, शहद, गुड, चीनी आदि पदार्थों को मिलकार विभिन्न प्राकंर के खाद्यान्न यथा–रोटी, भात, सत्तू, क्षीर (खीर), पुआ, मोदक आदि बनाए जाते थे। परन्तु निर्धन तथा साधनहीन लोगो का भोजन रोटी, भात एव सत्तू प्रमुख था। सत्तू इस समय जनसाधारण मे पाथेय रूप से लोकप्रिय था। सत्तू को धृत के साथ सना हुआ एव पानी के साथ घोलकर उपयोग किया जाता था। तिल एवं सरसो के उल्लेख से स्पष्ट है कि इनसे तेल निकाला जाता रहा होगा। खाद्य में इस समय शाक एवं सब्जियो का भी प्रयोग किया जाता था। घरों के पास शाकवाडा स्थापित किय जाता था। इस समय मॉसाहार भी प्रचलित था। कथासरित्सगर मे वर्णित है कि विहित पशुओं की असुलभता के कारण निषिद्ध पशुओं का भी मॉस खाया जाता था। राजा मृगया के लिए गणकों से मूहूर्त पूछकर जाते थे। बाजारों मे भी मॉस की बिक्री होती थी। जब कि ब्राह्मणो के लिए मॉस खाने का निषेध था। परन्तु अकाल आदि संकटों के दौरान ब्राह्मण मॉस का भक्षण कर सकता था। इस काल में आने वाले यत्रियों ने ब्राह्मणों के मॉंस खाने का उल्लेख किया है। सम्भवतः भारत के कुछ भागों मे शक्ति की उपासना एव तंत्र के प्रभाव के कारण कुछ ब्राह्मणों द्वारा मॉस भक्षण किया जाता था। जिसको कि यात्रियों ने विवेचित किया है। परन्तु सामान्यतः ब्राह्मण मॉस का भक्षण नहीं करते थे। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि मिथिला क्षेत्र (बिहार प्रान्त में स्थित) में शक्ति उपासक ब्राह्मणों द्वारा वर्तमान समय मे भी मॉस, मछली का भक्षण किया जाता है। जब कि आज अन्य क्षेत्रों मे ब्राह्मणों द्वारा सामान्यतः मॉंस का भक्षण नहीं किया जाता हैं। इस समय मद्यपान लोकप्रिय एवं सर्वव्यापक था। देवताओं को

भी मद्य अर्पित किया जाता था। बाद मे प्रसाद के रूप मे लोगों द्वारा प्रयोग में लाई जाती थी। राजा, सामन्त, राजकुमार आदि द्वारा मद्यपान गोष्ठियों का आयोजन किया जाता था जिसमे स्त्रियों, रानियो के साथ शराब का सेवन किया जाता था। इसके अलावा इसका वेश्याओ के घरो में खुला प्रयोग होता था। इस समय के विलासितापूर्ण समाज मे मदिरा का सेवन व्यापक स्तर पर होता था। विवाहोत्सव एव अन्य सामाजिक उत्सवो के दौरान मदिरा का सेवन किया जाता था जिसका ब्राह्मणवर्ग को छोडकर समस्त वर्ग के लोग प्रयोग करते थे।

पेय के अतिरिक्त कथासरित्सागर के साक्ष्यों से इस समय फलो के व्यापक प्रयोग की जानकारी मिलती है। इन फलों मे जंगली फलो का भी प्रयोग किया जाता था। भोजनोपरान्त लोग मुख शुद्धि एवं मुख का आर्कषण बढाने के लिऐ पान का प्रयोग करते थे। इसका प्रयोग समाज के सामान्य तथा उच्चवर्ग के लोगों द्वारा किया जाता था।

इस काल में लोगों द्वारा मौसम, सुन्दरता और स्वास्थ्य तथा उपयोगिता की दृष्टि से भिन्न–भिन्न प्रकार के वस्त्रों की रचना की जाती थी। ये वस्त्र विभिन्न रंग के होते थे। इस समय स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष के लिए कम वस्त्र होते थे। स्त्रियाँ वक्षों को ढकने के लिए कंचुकी पहनती थीं। दूसरा प्रमुख वस्त्र अधोवस्त्र या अर्न्तवासक था जो एक प्रकार का लहंगा था। ये लहंगे भूमि को स्पर्श करते रहते थे। साड़ी भी पहनी जाती थी। स्त्रियां उत्तरीय का प्रयोग शरीर ढकने के लिए करती थी। स्त्रियों के वस्त्रों पर कढ़ाई तथा पच्चीकारी का काम भी होता था। उच्च वर्ग की स्त्रियॉ पर्दे में रहती थी। पुरुष द्वारा ऊपरी शरीर को ढकने के लिए फतुई (अंगरखा) वस्त्रपहना जाता था जिसकी बॉहें कोहनी के ऊपर रहती थी। वे कुर्त्तक (कुर्त्ता), उष्णीय (पगड़ी) धारण करते थे। शरीर के निचले हिस्से में धोती, लंगोटी एवं पायजामा पहनते थे जिसमें रूई भरी जाती थी। इस प्रकार के पायजामा काश्मीर प्रदेश में बहुतायत रूप से पहने जाते थे। कम्बल का भी प्रयोग होता था। सम्मान स्वरूप पट्टबंध किया जाता था।

सोमदेव के वर्णन से पता चलताहै कि इस समय स्त्री तथा पुरुष दोनो आभूषण प्रेमी थे। स्त्री तथा पुरुष दोनो हाथ की अगुँली मे अगूँठी पहनते थे। कलाई में ककण तथा वलय पहना जाता था। भुजाओ मे अगद तथा केयूर पहना जाता था। पुरुष कानो मे कुण्डल, स्त्रियॉ तरकी, ताटङ्ग (झुमका) पहनती थी। गले मे माला, कण्ठाहार, मुक्ताहार स्त्री तथा पुरुष, दोनो पहनते थे। स्त्रियॉ जघनस्थल पर करधनी, पैरों मे नूपुर पहना जाता था, नूपुरो मे छोटे–छोटे घुँघरू लगे होते थे। पैरो ॲगुलियो मे उर्मिका तथा ॲगुलीयक पहना जाता था। ये आभूषण स्वर्ण, चॉदी तथा विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य पत्थर के बने होते थे। पुरुष एवं स्त्रियॉ विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनो का भी प्रयोग करते थे।

कथासरित्सागर के अध्ययन से मनोविनोद एवं मनोरंजन की विविध प्रविधियो की जानकारी प्राप्त होती है। जन सामान्य से लेकर राजाओं, सामन्तो, रानियो, राजकुमार तथा राजकुमारियों आदि के मनोरंजन की जानकारियॉ मिलती है। इस समय मनोविनोद के लिए मृगया, द्यूतक्रीडा, जलक्रीडा, नौका विहार यात्रा, उद्यान क्रीड़ाओं की जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त मद्यपान गोष्ठियों, सुरतोत्सव, इन्द्रोत्सव, आदि द्वारा मनोरंजन की जानकारी उपलब्ध होती है। मनोरंजन के अन्य साधनों में संगीत महत्वपूर्ण स्थान था। इसके साथ गायन भी किया जाता था। वादन का विशेष महत्व था। राजाओं के राजकुमारियो को वादन सिखाने के लिए संगीत शालाएँ होती थीं, जिसमें वाद्य के आचार्य द्वारा शिक्षा दी जाती थी। इस ग्रंथ में वीणा, ढोल, नगाड़ा, मृदग, शहनाई, बॉँसुरी आदि वाद्य यंत्रों के उल्लेख हैं। इस समय वीणावादन की उत्तर मार्ग तथा दक्षिण मार्ग (कर्नाटक संगीत शैली) की शैलियॉ विद्यमान थी। ये वाद्य यत्र राजदरबार, देवमंदिर तथा उत्सवों में बजाया जाता था। राजा अपनी रानियों एवं कन्याओं को नृत्य विधा मे शिक्षित करने के लिए नाट्याचार्य की नियुक्ति करते थे। इसका प्रदर्शन विभिन्न अवसरों पर राजदरबार मे किया जाता था। इसके अलावा वेश्याओं, नर्तकियों, वदियो तथा भाटों आदि को पारिवारिक स्तर पर नृत्यादि की शिक्षा दी जाती थी। ये विभिन्न सामाजिक

उत्सवो के दौरान नृत्य प्रस्तुत करते थे जो घूम–घूम कर कथोपकथन के साथ नृत्य करके लोगो का मनोरजन करते थे। इसके अलावा कौतुक (तमाशो) का आयोजन सगीतशालाओ मे किया जाता था जिसमे जनसाधारण भी मनोरजन करते थे। इसमे प्रतियोगिताएँ भी होती थी। नगर मे होने वाले उत्सवो मे राज्य शासन का निर्देश होता था कि लोग माला, गध विलेपन आदि से तैयार हो करके भाग ले। सगीत के अलावा चित्राकन दर्शन से लोग मनोरजन करते थे।

सगीत आदि विधाओ के अलावा मल्ल युद्ध द्वारा लोगो का मनोरजन होता था। इसके राजाओ द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाता था। इस समय समाज मे पशु एवं पक्षियों की लडाई से लोग आनन्दित होते थे। जो, कि वर्तमान समय मे भी देखने को मिलता है। मुख्यतः लडकियॉ झूला झूलती थी। ये झूले वर्षा ऋतु मे लगते थे। झूले के दौरान प्रेमालापो का भी वर्णन मिलता है। लडके तथा लडकियॉ काष्ठ निर्मित पुतलियो एव यंत्रमय खिलौने के द्वारा खेलती थी। बालको द्वारा गोफण से गोली खेला जाता था।

सोमदेव भट्ट के कथासरित्सागर मे तत्कालीन समाज मे परम्परागत रूप से विद्यमान तथा तत्समय घटित हो रही सामाजिक घटनाओं का अंकन बखूबी किया गया है। इसमे ऐसे उद्धरण मिलते हैं जो चकित कर देते हैं तथा बुराइयों को निःसंकोच कहते प्रतीत होते है। सोमदेव परम्परागत विचारों को आत्मसात् करने साथ–साथ अपने विचार की कसौटी पर कराते हैं जहॉ उन्हें बुरा लगा उसकी आलोचना करने में नहीं चूँके भले ही समाज का सम्मानित वर्ग ही क्यों न हो। दूसरी तरफ समाज में चाण्डाल जैसे अस्पृश्य वर्ग के अच्छे कर्म करने वालों की प्रशंसा करने में नहीं चूँके। सोमदेव एक प्रकार से कर्म योग के प्रबल समर्थक प्रतीत होते हैं। यदि समाज में निम्न वर्ग का व्यक्ति अच्छा कर्म कर रहा है तो उसको प्रतिबिम्बन करने में संकोच नहीं किया। इनके वर्णन से स्पष्ट है कि सोमदेव ने समाज में घटित होने वाली घटनाओं एवं परिवर्तनों को कथासरित्सागर में दर्ज करने का प्रयास किया, जिसमें वे सफल रहे।

सन्दर्भ ग्रन्थ

मूल ग्रन्थ

अग्नि पुराण : अनुवादक एम.एन. दत्त, कलकत्ता 1901

अथर्ववेद : सम्पादक, श्रीपाद शर्मा, औध नगर 1938

अपरार्क : याज्ञवलक्य स्मृति पर भाष्य, आनन्दाश्रम सस्कृत सिरीज, पूना 1903–1904

अर्थशास्त्र : सम्पादक, आर शाम शास्त्री, मैसूर 1909–1929 : हिन्दी व्याख्या वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा विद्या भवन, 1984

अपराजित पृच्छा : भुवनदेव सम्पादक पोपट भाई, अम्बाशकर मनक्ड, बडौदा 1950

अभिधान चिन्तामणि : भाग 1,2 यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर, वी. वि. सं. 2441, 2446

अमरकोष : अमरसिंह

आदिपुराण : जिनसेन, इन्दौर, वि.सं. 1973–75

आभिज्ञान शाकुन्तलम् : चौखम्भा संस्कृत सिरीज।

अष्टाध्यायी : सम्पादक एवं अनुवादक एस.सी बसु मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली।

आपास्तम्बधर्मसूत्र : चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी।

आचारांग : श्री आमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित।

उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन, आचार्य तुलसी, कलकत्ता 1968

ऐतरेय ब्राह्मण : त्रावणकोर विश्वविद्यालय, संस्कृत सिरीज, त्रिवेन्द्रम 1942

कल्पसूत्र : भद्रबाहु, सम्पादक एच. याकोबी, लाइपजिंग 1879

कुवलयमाला : भारतीय विद्या भवन, बम्बई 1959

कुट्टनीमतम : दामोदर गुप्त कृत, अभिदेव विद्यालकार, वाराणसी 1961

कुमार पाल चरित : हेमचन्द्र, बम्बई, 1936

गीत गोविन्द : जयदेव, बम्बई, 1925

गौतम धर्मसूत्र : हरदत्त, टीका सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत सिरीज 1910

गौतम स्मृति : सैक्रेड बुक ऑफ दि ईस्ट, ऑक्सफोर्ड 1897

गौडवहो : वाक्ययति, बाम्बे संस्कृत एण्ड प्राकृत सिरीज 1927

चचनामा : अग्रेजी अनुवाद, इलियट एण्ड डाउसन

छान्दोग्य उपनिषद : गोरखपुर 1962

जातक : अनूदित ई.वी. कावेल, लंदन 1957

दशकुमार चरित : दण्डीकृत, मोतीलाल, बनारसीदास, वाराणसी, 1966 (चतुर्थ संस्करण)

देशोपदेश : क्षेमेन्द्र, सम्पादक, मधुसूदन कौल, पूना 1923

दशरूपक : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई 1928

द्वयाश्रयकाव्य : भाग 1,2 निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1915, 1921

दीघनिकाय : बाम्बे युनिवर्सिटी पब्लिकेशन 1942.

नवसाहसांक चरित : पद्मगुप्त, बम्बई 1895.

नारदस्मृति : सम्पादक जौली, कलकत्ता 1885.

नैषधीयचरित : बम्बई 1907.

नाम माला : जैन साहित्य प्रचारक कार्यालय, बम्बई वी.नि.सं. 2463.

नायधम्मकहा : श्री आमोलक ऋषि द्वारा अनूदित।

नीतिवाक्यामृत : हिन्दी टीका, सुन्दरलाल शास्त्री, महावीर जैन ग्रंथ माला, वाराणसी 1976.

प्रबन्ध चिन्तामणि : मेरूतुंग, बम्बई 1888.

प्रबोध चन्द्रोदय : कृष्णमिश्र, त्रिवेन्द्रम, 1936.

पृथ्वीराज विजय : जयानक, अजमेर 1941.

पृथ्वीराज रासो : चन्द वरदाई, सम्पादक श्याम सुन्दरदास वाराणसी 1904.

पद्म पुराण : रविषेण, भाग 1,2,3 भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी 1958–59.

पराशर गृह्यसूत्र : सम्पादित गोपाल शास्त्री नेन, बनारस 1926

बृहत्संहिता : वाराहमिहिर, वाराणसी 1895

बृहत्कथा मंजरी : क्षेमेन्द्र, काव्यमाला 69, 1901.

बौधायन धर्मसूत्र : सम्पादित, डब्लू कलन्ड, कलकत्ता 1904–23.

ब्रह्माण्ड पुराण : वेकटेश्वर प्रेस, बाम्बे, 1913.

भगवती सूत्र : श्री अमोलक ऋषि द्वारा अनुवादित।

मत्स्य पुराण : आनन्दाश्रय, सस्कृति ग्रंथावली, पूना 1907 अनूदित, आर.पी. त्रिपाठी हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

मनुस्मृति : कुल्लूक भट्ट की टीका सहित, बम्बई, 1946 मेघातिथि की टीका के साथ, कलकत्ता, 1932.

महाभारत : सम्पादक, नीलकण्ठ की टीका सहित पूना, 1929–33, गीताप्रेस गोरखपुर।

महाभाष्य : 3 भाग, बम्बई 1892–1909.

मानसोल्लास : सोमेश्वर देव, बड़ौदा 1929–59.

मालतीमाधव : भवभूति, सम्पादित एम.आर. तेलंग, बम्बई 1900.

मालविकाग्निमित्र : बम्बई संस्कृत सिरीज 1889.

मेघदूत : कालिदास, ग्रंथावली वाराणसी

मृच्छकटिक : सम्पादक, काले, दिल्ली 1972.

मिताक्षरा : विज्ञानेश्वर, याज्ञवल्क्य स्मृति पर टीका, निर्णय सागर प्रेस बम्बई 1909, सेक्रेड हिन्दू बुक्स सिरीज, इलाहाबाद 1925

याज्ञवल्क्य स्मृति : सम्पादित एन.शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, बनारस 1908.

यशस्तिलक : हिन्दी टीका सुन्दर लाल शास्त्री, पूर्वखण्ड एवं उत्तरखण्ड, महावीर जैन ग्रथमाला, वाराणसी

रघुवंश : कालिदास ग्रंथावली, वाराणसी

राजतरंगिणी : कल्हणकृत, सम्पादक, दुर्गाप्रसाद बम्बई, 1892 अनुवाद और टिप्पणी, एम.ए स्टीन, वेस्ट मिनिस्टर, 1900, पुर्नमुद्रित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी।

रामायण : गीताप्रेस गोरखपुर, 1967

ऋग्वेद : सायण भाष्य सहित, सम्पादक एफ मैक्समूलर 1890–1892, 5 भाग, वैदिक संशोधनमडल, पूना 1933–51

ऋतुसंहार : निर्णयसागर प्रेस, बम्बई 1922.

वशिष्ठ धर्मसूत्र : पूना 1930.

वायु पुराण : गीताप्रेस, गोरखपुर।

विष्णुधर्मसूत्र : सम्पादक जौली, कलकत्ता 1881

विष्णुपुराण : गीता प्रेस गोरखपुर

विक्रमांक देवचरित : बिल्हण, सम्पादक जी. बुहलर, बम्बई, संस्कृत सिरीज ग्रंथ–14, 1875.

वीरमित्रोदय : मित्र मिश्र – 4 भाग, चौखम्भा, संस्कृत सिरीज वाराणसी 1913.

शतपथ ब्राह्मण : सम्पादक, वेबर, अच्युत ग्रंथ माला, वाराणसी संवत 1994–1997.

शुक्रनीति सार : मद्रास 1882

स्कन्दपुराण : वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई।

समरांगण सूत्रधार : भोज, दो खण्ड सम्पादक गणपति शास्त्री, बड़ौदा 1914–25।

संस्कार प्रकाश : चौखम्भा संस्कृत सिरीज, वाराणसी।

समयमातृका : क्षेमेन्द्र, काव्यमाला, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
हर्षचरित : बाणकृत, अनुवादक कावेल और टामस 1897

अरबी-फारसी के ग्रंथ

कामीतुल-तवारिध : इब्न असीर, अनुवाद इलियट एण्ड डाउसन जि 2
किताबुल-मसलिफ-बल ममालिक : इब्न खुर्दाज्वा, सम्पादक डी. गोयजे 1889 अनुवाद इलियट एण्ड डाउसन जि 1
किताबुल हिन्द : अलबीरूनीज, अनुवाद इ. सी संबाड, लन्दन 1914 सन्तराम, इलाहाबाद।
सिलसिल हुल-तवारिध : सुलेमान प्रेस पेरिम 1811, अनुवाद इलियट एण्ड डाउसन जि।
अलबीरूनीज इण्डिया : साचो, पापुलर एडिशन 1914

चीनी यात्रियों के वृत्तान्त

फाहियान : लेग्गे आक्सफोर्ड 1886
लाइफ ऑफ ह्वेनसांग : सेमुअल वील, लंदन 1911
युवेन चाङ्ग्स ट्रेवेल इन इण्डिया : वाटर्स एवं थामस, लंदन 1904
हवेनसांग का भारत भ्रमण : ठाकुर प्रसाद शर्मा, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

सहायक ग्रन्थ

अग्रवाल, वासुदेव शरण: पाणिनि कालीन भारत वर्ष, मोतीलाल, बनारसी दास वाराणसी वि. सं. 2012
: हर्ष चरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना 1953
: कला और संस्कृति, इलाहाबाद 1952
कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन बनारस 1958
अल्टेकर अ. स. : एजूकेशन इन ऐशेण्ट इंडिया, बनारस 1934
: द. पोजीशन ऑव वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन वाराणसी 1938

अभिदेव, विद्यालंकार : प्राचीन भारत के प्रसाधन, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी।

ओम प्रकश : फूड एण्ड ड्रिक इन ऐंशियन्ट इडिया, दिल्ली 1961

· प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, दिल्ली 1975

· प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, 1986

अपर्णा चट्टोपाध्याय : इण्डिया इन कथासरित्सागर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का पी-एच डी. शोध प्रबन्ध।

इलियट और डाउसन : भारत का इतिहास, अनुवाद मथुरालाल शर्मा खण्ड 1, आगरा, 1973, खण्ड 2, 3 आगरा 1974

उपाध्याय, वासुदेव : पूर्व मध्यकालीन भारत (700 ई से 1200 ई. तक) प्रयाग।

सोसियो–रिलिजस कण्डीशन ऑफ नार्थ इण्डिया वाराणसी 1954।

· प्राचीन भारतीय अभिलेखो का अध्ययन वाराणसी 1961।

उपाध्याय, राम जी : संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।

उपाध्याय कृष्णदेव : हिन्दू विवाह की उत्पत्ति और विकास वाराणसी 1974।

उपाध्याय, भगवतशरण : कालिदास का भारत, भाग 102, वाराणसी 1963–64

: भारतीय सामाज का ऐतिहासिक विश्लेषण दिल्ली 1978

ओझा, गौरी शंकर : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, इलाहबाद 1951

कमल गिरि : भारतीय श्रृंगार, मोती लाल बनारसी दास 1987

काणे, पी. बी. : धर्मशास्त्र का इतिहास भाग 1–5, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

कपाड़िया, के.एम. : मैरिज एण्ड फेमिली इन इंडिया आक्सफोर्ड 1955

कूले, चाल्स, एच. : सोशल आर्गनाइजेशन

कीथ, ए. बी. : हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, आक्सफोर्ड 1928

कौशाम्बी, दामोदर : प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, दिल्ली

धर्मानन्द 1977

केसरवानी प्रदीप कुमार: प्राचीन भारत में वैश्य समाज की स्थिति और उसकी भूमिका।

: सोमदेव सूरी के ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित भारतीय समाज और संस्कृति का आलोचनात्मक अनुशीलन।

गुप्त, धमेन्द्र कुमार : सोसायटी एण्ड कल्चर इन द टाइम आव दण्डिन, दिल्ली 1972

गोपाल, लल्लन जी : इकोनामिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया (700—1200 ई) दिल्ली 1965

गोयल, प्रीतिप्रभा : हिन्दू विवाह मीमांसा, रूपायन संस्थान, बैरून्दा 1979

गांगुली, डी. सी. : हिस्ट्री ऑफ परमार डाइनेस्टी, ढाका 1933

धुर्ये, जी. एस. : कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, बम्बई 1950

घोषाल, यू. एन. : ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन पोलिटिकल आइडियाज बम्बई 1959

चानना, देवराज : प्राचीन भारत में दास प्रथा।

चाकलदार : सोशल लाइफ इन ऐशेन्ट इण्डिया, कलकत्ता 1929

चटर्जी, सी. डी. : सम आब्सर्वेशन्स आन दि बृहत्कथा एण्ड इट्स एलेज्ड रिलेशन दि मुद्राराक्षस, इ. क. जि. 1, भाग2

जायसबाज, के.पी. : हिन्दू राजतन्त्र (भाग 1—2) वाराणसी सं. 2034

जैन, कैलाशचन्द्र : प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं, भोपाल 1961

जैन के.सी. : प्राचीन भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और भौगोलिक अध्ययन।

जैन, गोकुल चन्द्र : यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, अमृतसर, 1967

टॉनी, सी. एच. : दी ओसन ऑफ स्टोरी, दो जिल्दों में 1880—7

. कथा सरित्सागर, 1968 में पुनः मुद्रित मुंशीराम मनोहर लाल

ठाकुर, लक्ष्मीदत्त : प्रमुख स्मृतियो का अध्ययन, लखनऊ 1965

त्रिपाठी, रामप्रसाद : स्टडीज इन पोलिटिकल एण्ड सोशियो इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ अर्ली इण्डिया, इलाहाबाद 1981

त्रिपाठी, आर. एस. : हिस्ट्री ऑफ कन्नौज, वाराणसी 1959

त्रिपाठी, चंद्रवती : प्राचीन भारत मे नारी आदेशों का विकास।

द्विवेदी वाचस्पति : कथासरित्सागर एक सांस्कृतिक अध्यपन, पटना 1977

दीपंकर : कौटिल्य कालीन भारत

देवराज, एन. के. : भारतीय सस्कृति

नेमिचन्द्र शास्त्री : आदि पुराण मे प्रतिपादित भारत, वाराणसी 1968

प्रभु, पी. एन. : हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन, बम्बई 1958

पुरी, बैजनाथ : द हिस्ट्री ऑफ द गुर्जर प्रतीहार, बम्बई 1957

पाठक, विशुद्धानन्द : उत्तर भारत का राजनैतिक इतिहास (600–1200 ई.) लखनऊ 1977

प्रसाद, ईश्वरी : ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम रूल इन इंडिया पृ. 39

प्रसाद, एस. एन. : कथासरित्सागर तथा भारतीय संस्कृति, चाखम्भा ओरियन्टालिया वाराणसी 1978

: स्टडीज इन गुणाढ्य, वाराणसी 1977

: कथासरित्सागर कालीन धर्म हिन्दुस्तानी, भाग 33, अंक 2, 1972

फूल चन्द : वर्ण जाति और धर्म

बदरे, क्लीरसे : वीमेन इन एन्शियेन्ट इण्डिया, लन्दन 1925

बनर्जी, एम. सी. : इण्डियन सोसायाटी इन द महाभारत, वाराणसी 1956

वासम, ए. एल. : द वाण्डर देट वाज इण्डिया, लंदन 1954

भट्टाचार्या, सच्चिदानन्द : भारतीय इतिहास कोश, लखनऊ 1967

भाटिया, हर्ष नन्दिनी : नारी श्रृंगार, दिल्ली 1983।

माजूमदार, आर. सी. : दि हिस्ट्री कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल।
एवं पुलास्कर, ए.डी. (सं.)
खण्ड 1 : दि वैदिक एज, लंदन 1950
खण्ड 2 : दि एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी बम्बई 1951
खण्ड 3 : दि क्लासिकल एज, बम्बई 1954
खण्ड 4 : दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज, बम्बई 1955
खण्ड 5 : दि स्ट्रगल फार एम्पायर, बम्बई 1957

मजूमदार, बी. पी. : सोशियो इकनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, कलकत्ता 1960

मजूमदार, एन. एम. : ए हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन इन ऐन्शियन्ट इण्डिया कलकत्ता 1976

महतो, मोहन लाल : जातक कालीन भारतीय संस्कृति, पटना 1958

मीराशी, वासुदेव विष्णु : दि हाउस ऑफ गुणाढ्य ओरियन्टल घाट जि. 1 पृ. 44

मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना 1974।
: ग्यारहवी सदी का भारत, वाराणसी 1968।

मिश्र, शिवनन्दन : गुप्तकालीन अभिलेखों से ज्ञात तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक दशा, लखनऊ 1973

मोती चन्द्र : भारतीय वेशभूषा प्रयाग सं. 2007
सार्थवाह पटना 1966

यादव, बी.एन.एस. : सोसायटी एण्ड कल्चर इन नार्दन इण्डिया 1973

याजदानी : (सम्पादित) दकन का प्राचीन इतिहास दिल्ली 1977

राधाकृष्णन्, एच. : धर्म और समाज, दिल्ली 1972

राय, उदय नारायण : प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन इलाहाबाद 1965
: गुप्त सम्राट और उनका काल, इलाहाबाद 1971
: हमारे पुराने नगर, इलाहाबाद 1969

राय, एस. एन. : पौराणिक धर्म एवं समाज, इलाहाबाद 1968

राय, मन्मथ : प्राचीन भारत में मनोरंजन, इलाहाबाद स. 2013

विन्टरनित्ज, एम. : हिस्ट्री ऑफ इण्डियन कल्चर, भाग 1, 2

वेदालंकार हरिदत्त : हिन्दू विवाह का सक्षिप्त इतिहास, लखनऊ 1970

विद्यालंकार, सत्यकेतु : मौर्यकालीन साम्राज्य का इतिहास

व्यास, शान्ति कुमार : रामायण कालीन संस्कृति

वैद्य, सी. वी. : डाउनफाल ऑफ हिन्दू इण्डिया, पूना 1926 हिन्दू मिडिवल इडिया

शर्मा, आर. एस. : भारतीय सामन्तवाद, दिल्ली 1973

: शूद्राज इन एन्शियेन्ट इण्डिया, वाराणसी 1958

· पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज और अर्थ व्यवस्था पर प्रकाश, दिल्ली 1978

: पूर्व मध्यकालीन भारत मे सामाजिक परिवर्तन दिल्ली 1975

: शूद्रो का प्राचीन इतिहास, दिल्ली 1979

शर्मा, बी. एन. : सोशल लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली 1966

शर्मा, रजनीकान्त : अलबीरूनी कालीन भारत (अनुदित) इलाहाबाद 1967

शास्त्री, नीलकंठ के. ए. : नन्द मौर्य युगीन भारत, वाराणसी 1969

: दक्षिण भारत का इतिहास, पटना 1978

सरकार, दिनेश चन्द्र : सोशल लाइफ इन ऐशियन्ट इण्डिया, कलकत्ता 1962

सचाउ, ई. : अलबीरूनीज इण्डिया, लंदन 1921

सिंह, देवीप्रसाद : हिन्दू समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया, गोरखपुर 1984

सेनार्ट, ई. : कास्ट इन इण्डिया, लंदन 1939

स्मिथ, वी. ए. : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, ऑक्सफोर्ड 1924

हर्ष, ओमप्रकाश : कथासरित्सागर में सामाजिक प्रवृत्तियां, सागर विश्वविद्यालय।

अभिलेख

फ्लीट, जे. एफ. : गुप्त अभिलेख

भण्डारकर, डी. आर. : लिस्ट ऑफ इन्सक्रिप्शन्स जि. 1 ऑफ नार्दर्न इण्डिया, ए. इ.

सरकार, दिनेश चन्द्र : सेलेक्त इस्क्रिप्शन्स, जि. 1, कलकत्ता विश्वविद्यालय 1942

कोश

भारतीय इतिहास कोश, लखनऊ।

इनसाइक्लोथीडिया ब्रिटैनिका।

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ दि सोशल साइन्सेज।

शोध पत्र-पत्रिकाएं

– आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, ऐनुअल रिपोर्ट।

– इण्डियन ऐन्टिक्वेरी

– इण्डियन डिस्टारिकल क्वाटर्ली, कलकत्ता।

– एपिग्रैफिका इण्डिका।

– इण्डियन हिस्टारिकल रिव्यू।

– जर्नल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ता।

– जर्नल ऑफ दि ईश्वरी प्रसाद रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद।

– जर्नल ऑफ दि गंगा नाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद।

– नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वाराणसी।

– भारतीय विद्या बम्बई।
